अध्यात्म-वार्ता

रचयिता :

स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी

अनुवादक :

श्री यादव कृष्ण अवधिया, एम० ए

(हिन्दी संस्कृत) लेक्चरर (डोंगरगढ़ मध्य प्रदेश)

●

प्रकाशक

डा० ए० एन० श्रीवास्तव

३६, गोलागंज, लखनऊ

१९६६

वशिष्ठ-गुहा के गुरुदेव
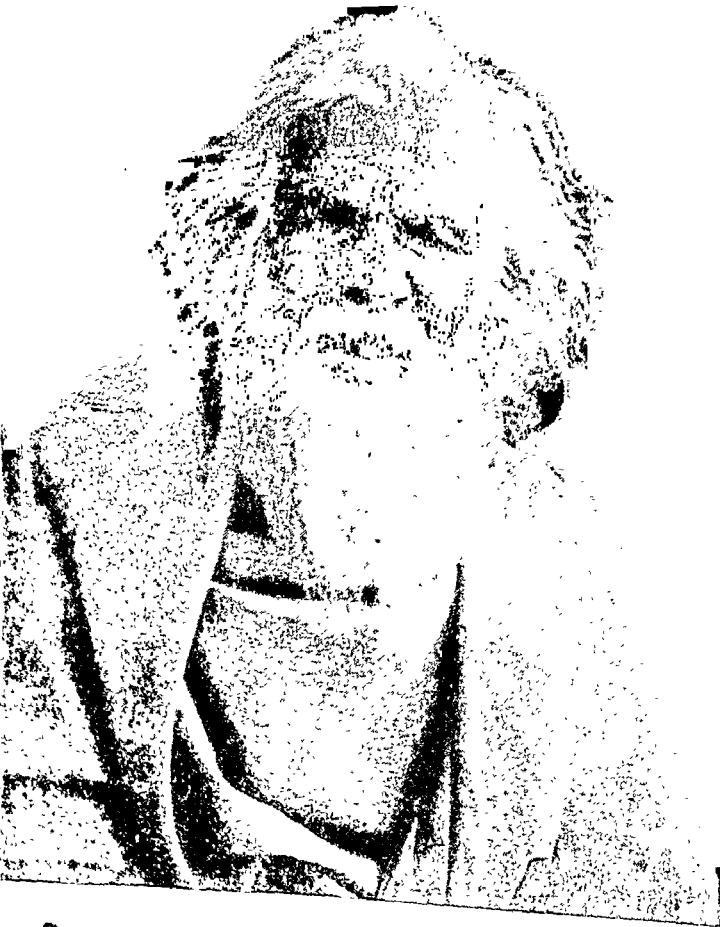
श्री १००८ श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज
(२३-११-१८७१ से १३-२-१९६१ तक)

भक्त मनरंजन, एवं जन-कल्याण हितार्थ परम पूज्य गुरुदेव श्री १००८ श्री स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी महाराज द्वारा रचित पुस्तक मुझे निमित्त मात्र बनाकर गुरुदेव के शिष्यगणों ने जो प्रकाशन की अनुमति दी है उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूं।

डा० एस० एन० श्रीवास्तव
३६ गोलागंज
लखनऊ

भूमिका

सन् १९५४ में पतित-पावनी भागीरथी के तट पर तीर्थराज प्रयाग में स्थित श्री एस० एन० कक्कर जी के विशाल भवन में मैंने कुछ महीनों तक निवास किया। प्रतिदिन संध्याकाल में कतिपय जिज्ञासु-गण अध्यात्म-जीवन की समस्याएँ लेकर उपस्थित होते थे एवं प्रायः मैं उस विषय पर प्रवचन करता था। प्रवचन के उपरान्त तत्काल ही प्रश्नोत्तर होते थे। जो भी प्रश्नोत्तर होते थे वे नियमित रूप से अक्षरबद्ध कर लिए जाते थे। कुछ भक्तगणों का ऐसा विश्वास है कि ये टिप्पणियां साधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी। अतः उनकी अशुद्धियां दूर कर उनका चयन इस पुस्तिका के रूप में किया गया है।

इस पुस्तिका को मैं अपने गुरु श्री महाराज जी के जो रामकृष्ण मिशन के प्रथम अध्यक्ष थे, श्री चरणों में सभक्ति समर्पण करता हूं।

उनके साथ जो मेरा अल्पकाल का परन्तु बड़ा ही महत्वपूर्ण सम्पर्क हुआ उसके संस्मरण का एक अध्याय भी मैंने इसमें जोड़ दिया है।

वशिष्ठ गुहा
ऋषिकेश
भारतवर्ष

पुरुषोत्तमानन्द

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

पूज्य गुरुदेव श्री श्री मां आनन्दमयी जी की असीम अनुकम्पा से मई सन् १९६५ में मुझे वशिष्ठ गुहा आश्रम से रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उक्त काल में आश्रमवासियों ने प्रातःस्मरणीय, परम-विरक्त, तपोनिष्ठ, सिद्धशिरोमणि स्वामी, पुरुषोत्तमानन्द जी के 'Spiritual talks' नामक पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद करने का मुझसे आग्रह किया जिसके फलस्वरूप यह अनुवाद पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

पूज्यपाद स्वामी जी ही वशिष्ठ गुहा आश्रम के जन्मदाता थे। आपका जन्म २३ नवम्बर सन् १८७९ को त्रावनकोर के तिरुवल्ल नामक नगर में नायर परिवार में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीनारायण नायर था। आपका जन्म का नाम नीलकंठन रखा गया। कुशाग्रबुद्धि होने पर भी रोग पीड़ित होने के कारण आप लगभग मेट्रिक तक ही पढ़ सके। आपका जीवनकाल गीता, भागवत आदि ग्रन्थों के पढ़ने में, त्याग और तपस्या में, श्रीरामकृष्ण आश्रम कायम करने एवं उनका संचालन करने में, तीर्थभ्रमण में, वशिष्ठ गुहा आश्रम की स्थापना एवं उनका संचालन करने आदि में बीता। आप आजन्म अविवाहित ही रहे। बचपन से ही आपमें श्रीरामकृष्ण देव के प्रति परम भक्ति थी। आपने स्वामी रामकृष्ण देव के शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी से मन्त्र, दीक्षा और शिक्षावान्तु महाराज से सन्यास की दीक्षा ली जिसका हृदयस्पर्शी वर्णन आपने प्रस्तुत पुस्तिका में किया है। आपका सन्यास का नाम 'स्वामी पुरुषोत्तमानन्द' पड़ा।

सब कुछ करते हुए भी आप सदैव सहज-समाधि में लीन रहते थे एवं आपका जीवन एकमात्र लोककल्याण के लिए ही था। प्रस्तुत पुस्तिका के अतिरिक्त अंग्रेजी में 'Peep into Gita' तथा मलया-

लम् में 'आत्मकथा' आपकी अन्य दो रचनाएँ हैं। आपने महाशिवरात्रि ता० १३ फरवरी १९६१ को महासमाधि ली।

ऋषिकेश से लगभग १५ मील दूर देवप्रयाग जाने के मार्ग पर पर्वतराज हिमालय से एवं पतितपावनी भगवती भागरथी के एकान्त, मनोहर तट पर स्थित, मनोरम शैलमालाओं से आवृत आपका पवित्र आश्रम हमें प्राचीन ऋषियों के निष्काम कर्मठ जीवन की याद दिलाता है।

अध्यात्म प्राण भारतवर्ष में आज जहां एक ओर अध्यात्म को 'क्षुरस्य धारा' मानकर उस पर चलना सर्वसाधारण के लिए असम्भव बताया है वहीं दूसरी ओर उसे पलायनवाद का पर्यायवाची भी माना जाता है, जबकि वस्तु स्थिति इन दोनों से भिन्न है। प्रस्तुत पुस्तिका में पूज्य स्वामी जी ने अध्यात्म की जटिल गुत्थियों को अत्यन्त सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया है एवं इस प्रकार असम्भव को सम्भव, दुर्लभ को सुलभ तथा कष्टसाध्य को सुखसाध्य बनाया है। पूज्य स्वामी जी के एक-एक शब्द अमूल्य हैं, पुनः पुनः विचारणीय हैं, कठोर तपस्या की अग्नि में तपाये गये हैं, प्रेमरस से परिपूरित हैं, आचरण में ढाले जाने योग्य हैं एवं 'गागर में सागर' हैं।

प्रस्तुत अनुवाद में मैंने सदा यह प्रयत्न किया है कि अनुवाद न केवल सरल और शब्दशः (literal) हो अपितु भावों की पूर्ण रक्षा हो। पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तिका से हिन्दी भाषा-भाषी पाठकों को 'अध्यात्म-जीवन' के विषय में काफी जानकारी होगी; उनके भ्रम दूर होंगे एवं वे लाभान्वित होंगे।

त्रुटियों के लिए सदैव क्षमाप्रार्थी हूं।

वशिष्ठ गुहा आश्रम
१ जून, १९६५

विनीत
यादवकृष्ण अवधिया

पहला अध्याय

हमें किसकी तलाश है ? आनन्द की

प्रत्येक जीव प्रतिक्षण किसी न किसी वस्तु की आकांक्षा करता है। वह स्पृहणीय वस्तु गोचर हो सकती है यथा संपत्ति अथवा संतति अथवा वह वस्तु अगोचर हो सकती है यथा कीर्ति या शक्ति। यद्यपि स्पृहणीय वस्तुएं असंख्य हो सकती हैं परन्तु सच्चा लक्ष्य एक ही रहता है–आनन्द। निरपवाद रूप से प्रत्येक व्यक्ति ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से आनन्द की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील है। यहां तक कि बड़े से बड़े कूटनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, व्यापार-विशारद एवं कलाकार भी वस्तुत: अपने विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा आनन्द की ही खोज में लगे हैं, भले ही वे पूछे जाने पर इस सत्य को स्वीकार न करें। इच्छाओं की पूर्ति होने पर हमें जो विभिन्न प्रकार का संतोष प्राप्त होता है वह भी आनन्द प्राप्ति का साधन ही है। परन्तु यह आनन्द क्षणिक एवं आंशिक है। हमें जिस वस्तु की खोज है वह है विशुद्ध एवं स्थाई आनन्द।

ऐसा क्यों होता है कि यद्यपि हम आनन्द की खोज में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं फिर भी वह हमें चकमा दे जाता है। क्योंकि हम गलत दिशा की ओर बढ़ते हैं। एक यात्री हरिद्वार से बद्रीनाथ को जाना चाहता है। यदि वह दक्षिण

दिशा की ओर अग्रसर होता जावे तो क्या कभी वह अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंच सकेगा ? वह अपनी यात्रा में ज्यों-ज्यों अग्रसर होता जावेगा त्यों-त्यों वह अपने गन्तव्य स्थान से दूर हटता जावेगा। ज्यों ही उसे अपनी गल्ती महसूस होगी, वह पीछे लौटेगा और उत्तर दिशा की ओर अग्रसर होगा त्यों ही वह अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ना आरम्भ करेगा। हमें जिस सुख की आकाँक्षा है वह हमारे भीतर ही है। हमारे भीतर ही आनन्द के उस झरने का उद्गम है जिसकी एक बूंद भी हमें सदैव के लिए पूर्णरूपेण मतवाला बनाने के लिए एवं हमारे दुःखों व कष्टों को पूर्णतया मिटाने में समर्थ है। परन्तु यह हमारी मूर्खता है कि हम ऐसा विश्वास करते हैं कि सुख कहीं बाहर स्थित है और वह हमें पत्नी, पुत्र धन-सम्पत्ति, नाम और कीर्ति के द्वारा प्राप्त हो सकता है और इसके फलस्वरूप हम इन बाहरी उपकरणों को प्राप्त करने में अपने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग खर्च कर देते हैं। हमारी दशा उस हरिण की सी है जो अपनी प्यास बुझाने के लिए मृगतृष्णा की ओर भागता ही जाता है एवं अन्त में जल प्राप्त किये बिना ही अपना प्राण त्याग देता है। हम सुख की खोज में अपना जीवन बिताते हैं और यही पाते हैं कि जीवन प्रायः कष्टों एवं दुखों से परिपूर्ण है। यहां तक कि क्षणिक सुखों का अन्त भी दुःख में ही होता है।

दूसरा अध्याय

दुःख के कारण—अविद्या और माया

यदि हमें किसी रोग के कारण ज्ञात हो जावें तो उसका उपचार सुगमता से किया जा सकता है। ठीक-ठीक निदान के बिना किसी रोग का उपचार सदैव के लिए किया जाना सम्भव नहीं, भले ही हम क्षणिक आराम पहुंचाने वाली कुछ औषधियों से उस रोग को स्वल्प काल के लिए दबा दें। अतः सर्वप्रथम विश्वव्यापी कष्ट के कारण का पता लगाओ तभी तुम सदा के लिये उस रोग को ठीक कर सकते हो। कष्ट का मूल कारण यह है कि हमने असत्य वस्तुओं को सत्य मान लिया है। इन असत्य एवं भ्रामक वस्तुओं का परित्याग कर दो और सत्य का—श्री भगवान् का ही आश्रय लो और तभी तुम्हारे कष्टों का अन्त होगा। जब तक हम इन असत्य छायाओं को पकड़े रहेंगे तब तक हमें अवश्यमेव कष्ट भोगना और रोना पड़ेगा। हमारे कष्टों का पूर्णरूपेण अन्त करने के लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं है। क्षणिक आराम पहुंचाने वाली औषधियों के द्वारा इस मूल महारोग को हटाने के प्रयत्न में इधर-उधर दौड़ने में कोई लाभ नहीं है।

अविद्या या अज्ञान के कारण। 'वेत्ति' का अर्थ है जानना और यह 'विद' सत्य को जानने का मूल है। सत्य को न जानना ही अविद्या है। और सत्य क्या है? वह जो सदैव बना रहे और बिना किसी परिवर्तन या हेरफेर के एक ही रूप में रहे। संपूर्ण दृश्य एवं अदृश्य जगत प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। क्या वह सत्य हो सकता है? इस लिए जो कुछ तुम देख सकते हो वह सत्य नहीं है। परन्तु फिर भी हम इन सब को सत्य मान रहे हैं। हम अपने इस स्थूल शरीर को भी सत्य मानते हैं भले ही वह दूसरे ही क्षण नष्ट हो जावे। हम उसे अपना मानते हैं भले ही हमें किसी भी क्षण उसका परित्याग करना पड़े। हम सदैव स्थाई एवं असत्य को ही सत्य मानते हैं इसलिये हमें दुःख भोगना ही पड़ेगा। हम बहुत बड़े बुद्धिमान हो सकते हैं और असत्य संसार के विषय में अनेकों बातों का ज्ञान रखते हों परन्तु वास्तव में हम मूर्ख हैं। जो बुद्धिमान हैं और सत्य का ज्ञान रखते हैं वे छायाओं से परिपूर्ण इस स्थाई संसार की किसी भी वस्तु को सत्य नहीं मानते। किसी भी वस्तु के प्रति यहां तक कि शरीर के प्रति भी जो उनके इतने समीप दिखाई देता है और उनका जान पड़ता है, वे ममत्व की भावना नहीं रखते। यह बुद्धि उनको दुःखों से मुक्ति देती है।

अतः जो भी कष्टों से मुक्त होना चाहता है उसे मिथ्या एवं असत्य वस्तुओं का परित्याग करना ही पड़ेगा। सम्पत्ति, कीर्ति, पत्नी आदि संबन्धी सभी इच्छाएँ भ्रामक हैं एवं अव-

भावना अपने मन में उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार एक सम्मोहन विद्या जाननेवाला एक (Hypndlist) तालाब उत्पन्न कर सकता है जिस में सम्मोहित व्यक्ति नहा सकते हैं जबकि वस्तुत: वहां असंमोहित व्यक्तियों के लिए कोई तालाब नहीं रहता। स्वप्नावस्था में न मोटरें होती हैं न वायुयान परन्तु फिर भी तुम उन पर चढ़ते हो। इससे यह बात तुम्हारी समझ में आ सकती है कि किस प्रकार हम किसी स्थान पर किसी वस्तु के वास्तविक रूप में अभाव होते हुए भी उसे देख सकते हैं। यह दर्शाता है कि वस्तुओं के न रहने पर भी उनका दर्शन हो सकता है। अत: जो कुछ भी यहां देखा जाता है उसका तत्वत: कोई अस्तित्व नहीं है। उसका वाह्य रूप से केवल आभास होता है; वह वस्तुत: सत्य नहीं है। सम्पूर्ण संसार इसी प्रकार का है। जब एक साधारण बाजीगर (सम्मोहक) इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न कर सकता है तो फिर विश्व-नियन्ता क्यों नहीं कर सकता। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने आप को संमोहन से मुक्त करें और उस श्री भगवान जी के दर्शन करें जो भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं। जब हम माया के परे हो जाते हैं तब हमारे लिए संसार नहीं रह जाता। हमने उस परदे को ही नष्ट कर दिया है जिस पर भ्रामक छायायें पड़ती हैं।

माया न केवल भ्रामक है अपितु वह उत्तेजक भी है। वह अविकसित जीवन को ऐसे वातावरण में रखती है जिसमें वह क्रमश: अपना विकास कर सके जो आत्म-साक्षात्कार के लिए

आवश्यक है। यद्यपि सम्पूर्ण बाधाएँ, प्रलोभन, अग्निपरीक्षाएँ और आपत्तियां व्यक्तिगत हैं तथापि वे जीवन में छिपे हुए गुणों को और उसकी योग्यताओं को प्रकट करते हैं। माया की गोद में ही उसके बच्चों का विकास हो सकता है जब तक कि वे सशक्त और उसके परदे को भेदने में और उसकी वास्तविकता को जानने में समर्थ न हो जाएं।

हमें यह सोचने की भूल नहीं करनी चाहिए कि माया का भ्रम सामान्य भ्रम है जो आसानी से हटाया जा सकता है। **समाधि** की उच्चतम अवस्था में ही संसार नहीं रहता और भ्रम की तरह दिखाई देता है। सामान्य मनुष्य के लिए संसार सत्य है और उसे उसके नियमों के अनुसार चलना पड़ेगा; उसे अपने आपको इस महा मोह से मुक्त करने के लिए उचित उपायों का अवलंबन करना पड़ेगा और दृढ़ता व लगन के साथ अपने लक्ष्य का अनुसरण करना होगा। सत्य की उपलब्धि करने और अपने वास्तविक रूप को जानने के उपरान्त ही उसे ज्ञात होगा कि उसके बन्धन केवल उसके

तृतीय अध्याय

परमात्मा या आत्मा—हमारे अनुसंधान का लक्ष्य

आत्मा क्या है ? आत्मा का अर्थ है "वह जो सर्वव्यापी है।" यह वह सत्य है जो शरीर, मन और बुद्धि के परे है। यह निकटतम से निकट और दूरतम से दूर है। यह सम्पूर्ण तत्वों का प्रेरक है। यह नेत्रों का नेत्र, और कर्णों का कर्ण है। यह शरीर के सम्पूर्ण अंगों को जीवन और प्रकाश देता है। जो कुछ हम भीतर या बाहर देखते हैं—आत्मा के द्वारा ही देखते हैं। स्वप्नावस्था में हम आत्मा के सहारे ही स्वप्न देखते हैं। यह जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में परिवर्तन रहित रहता है। ये तीनों अवस्थाएं जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण—शरीरों पर आश्रित रहती हैं—आत्मा के ही विभिन्न रूप हैं। इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तुम्हें अपनी चेतना में ही गहरी-गहरी डुबकी लगानी होगी। आत्मा को जानने के लिए तुमको आत्मा बनना पड़ेगा। इस प्रकाश की ओर तुम जितना ही अग्रसर होगे उतना ही अधिक तुम स्वयं ही उस प्रकाश में परिवर्तित होते जाओगे। देखो आरुणि उद्दालक के प्रश्न करने पर याज्ञवल्क्य 'आत्मा' के विषय में क्या कहते हैं :—

"अदृष्टो दृष्टाऽश्रुतः श्रोता ऽमतो मता ऽविज्ञातो विज्ञाता

नान्यो ऽस्ति दृष्टा नान्यतो ऽस्ति श्रोता ना ऽन्यतो ऽस्ति मन्ता नान्यतो ऽस्ति विज्ञातैष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः ।।

यह आधारभूत सत्य ब्रह्म कहलाता है। इस व्यक्त विश्व की उत्पत्ति उससे ही हुई है और यह 'उस' पर ही आश्रित है। वह सत्यं, ज्ञानं अनन्तम् है—शाश्वत् सत्य, शाश्वत् ज्ञान एवं शाश्वत् आनन्द है। इन शब्दों के भीतर जो भावनाएं छिपी हुई हैं वे बड़ी ही सूक्ष्म हैं एवं मनुष्य का मन जब उन भावनाओं को समझने का प्रयास करता है तब यह चकित होकर लौट आता है। जो अज्ञान और सांसारिक जीवन में गहराई तक डूबे हुए हैं वे परम सत्य का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। उनको परम सत्य तक क्रमशः ही ले जाना होगा। अतः गुरु अपने शिष्यों को साकार उपासना के द्वारा शिक्षा देने का प्रयत्न करता है। वह अपने शिष्य को पूजा के लिए कोई रूप प्रदान करता है। वह आकर्षक वस्तुओं से सांसारिक जीवों को आकृष्ट करने की चेष्टा करता है। यदि तुम किसी बच्चे को दवा देना चाहते हो तो उसे कुछ मीठी चीजों के द्वारा आकृष्ट करते हो। इसी प्रकार लोगों को धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए तुम्हें उनको कुछ आकर्षक चीजें देनी ही होंगी। जो भी व्यक्ति कोई सुन्दर रूप देखता है वह स्वभावतः ही उस ओर आकृष्ट हो

करते हैं अथवा वह रूप राम, कृष्ण आदि किसी **अवतार** का हो सकता है। किसी **अवतार** को पूजा के लिए इष्ट मानने में यह लाभ होता है कि उपासक **भागवत्** या **रामायण** में भगवान् की **लीलाओं** का वर्णन पढ़ सकता है और इस प्रकार उस परमात्मा के प्रति बड़ी सुगमता से भक्ति का विकास कर सकता है। अध्यात्म-जीवन के अगोचर तत्वों को समझना बड़ा ही कष्ट-साध्य है। परन्तु जब वे ही सत्य कथाओं के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं तब वे न केवल परमात्मा के प्रति भक्ति उत्पन्न करते हैं अपितु वे शिष्य को बड़ी आसानी से समझ में आ जाते हैं। इस दृष्टिकोण से **भागवत्** में वर्णित **कृष्ण लीलाएं** अद्भुत हैं। **नटखट** कृष्ण **गोपियों** के दूध और दही को गिरा देते हैं, जो उन गोपियों की सम्पत्ति है। क्या यह उन लोगों के लिए एक शिक्षा नहीं है जो धन और सब प्रकार की वस्तुओं का संग्रह कर रहे हैं। भगवान् एक दिन उनकी सभी चीजों को बिखेर देंगे और वे उनको गरीबों में बांट देंगे ताकि भौतिक संसार की वस्तुओं के प्रति हमारी आशक्ति नष्ट हो जाय। यशोदा कृष्ण को बांधना चाहती है परन्तु उसे सफलता नहीं मिलती। परन्तु जब वह पूर्णतया थक जाती है तब वह अपना प्रयत्न छोड़ देती है और तब वे स्वयं अपने आपको बंध जाने के लिए प्रस्तुत कर देते हैं। हम उनको पाने का प्रयत्न बार-बार करते हैं परन्तु वे हमें छलते ही जाते हैं। तब हम आत्मसमर्पण करते हैं और तब अहो! वे अपने आपको हमारे प्रति प्रकट करते हैं। **चीर हरण लीला** भी इसी प्रकार शिक्षा देती है। उन्हें पाने के

लिए हमें उनके पास नग्न होकर ही जाना होगा। पूर्ण प्रेम में भय, लज्जा अथवा लेन-देन नहीं होता।

इसी प्रकार **रामायण** में वर्णित भगवान् की कथा भी हमें प्रतिपग पर गम्भीर शिक्षाएं देती हैं। और हमें पवित्र करने वाली तथा आनन्द की स्थिति तक ऊपर उठाने वाली भक्ति के तीव्र उद्रेक की अनुभूति प्राप्त किये बिना किसी भी व्यक्ति के लिए श्री तुलसीदास जी के द्वारा वर्णित उनके जीवनचरित को पढ़ना असम्भव है।

भागवत और **रामायण** केवल जीवन-चरित की कथाएं मात्र नहीं है परन्तु वे आध्यात्मिक सत्य एवं बुद्धि के भंडार हैं–यह बात मूल भागवत में दिये गए गम्भीर दार्शनिक सत्यों से प्रकट होती है, जिनका उपदेश नारायण के द्वारा ब्रह्मा को मूल भागवत के प्रारम्भ में दिये गये गये चार श्लोकों में दिया गया है।

अहमेवा समेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम।
पश्चादहं यदेतच्चे योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥१॥

ऋतेऽर्थं यत् प्रतियेत न प्रतियेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥२॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३॥

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञा सुना ऽऽत्मनः।
अन्वयव्यति रेकाभ्यां तत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥४॥

सम्पूर्ण **भागवत** उपनिषदों की व्याख्या है और इसमें श्रेष्ठतम आध्यात्मिक सत्यों को कृष्ण चरित के साथ गूंथ दिया गया है। इसका सबसे महत्वपूर्ण सत्य यही है कि भगवान् केवल प्रेम-भक्ति से **अनन्यभक्ति** से, भगवान् के प्रति पूर्ण तथा आत्म-समर्पण से ही बांधे जा सकते हैं। शत प्रतिशत मन उस ईश्वर के श्रीचरणों में लग जाना चाहिए जो वास्तव में तुम्हारी आत्मा ही हैं। क्यों तुम अपना समय मिथ्या छायाओं के प्रति दौड़ने में नष्ट करते हो जो चारों ओर से तुमको घेरी हुई हैं। तुम अपनी सारी शक्ति **सच्चिदानन्द स्वरूप** कृष्ण के पीछे दौड़ने में ही खर्च क्यों नहीं करते? तुम अपना सम्पूर्ण **गोपियों** की तरह उनके चरणकमलों में क्यों नहीं उडेल देते? इस विषय में गोपियां हमारी श्रेष्ठ गुरु हैं। **गोपी** का अर्थ क्या है? इसका अर्थ है इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण। जब उन्होंने कृष्ण की वंशी सुनी तो क्या हुआ? उन्होंने सब कुछ छोड़ और वे उसके पास चली गईं। अभी भी उनके द्वारा वंशी बजाई जा रही है। परन्तु केवल **गोपियां** ही उसे सुन सकती हैं। जब वे उसे सुनती हैं तब वे सब कुछ छोड़ कर कृष्ण के पीछे दौड़ पड़ती हैं।

हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि भगवान् उनको आध्यात्मिकता प्रदान करते हैं जो उनके पास सच्चे हृदय से आते हैं। परन्तु वे केवल प्रेम के द्वारा ही आकर्षित होते हैं, वे केवल प्रेम से ही बंधते हैं अन्य किसी चीज से नहीं। और तुम उन्हें प्यार क्यों नहीं कर सकते? वास्तविकता यह है कि

तुम उन्हें नहीं जानते हो। तुम नहीं जानते कि वे तुमको सब चीजें दे रहे हैं; वे तुमको वे सब चीजें दे सकते हैं जो तुम चाहते हो। अतः तुम उस गुरु का पता लगाओ जो भगवान् को जानता है, जिसने दिव्य-प्रेम की मदिरा छककर पी ली है। वह तुमको भगवान् को प्रेम करने और फिर भगवान् को जानने की शिक्षा देगा।

चौथा अध्याय

मन

यह कौन सी वस्तु है जिसे हम 'मन' कहते हैं? हमें 'मन' को जानना ही होगा क्योंकि विश्व के सम्पूर्ण दुःखो का कारण मन ही है। यह चंचल है, स्थिर नहीं। हम किस प्रकार उसे वश में कर सकते हैं? यह सदैव बाह्य जगत् में विषयों की ओर दौड़ रहा है। हम किस प्रकार उसे अनासक्त बना सकते हैं? हमारे ऋषियों ने मन के गम्भीरतम स्तरों में गहरा गोता लगाकर मन के रहस्यों का उद्‌घाटन करने की चेष्टा की। उन्होंने पिण्डाण्ड का अध्ययन किया और पिण्डाण्ड के स्वभाव को जानकर उसके सहारे उन्होंने ब्रह्माण्ड के स्वभाव को जान लिया; क्योंकि पिण्डाण्ड ब्रह्माण्ड का केवल एक छोटा प्रतिरूप ही है।

पिण्डाण्ड के अध्ययन के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि स्थूल शरीर में छिपे हुए कई कोष हैं, जो अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश कहलाते हैं, जो उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर हैं। कोश आत्मा को उसी प्रकार ढंके हुए और गुप्त रखते हैं जिस प्रकार कपड़े मनुष्य शरीर को ढंके रहते हैं। जिस प्रकार शरीर को देखने के लिए ओवरकोट, कोट, कमीज तथा अन्डरवीयर (अधोवस्त्र) को अलग करना ही होगा उसी प्रकार आत्मा का दर्शन करने

के लिए आत्मा के कोशों को एक के बाद एक अलग करना ही होगा। इन कोशों को अलग करने का अर्थ है अपनी चेतना को क्रमशः गंभीरतर स्तरों में ले जाना। अतः मन के हल्के स्तरों से मन को ऊपर उठाने के लिए हमें मनोमय कोश को हटाकर विज्ञानमय कोश में ऊपर उठना ही होगा, जो ऐसा शरीर है जिससे बुद्धि प्रकाशित होती है। भगवान् ने हमें बुद्धि दी है और इस शक्ति का उपयोग हमें विज्ञानमय कोश के सहारे करना ही चाहिए एवं जीवन को उस दृष्टि-कोण से देखना चाहिए। तुम किसी एक खास शरीर को 'मेरा' पुत्र कहते हो। परन्तु उसका 'तुम्हारा' पुत्र होना केवल तुम्हारी कल्पना है। कौन तुम्हारा पुत्र है तब यदि शरीर की मृत्यु हो जाय तो तुम उसका स्पर्श भी नहीं करोगे। अतः अपनी बुद्धि का उपयोग करो। सत्य का ज्ञान प्राप्त करना और सत्य का दर्शन करना ही सुखी होने का एक मात्र मार्ग है। स्वप्नावस्था में हम किसी व्याघ्र को आते हुए देखते हैं एवं भयभीत हो जाते हैं। वास्तव में कोई व्याघ्र नहीं है परन्तु हम अपने ऊपर इस दुःख का आरोप कर लेते हैं। जिन दुखों को हम भोगते हैं उनके कारण हम स्वयं ही हैं। हमने अपना ससार बसाया है और जब तक हम उसे नष्ट नहीं कर देते तब तक सुखी नहीं हो सकते। सम्पूर्ण बाह्य विश्व भले ही लुप्त हो जाय परन्तु जब तक हम अपने द्वारा निर्मित मान-सिक संसार का नाश नहीं कर देते तब तक हमें मुक्ति नहीं मिल सकती। विश्व को उच्चतम भूमिका से देखे जाने पर मन कोई वस्तु नहीं, केवल आत्मा का ही अस्तित्व है। जब

तुम मन के ऊपर आनन्दमय कोष में उठते हो तो केवल आनन्द-आनन्द एवं आनन्द ही रह जाता है। अतः आनन्द के उस भंडार तक उठने की चेष्टा करो। यदि तुम पर्वत के शिखर पर जाते हो तो तुम नीचे घाटी में स्थित घरों इत्यादि को नहीं देखते हो। तुम केवल एक समान दृश्यों की लम्बी पंक्ति देखते हो। ये सब वास्तविक चीजें हैं, काल्पनिक नहीं। परन्तु हम सब के लिए यह संसारस्वर्ग से भी बढ़ कर है, अतः आनन्द के उद्गम स्थान की खोज करने की हमें क्या आवश्यकता है? हम सदैव सम्पत्ति, नाम और कीर्ति के पीछे दौड़ रहे हैं जो केवल माया के राज्य की वस्तुएं हैं। यही कारण है कि हमें बार-बार दुःख भोगना और रोना पड़ता है। हम सदैव सतत् परिवर्तनशील विश्व को पकड़ने और पकड़े रहने के प्रयत्न में संलग्न हैं। तब हम शाश्वत आनन्द की प्राप्ति किस प्रकार कर सकते हैं? अतः बुद्धिमान व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धि का उपयोग करे और इस सतत् परिवर्तनशील संसार से ऊपर उठे। मन स्थूल है, जड़ है। इसका आधार चैतन्य आत्मा है। यदि हम मन को पवित्र कर लें और उसे मानों पारदर्शी बना लें, तो उसके द्वारा केवल आत्मा ही प्रकाशित होती है। अतः प्रत्येक को बार-बार विचार करना चाहिए। विचार आवश्यक है। सत् क्या है? असत् क्या है? यह विचार है। जो अपने विचार और विवेक का उपयोग नहीं करता वह जीवित होते हुए भी सचमुच मृत है। यदि हम बुद्धिपूर्वक अपने विचार का उपयोग करें तो जीवन की समस्या सरलतापूर्वक हल हो जाती

है। यदि कोई विद्यार्थी किसी प्रश्न पर अपना मन नहीं लगाता तो वह प्रश्न कभी हल नहीं हो सकता। मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आया हूँ ? कौन मेरा पुत्र है ? यदि तुम इन प्रश्नों पर हमेशा सच्चाई से विचार करोगे तो इनकी तह में छिपे हुए सत्य का दर्शन करने लगोगे। अतः इस सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करो। इन प्रश्नों को हल करने का कार्य मत टालो।

मन को किस प्रकार शुद्ध किया जाय ? जब तुम किसी चीज को विष समझते हो तो तुम उसका स्पर्श नहीं करते। परन्तु बाहरी दुनियां की चीजें हमें अल्पकाल के लिए थोड़ा सा सुख प्रदान करती हैं और यही कारण है कि हम उनसे चिपके रहते हैं। परन्तु इन क्षणिक सुखों की प्राप्ति के लिए हमें कीमत के रूप में सबसे बड़े आनन्द आत्मानन्द को ही दे देना पड़ता है। जिसका अनुभव हम बाहरी पदार्थों के सम्पर्क में आने पर करते हैं। इस क्षणिक सुख या मानसिक सुख का उद्गम कहां से है ? यह अनुभव करना आवश्यक है कि यह अस्थाई सुख और आनन्द जिसका अनुभव हम बाह्य संसार के सम्पर्क में आने पर करते हैं उस आत्मा से ही प्राप्त होता है जो सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। ऐसी स्थिति में क्या होता है कि जब किसी इच्छा की पूर्ति होती है तब उस संतुष्टि से क्षण भर के लिए शान्ति और मन की समरसता उत्पन्न होती है और इस अल्प मध्यान्तर में आत्मा के आनन्द को मन में बहने का अवसर प्राप्त होता है। परन्तु स्वभावतः

ही यह सुख या आनन्द अस्थाई है और कभी-कभी तो कपूर की तरह उड़ने वाला भी होता है क्योंकि इच्छा फिर से मन को चंचल और अशांत बना देती है। जब मन स्थाई रूप से और पूर्ण रूप से शान्त और समरस बन जाता है तभी आत्मा से सच्चे आनन्द की किरणें फूट निकलती हैं एवं शाश्वत शांति प्रदान करती हैं। इसीलिए हम प्रत्येक प्रार्थना के अन्त में "शान्तिः शान्तिः शान्तिः" कहा करते हैं। शान्तिः अथवा मन की शान्त अवस्था शाश्वत आनन्द एवं बुद्धि के परे रहने-वाली शान्ति को प्राप्त करने का सबसे श्रेष्ठ साधन है। वास्तव में यही एकमात्र साधन है और साधना में काम आने वाले अन्य साधन इसके अधीनस्थ रहकर इस मुख्य लक्ष्य की सहायता करते हैं।

यदि तुमको सब सुखों के उद्गम स्थान का पता चल जाय तो वाह्य जगत् की वस्तुओं की चंचल छायाओं को पकड़ने का प्रयत्न करने के बदले तुम सीधे उस उद्गम स्थान तक पहुँच जाओगे। यदि मुझे १०००) किसी अज्ञात स्थान से प्राप्त करना है तो मैं द्रव्य की प्राप्ति के लिए इधर-उधर दौड़ता फिरूंगा। परन्तु यदि उस स्थान का पता लग जाय जहां से मुझे द्रव्य मिल सकता है तो मैं सीधे उस प्राप्ति स्थान तक पहुंच जाऊंगा। आनन्द हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। हम आनन्द स्वरूप ही हैं। हमें केवल यह जानना है कि उस आनन्द को हम कैसे प्राप्त करें ? यदि आकाश में चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा हो तो स्वच्छ और स्थिर जल के

किसी भी सतह पर उसका सच्चा प्रतिबिम्ब पड़ेगा। हमारा मन एक जलपूर्ण पात्र की तरह है। यदि जल की लहरें शांत हो जायं तो टूटे-फूटे प्रतिबिम्ब के स्थान पर चन्द्रमा का स्वच्छ प्रतिबिम्ब हमें प्राप्त होगा। यदि मन को स्थाई रूप से शान्त और स्थिर कर दिया जाय तो आनन्द स्वरूप आत्मा का स्वच्छ और स्थाई प्रतिबिम्ब प्राप्त होगा। यही उस शाश्वत एवं अविनाशी आनन्द को प्राप्त करने का रहस्य है।

अतः हम देखते हैं कि यह इच्छा या काम ही है जो हमारे शाश्वत् आनन्द को प्राप्त करने में बाधक है। इसके साधन सम्पूर्ण शरीर में फैले हुए हैं। यह नेत्रों के सहारे कार्य करता है जो सुन्दर चीजें देखना चाहती हैं। यह कानों के द्वारा कार्य करता है जो मनोहर ध्वनि सुनना चाहते हैं— इत्यादि। इस काम को किस प्रकार समाप्त किया जाय? इसका उत्तर गीता के तृतीय अध्याय में दिया गया है। भगवान् कहते हैं कि काम को विचार के द्वारा सरलता से नष्ट किया जा सकता है। यदि तुम्हारा मन इन्द्रियों के पदार्थों की ओर जाता है तो सर्वप्रथम इन्द्रियों को भोग-पदार्थों से अलग करो। यदि तुम किसी व्यक्ति को मारना चाहते हो तो अपने हाथ को आगे बढ़ने और तुम्हें क्रोधित करने वाले व्यक्ति को मारने से रोको। इन्द्रियां मन से कार्य करती हैं अतः अगला कदम यह होगा कि मन को इन्द्रियों से अलग कर दो। मन के परे बुद्धि है जिसे मन से अलग करना ही होगा। इनमें से प्रत्येक कार्य और विचार की शृंखला की

एक-एक कड़ी है और प्रत्येक दूसरी से अलग की जा सकती है जब तक कि हम इन सबके आधारभूत आत्मा तक न पहुंच जायं। इस प्रकार हम क्रमशः बढ़ते हुये विवेकपूर्वक विश्लेषण करते हुए काम को जीत सकते हैं और शाश्वत् आनन्द के उद्गम का पता लगा सकते हैं।

जब हम लक्ष्य की ओर यात्रा करते हैं तो हम एक के बाद एक चीजें पीछे छोड़ते जाते हैं। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों हम भगवान् को पाने के लिये अपनी चेतना में अधिकाधिक गहरी डुबकी लगाते हैं त्यों-त्यों हम एक-एक तत्व पीछे छोड़ते जाते हैं और मन इनमें से एक हैं। यह हमें अपनी सीमा तक ले जाता है और तब रुक जाता है। वास्तव में मन जड़ है और जब हम चेतना के अधिकाधिक गम्भीर स्तरों में डुबकी लगाते हैं तो हमें मन आगे नहीं बढ़ाता परन्तु मन की आधारभूता चेतना ही हमें आगे बढ़ाती है। यही कारण है कि जब हम मन की सीमा को पार कर जाते हैं तब मन छूट जाता है और चेतना का आधार ही आगे बचा रहता है। मन के परे रहने वाली चेतना का अंश ही सारा भार अपने ऊपर ले लेता है।

'मन' शब्द का उपयोग उसके सामान्य सीमित अर्थ में ही किया गया है। विस्तृत अर्थ में आत्मा के क्षेत्र के नीचे निवास करने वाली चेतना का सारा खेल मन के राज्य में ही आता है। अतः हमें सत्य को मन के द्वारा जानना पड़ेगा। समाधि में भी मन रहता है परन्तु वह ब्रह्म के साथ तदाकार

हो जाता है। वह पारदर्शी कांच की तरह हो जाता है जिसमें से प्रकाश बिना किसी बाधा के निकलता रहता है। इसलिये पवित्रता सबसे आवश्यक वस्तु है। यदि मन स्थूल हो तो वह **आत्मा** के प्रकाश को प्रतिबिम्बित करने का अथवा भेजने का कार्य नहीं कर सकता। **आत्मा** सूक्ष्मतम वस्तु से भी अधिक सूक्ष्म है। अतः मन को भी संवेदनशील होना चाहिए। भगवत्गीता के १६वें अध्याय में वर्णित दैवी गुणों का विकास करने से वह मन पवित्र और संवेदनशील बनाता है।

अध्याय पांचवां

विभिन्न मार्ग

आत्मा तक पहुंचने के लिए विभिन्न मार्ग हैं यथा क का मार्ग, **ज्ञान** का मार्ग और **भक्ति** का मार्ग। भिन्न-भि व्यक्तियों के स्वभाव भिन्न-भिन्न होते हैं, तदनुसार उनवे मार्ग भी भिन्न-भिन्न होते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि साधक सब कुछ कर केवल एक ही मार्ग का पथिक ब जावे और दूसरे मार्गों से कोई प्रयोजन न रखे। **साधना** **कर्म, ज्ञान** और **भक्ति** का समन्वय होना ही चाहिए यद्या व्यक्तिगत स्वाभावानुसार इनमें से किसी एक का प्राधान्य होगा। साधक की उन्नति के लिए इनमें से प्रत्येक अलग-अलग ढंग से महत्वपूर्ण है। **कर्मयोग** मलिन संस्कारों के शुद्ध करता है, शक्ति प्रदान करता है और साधक को **निष्काम भाव** से कार्य करना सिखाता है। **भक्ति योग** प्रेम का विकास करता है और जीव में भगवान् को खोजने की इच्छा को तीव्रतम कर देता है। **ज्ञान योग सत्** और **सतत्** के विचार द्वारा माया के परदों को छिन्न-भिन्न करने में उसे समर्थ बनाता है। हम देखें कि इन विभिन्न मार्गों के मुख्य सिद्धान्त कौन-कौन से हैं ?

कर्म मार्ग—कर्म योग का प्रशिक्षण अपने सामान्य कर्त्तव्यों को ठीक-ठीक और पूर्ण मनोयोग पूर्वक करने से प्रारम्भ होता

होता है। जो विद्यार्थी परीक्षा भवन में अच्छी तैयारी करके जाता है वह शान्त और प्रसन्न रहता है जबकि दूसरा विद्यार्थी जिसने उचित तैयारी नहीं की है भय-भीत और व्याकुल रहता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपना कर्त्तव्य सावधानी से करता है उसमें आत्म-गौरव रहता है और वह किसी से नहीं डरता, जबकि अपने कर्त्तव्यों को टालने वाला व्यक्ति सदैव दुःखी और व्याकुल रहता है। शुद्ध भाव से कर्त्तव्यों को पूरा करना पूजा है। यह मनुष्य को शक्तिशाली और पवित्र बनाता है। सब छोटे-छोटे कर्त्तव्य उसे उसके महानतम कर्त्तव्य के लिए योग्य बनाने के लिए हैं और वह महानतम कर्त्तव्य है ईश्वर की खोज करना एवं सत्य का ज्ञान प्राप्त करना। परन्तु इस महान कर्त्तव्य का बीड़ा उठाने के लिए मनुष्य को शक्तिशाली और पवित्र होना ही चाहिए और उसे छोटे-छोटे कर्त्तव्यों का परित्याग कर देना चाहिए। जब मनुष्य में आवश्यक मात्रा में वैराग्य का विकास हो जाय तभी उसे संसार का परित्याग करना चाहिए। जब फल पक जाता है तब वह अपने आप गिर जाता है तब तक वह समय नहीं आ जाता तब तक उसे संसार में कार्य करते रहना चाहिए। कम से कम वह कुछ सीखता तो रहेगा। कर्म के द्वारा ही हम शक्ति प्राप्त करते हैं और कार्यों को उत्तमता के साथ पूरा करने की शक्ति प्राप्त करते हैं।

भाव से करना, जैसा कि कहा जाता है 'फल का त्याग करना साधारण लोग कर्म करते हैं परंतु फल की कामना करते हैं दूसरे लोग जिनमें वैराग्य अल्प है और जो फल प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा नहीं रखते वे कर्म का ही परित्याग करने की इच्छा रखते हैं। **कर्म योग** में पूर्णता प्राप्त करने के लिए किसी व्यक्ति को चाहिए कि वह कर्म के सब फलों का पूर्ण त्याग करके पूर्णमनोयोग पूर्वक एवं प्रेमपूर्वक कर्म करता ही चला जावे। उस भगवान को प्रत्येक चीज अर्पण करते जाओ। प्रत्येक कार्य के बाद अपने सम्पूर्ण हृदय से कहो **'कृष्णार्पणमस्तु'** और फिर उसे पूर्णतया भूल जाओ। वे जैसा चाहते हैं उसी प्रकार उन्हें कर्मफलों का उपयोग करने दो।

यह याद रखना आवश्यक है कि **निष्काम कर्म** अपनी पत्नी या बच्चों के लिए या दूसरों के लिए कार्य करना नहीं है। केवल भगवान् के लिए किया गया कर्म ही असली यज्ञ है और वही 'निष्काम' कहला सकता है। कोई व्यक्ति उसे सब कुछ कैसे कर्पण कर सकता है? क्या केवल यह कहने से कि "हे भगवान्! मैं सब कुछ तुमको अर्पण करता हूं।" अर्पण करने का कार्य पूरा हो गया? नहीं! ईश्वर ही असली कर्ता हैं। वही हमसे सब काम करता है। हम केवल उनके साधन हैं। मैं कुल्हाड़ी से किसी झाड़ को काटता हूं। काटने वाला कुल्हाड़ी नहीं है। यह जान लो कि प्रत्येक क्षण में और प्रत्येक कार्य में वे ही सच्चे कर्ता हैं। यही वास्तविक निष्काम है। यह सब भाव (दृष्टिकोण) की चीजें हैं।

यद्यपि भगवान् सबमें हैं और वे असली कर्ता है परन्तु वे अलिप्त हैं। कर्म उनका स्पर्श नहीं कर सकते। हम लोग ही कर्मों में 'मैं' पन जोड़ देते हैं और तब उसके कर्ता बन जाते हैं और इसके फलस्वरूप हमें कर्म का फल भी भोगना पड़ता है। इसलिए यदि तुम दुःख नहीं भोगना चाहते हो तो जो कुछ तुम करते हो उसमें कर्तापन का आरोप मत करो।

तुमको केवल इतना ही जानना पर्याप्त नहीं है कि वे भगवान् सभी कार्यों के वास्तविक कर्ता हैं परन्तु यह भी जानना चाहिए कि तुम उनकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं कर सकते। जब वे ही वास्तव में सब कुछ करते हैं तब सब चीजों के लिए उनका ही आसरा क्यों न लिया जाय? इस दृष्टिकोण से देखने से तुम्हारी कोई जबाबदारी नहीं है। अतः तुमको किसी कार्य का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर क्यों लेना चाहिए? अतः तुम जो कुछ भी करो, उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर मत लो। यदि तुम किसी रेलगाड़ी को तुम्हारा सामान ले जाने देने के स्थान पर अपने सिर पर सामान रखना मूर्खता होगी।

लिए उस विषय की परीक्षा में उत्तीर्ण होना असम्भव नहीं तो महाकठिन अवश्य है भक्ति मार्ग में आनन्द का 'तत्व' प्रारम्भ से ही रहता है, क्योंकि 'प्रेम' और आनन्द अविभाज्य हैं; और जहाँ एक चीज है वहाँ दूसरी वस्तु अवश्यमेव मौजूद रहेगी। बिना भक्ति के ज्ञान-मार्ग की साधना शुष्क बुद्धिवाद में विकृत हो सकती है और बिना भक्ति के कर्मयोग प्रेम रहित और यंत्र की तरह कर्त्तव्यों का पालनमात्र हो जावेगा। केवल प्रेम ही अपने आप में पूर्ण है और अन्य किसी भी वस्तु की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। प्रेम स्वतः पूर्ण है और यही कारण है कि भक्ति मार्ग काफी हद तक दूसरों से स्वतंत्र है और एक सच्चा भक्त कालान्तर में ज्ञानी और योगी बन जाता है और भक्ति क्या है ? यह भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम है। जिनमें प्रेम करने की स्वाभाविक योग्यता है वे सचमुच धन्य हैं क्योंकि उनके लिए मार्ग पर चलना बड़ा आसान है। केवल उनकी प्रेम-भावना के प्रवाह को ईश्वरोन्मुख करने की आवश्यकता है। सच कहा जाय तो प्रेम एक है अनेक नहीं। यदि हम प्रेम के स्वभाव का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि माता सम्बन्धी, पिता सम्बन्धी आदि सभी प्रकार के प्रेम वास्तव में एक ईश्वरीय प्रेम के ही विभिन्न रूप हैं। यही कारण है कि प्रेम के इन निम्न कोटि के रूपों को भक्ति में वदलना आसान है।

यदि तुम मुझसे पूछोगे कि संसार में सबसे सुन्दर वस्तु क्या है तो मैं बिना हिचकिचाहट के कहूंगा कि प्रेम ही सबसे

सुन्दर वस्तु है। प्रेमी के लिए सबसे कुरूप लड़की सबसे सुन्दर बन जाती है। प्रेम प्रेमपात्र के सब दोषों को भुला देता है और यह प्रेमी को प्रेमपात्र के साथ एक रूप कर देता है। वह अन्य सब कुछ भूल जाता है और केवल प्रेमपात्र में ही खो जाता है। सर्वत्र वह उसे ही देखता है और वह केवल उसे ही देखती है। यह मानव प्रेम का स्वभाव ही है जो ईश्वरीय प्रेम की केवल छाया है। अतः तुम कुछ कल्पना कर सकते हो कि ईश्वरीय प्रेम किस प्रकार का होगा और वह भक्त की चेतना को किस आनन्द और उच्चतम भूमिका तक ले जावेगा। एक बार जब यह दिव्य-प्रेम हमारे हृदय में उत्पन्न हो गया तो फिर वहां घृणा अथवा ईर्ष्या के लिए स्थान ही नहीं रहेगा। निम्न लोकों की वस्तुओं के लिए हमारा भटकना सदैव के लिए समाप्त हो जावेगा। क्योंकि इस दिव्य-प्रेम के द्वारा हम आनन्द के उद्गम--आत्मा के अधिकाधिक निकट आते हैं और फिर हमें भौतिक वस्तुओं की क्या आवश्यकता हो सकती है, चाहे वे सांसारिक लोगों की नजरों में कितनी भी अधिक आकर्षक क्यों न हों? वहां किसी प्रकार की इच्छा, क्रोध, लोभ, अभिमान और भ्रम नहीं रह सकते। मन प्रेम और केवल प्रेम से ही परिपूरित हो जाता है। अन्य किसी भी वस्तु के लिए स्थान नहीं रह जाता। जो कमरा प्रकाश से परिपूर्ण हो वहाँ अन्धकार किस प्रकार झाँक सकता है? सम्पूर्ण भेद भावनायें क्रमशः नष्ट हो जाती हैं। कृष्ण के दृढ़ आलिंगन में राधा हैं। सम्पूर्ण देह भावना नष्ट हो जाती है। न राधा रह जाती है न

कृष्ण । केवल आनन्द ही आनन्द रह जाता है । एकमेवाद्वितीयम् । यह सच्चिदानन्द की अवस्था है जिसकी ओर भक्त भक्ति मार्ग का अनुसरण करता हुआ आराम से धीरे-धीरे पर दृढ़तापूर्वक आगे आकृष्ट होता जाता है ।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रेम के जिन भिन्न-भिन्न रूपों का अनुभव हम अपने सामान्य जीवन में करते हैं वे वस्तुतः एक ही प्रेम से निःसृत हैं जो दिव्य हैं । परन्तु जब तक हमारा प्रेम विभिन्न पदार्थों में बँटा हुआ है तब तक वह प्रेम के अधीश्वर के चरणों तक नहीं पहुंच सकता । जल का समूह चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो समुद्र तक कदापि नहीं पहुंच सकता, यदि हम उसे हजारों छोटी-छोटी विभिन्न दिशाओं में बिखरी हुई नहरों के द्वारा ले जावें । सभी छोटे-छोटे प्रवाहों को मिलाकर एक विशाल प्रवाह बनाना होगा ताकि वे अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच सकें । इसी प्रकार यदि हम अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हों तो हमें हमारे सभी बिखरे हुए प्रेमों को मिलाकर प्रेम और भक्ति का एक ही प्रवाह अवश्यमेव बनाना ही होगा । इसका यह अर्थ नहीं है कि बाह्य संसार में जिन सभी वस्तुओं को हम प्यार करते हैं उन सब पदार्थों से अपना प्रेम हटा लें । आवश्यकता इस बात की है कि हम उन पदार्थों में और उनके जरिये परमात्मा को प्रेम करने लग जायँ । पत्नी, पुत्र और पति से केवल उनके लिए ही प्रेम न किया जाय परन्तु उनमें निवास करने वाले परमात्मा के लिए ही उनसे प्रेम किया जाय ।

इस प्रकार हमारा प्रेम क्रमशः विश्वव्यापी बनता जावेगा और हमें बन्धन से मुक्त भी करता जावेगा। इस मार्ग में हमें ऐसा प्रेम करना सीखना है जो प्रेम हमारे लिए बोझ न बनें और न हमें बन्धन की ओर ही ले जाय। हमें इस विषय में अपने विवेक का उपयोग अवश्यमेव करना चाहिए। यह जानकर कि हमें अपने पुत्र, भाई, स्त्री आदि को, जिन्हें हम प्रेम करते हैं,–छोड़ना पड़ेगा, हमें उनसे बुद्धिमानीपूर्वक प्रेम करना चाहिए जिसका अर्थ यह है कि हम प्रत्येक को ईश्वर के ही रूप समझकर उनसे प्रेम करें। परन्तु हम सच-मुच ऐसा तभी कर सकते हैं जब हम अपने भीतर परमात्मा के दर्शन कर लें, जब हममें शरीर से अपने आपको अलग करने की शक्ति आ जावे और जब हमें अपनी आत्मा की अनुभूति होने लगे। वास्तव में कोई भी व्यक्ति पुत्र, स्त्री आदि से प्रेम नहीं करता परन्तु वह केवल अपने भीतर स्थित आत्मा से ही प्रेम करता है। जैसा कि कपिल ने देव-दूति को बताया था तीन प्रकार की भक्ति है :–

(१) तामसिक–इसमें हवन आदि बातें आती हैं। घृणा और विनाश युक्त क्रियाओं से ईश्वर को प्रसन्न करने की चेष्टा करना सबसे निम्न कोटि की तामसिक भक्ति है।

राजसिक–यह व्यक्तिगत इच्छाओं एवं उनकी

(३) **सात्विक**—इसमें भक्त भगवान् से कुछ पाने के लिए उससे प्रेम नहीं करता परन्तु प्रेम के लिये ही प्रेम करता है। उसके सभी **कर्म** भगवान् को अर्पण होते जाते हैं, यज्ञ के रूप में किये जाते हैं। इस प्रकार की **भक्ति** के लक्षण हैं—भय, लज्जा और लेन-देन की भावना का न होना। परन्तु फिर भी प्रियतम से भेद रह जाता है।

उपरोक्त तीनों प्रकार की **भक्ति सगुणोपासना** से सम्बन्धित हैं। सर्वश्रेष्ठ **भक्ति निर्गुण** मानी गई है। इसमें मन सीधा भगवान् में लीन हो जाता है और फिर कभी अलग नहीं होता। भक्ति का अनवरत प्रवाह उसके चरण कमलों की ओर प्रवाहित होता है, जैसे गंगा समुद्र की ओर हमेशा वहती ही रहती हैं, भगवान् को प्रेम करने का कोई कारण या हेतु नहीं है। वह प्रेम के कारण ही भगवान् की सेवा करने का विशेषाधिकार चाहता है। वह बदले में चार प्रकार की **मुक्ति** भी नहीं चाहता। **भक्ति मार्ग** में ईश्वरीय प्रेम का यही असली स्वरूप है। इस प्रकार की भक्ति से भक्त आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है। वह तीन **गुणों** के परे हो जाता है। वह भगवान् से एक रूप हो जाता है। यद्यपि वह मुक्ति नहीं चाहता तथापि वह स्वयंमेव मुक्त है। उसकी कोई कामना नहीं। उसकी सब आवश्यकताएँ भगवान् के द्वारा पूरी की जाती हैं। उसको **सिद्धियों** की कोई आवश्यकता नहीं परन्तु सभी **सिद्धियाँ** उसके इशारे पर नाचने को तैयार रहती हैं।

ऐसा ईश्वरीय प्रेम हममें किस प्रकार जागृत हो ? यह एक अलग समस्या है। यद्यपि अपरा भक्ति का विकास प्रायः दीर्घकालीन और एकाग्र साधना के फलस्वरूप होता है और इसके पूर्ण कुछ हल्के दर्जे की भक्ति भी मिलती है तथापि यहाँ पर कुछ सामान्य उपदेश दिये जा सकते हैं। कृतार्थ हो चुके हैं, जो पवित्र हैं और जो दिव्य प्रेम की साकार प्रतिमा हैं उन महापुरुषों का सत्संग करो। उनसे भगवान् और भक्तों के प्रति उनके प्रेम के विषय में सुनो। उनकी सेवा करो और उनकी कृपा प्राप्त करो। ईश्वरीय प्रेम को पाने की तीव्र आकांक्षा रखो और भगवान से सतत् प्रार्थना करते रहो कि वे अपनी शुद्ध एवं निष्काम भक्ति तुम्हें दे दें। जो जैसी इच्छा रखता है वैसा ही वह प्राप्त करता है। भगवान कठोर और उदासीन नहीं हैं। वे करुणा की मूर्ति हैं। वे जानते हैं कि हमें किसी चीज की तलाश है। ज्योंही उन्हें मालूम होगा कि हम उनके प्रेम के भूखे हैं और हमें उनकी और केवल उन्हीं की तलाश है त्योंही वे हमें मनमानी अपार भक्ति का वरदान देंगे। यदि वे हमारी प्रार्थना नहीं सुनते तो इसमें दोष हमारा है। हम केवल भक्ति और मुक्ति की बातें करते हैं। हमारी प्रार्थनाएं झूठी हैं, बनावटी हैं, हार्दिक नहीं। हृदय और मन की अपवित्रता हमारे मार्ग में बाधक सिद्ध होती हैं। अतः हमें पक्षपात रहित होकर अपनी कमजोरियों का पता लगाना चाहिए और उनको एक-एक करके समूल नष्ट करने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। हमें उनसे सच्चे और सम्पूर्ण हृदय से प्रार्थना करनी चाहिए कि

वे हमें अपने चरण कमलों में अपार प्रेम दें और हमारे हृदय और मन में सदैव निवास करें। यदि हममें सच्चाई है और यदि हम अपने आपको उनके ईश्वरीय प्रेम का पात्र बनाने का भरसक प्रयत्न करें तो हमारे हृदय में कभी न कभी प्रेम का झरना फूट पड़ेगा और हमारे हृदय को आनन्द से भर देगा।

ज्ञान मार्ग—मनुष्य का ज्ञानमार्ग पर चलना तब प्रारम्भ होता है जब वह जीवन की समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना प्रारम्भ करता है और अपने आपको उन भ्रमों से मुक्त करने का प्रयत्न करता है जो उसके मन को घेरे हुए हैं। यह पहले के किसी अध्याय में पहले ही कहा गया है कि हम **माया** की दुनियां में रहते हैं और वही कल्पना करते हैं जो **मायापति** कल्पना करते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने आपको संमोहन से मुक्त करें और उस भगवान् को देखें जो इस भ्रम को उत्पन्न करते हैं। जीवन के महान् रहस्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से क्रमशः उस रहस्य का उद्‌घाटन होगा और उस भ्रम या **मोह** का नाश होगा जिसमें हम सब फंसे हुए हैं। किसी व्यक्ति को सम्पूर्ण वेदों और दर्शनों के सिद्धान्तों का ज्ञान हो सकता है परन्तु जब तक वह **विचार** का अवलम्बन नहीं करता तब तक वह (ज्ञान) व्यर्थ है। **विचार** से तात्पर्य है कि **सत्** और असत् के बारे में गम्भीरतापूर्वक सोचना। यदि कोई व्यक्ति सत् और असत् पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे तो वह अवश्यमेव

क्रमशः सम्पूर्ण **असत्** का परित्याग कर सत् का पता लगा लेगा।

'**सत्**' क्या है ? जो वास्तविक है, शाश्वत है, परिवर्तन-रहित है, एक रूप है, न बढ़ता है न घटता है। सम्पूर्ण विश्व प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है; अतः वह **सत्** या वास्तविक नहीं हो सकता। जो कुछ तुम देखते हो वह वास्तविक नहीं हो सकता यद्यपि तुम उसे वास्तविक मानते हो। यहां तक कि शरीर भी जो हमें इतना सत्य दिखाई देता है, जरा भी सत्य नहीं है—वह सतत् परिवर्तनशील है और दूसरे ही क्षण नष्ट हो सकता है। यह **अविद्या** कहलाता है। हम असत्य और अस्थाई को सत्य और स्थाई मान लेते हैं। अतः हम दुःख भोगते हैं। हम कैसे मूर्ख हैं (भले ही हम बुद्धिवादी मूर्ख हों) जो अपने आस-पास की वस्तुओं को 'मेरा' मानते हैं, जबकि वे चीजें किसी भी क्षण हमसे छीनी जा सकती हैं। केवल वही चीज 'मेरी' हो सकती है जो हमेशा मेरे साथ रहे। अतः हमारे सब दुःखों का कारण इन आधारभूत चीजों के सम्बन्ध में विचारों की गड़बड़ी है। यह '**अविद्या**' या उचित समझ या उचित ज्ञान के अभाव के कारण है। अतः इसकी दवा ज्ञान है।

इस ज्ञान को किस प्रकार प्राप्त किया जाय ? जानो कि तुम कौन हो ? यह 'मैं' कौन है ? हमारे '**ऋषि**' प्रत्येक का कारण जानना चाहते थे। हम कैसे देखते हैं ? हम कैसे सुनते हैं ? मन के द्वारा। और मनको समझने की शक्ति

कौन प्रदान करता है ? मन के ऊपर भी कोई न कोई होगा जो उसे संचालित करता हो, जो उसे इंद्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त कराता हो।

वास्तविक द्रष्टा अवश्यमेव शरीर, मन और बुद्धि के भी परे होगा। वह **जाग्रत्, स्वप्न** और **सुषुप्ति** अवस्थाओं में वैसा ही रहेगा। अतः द्रष्टा की तलाश करो और जानो कि तुम्हीं द्रष्टा हो। यह सबसे बड़ा विज्ञान है–आत्मा का विज्ञान। इस विज्ञान में तुमको अपने भीतर प्रवेश करना पड़ता है। यदि तुम किसी खजाने की खोज कर रहे हो जो किसी सन्दूक में एक कमरे में ताला लगाकर रख दिया गया है तो क्या तुम उस खजाने को बाहर सब जगह ढूंढ़ने से पा सकते हो ? तुम्हें कमरे का ताला खोलना पड़ेगा। तभी तुम उस खजाने तक पहुंच सकोगे। अतः उस महान रहस्य का उद्घाटन करने के लिए अपने भीतर प्रवेश करो। जो जानते हैं उनसे सत्य का श्रवण करो, फिर सब कुछ छोड़कर **तपस्या** करो और सतत् ध्यान करो। जो स्वप्नावस्था में देखा जाता है वह सत्स्वरूप आत्मा में नहीं रह सकता। जो सत्य को जानना चाहते हैं उनको सम्पूर्ण असत् वस्तुओं का परित्याग करना चाहिए और संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक दोनों पद्धतियों का उपयोग करके 'एकमेवाद्वितीयम्' **सत्य** को जानने का भरसक, प्रयत्न करना चाहिए। जो शाश्वत है उसे ही पकड़ो। यदि तुम केले के खम्भे को छीलते जाओ तो अन्त में केवल भीतरी गूदा बच रहेगा।

इसी प्रकार यदि तुम 'नेति नेति' की पद्धति से सम्पूर्ण 'असत्' वस्तुओं को अलग हटाते जाओगे तो केवल **सत्य** ही बच रहेगा। अत: **पंचकोषों** और चेतना की तीन अवस्थाओं को छील डालो और तब अन्त में केवल द्रष्टा ही बच रहेगा। वही सत्य है, शेष सब असत्य है। **ज्ञानमार्ग** का अवलम्बन कर सत्य को जानने का एकमात्र यही तरीका है तुम भगवान् को केवल भगवान् बनकर ही जान सकते हो। **आत्मा** कमजोर लोगों के द्वारा नहीं जाना जा सकता, परन्तु उसे वे ही जान सकते हैं जो शक्तिशाली हैं, और जो असत् को देखने पर उसे त्यागने को तत्पर रहते हैं।

व्यक्त विश्व के पीछे छिपे हुए महान् सत्य को जानना सम्भव है क्योंकि वही सत्य मानव हृदय में भी छिपा है। विश्व ब्रह्माण्ड है जबकि जीवात्मा पिण्डाण्ड है। हम पिण्डाण्ड को जानकर ब्रह्माण्ड के स्वभाव का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अंश के गुणों का अध्ययन करके हम सम्पूर्ण के गुणों को जान सकते हैं। समुद्र के थोड़े से जल का स्वाद लेकर हम यह जान सकते हैं कि समुद्र का स्वाद किस प्रकार का होता है? हम अपने शरीर को ही पिण्डाण्ड (छोटा ब्रह्माण्ड) मानें। क्या उसमें कोई ऐसी चीज है जो शाश्वत अथवा वास्तविक है जिसे हम **सत्** कह सकें? सोचो! नहीं, वहां वह वस्तु नहीं है। तुम अपने शरीर को किस प्रकार देखते हो? नेत्रों से। नेत्र कैसे काम करते हैं? मन के द्वारा। सतत् परिवर्तनशील मन में क्या कोई वस्तु शाश्वत

एवं सत्य है ? नहीं। इस प्रकार तुम 'सत्' और 'असत्' का विश्लेषण करते हुए और एक के बाद दूसरी वस्तु का परित्याग करते हुए चले जाओ जब तक कि तुम अपने भीतर उस वस्तु तक नहीं पहुंच जाते जो परिवर्तन रहित है और जो सभी अवस्थाओं में एक रस रहता है। वही तुम्हारी आत्मा सत् है, जो तुम्हारी खोज का विषय है। तुम्हारे भीतर की यह आत्मा वस्तुतः उस परमात्मा से एक रूप है जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। जब कोई व्यक्ति सभी झूठी और असत्य वस्तुओं को दूर कर चुकता है और महान् सत्य की उपलब्धि कर चुकता है, जो परमात्मा का दूसरा नाम है। तब वह अनुभव करता है कि न जन्म है, न मृत्यु है, न मैं है, न 'मेरा' है। वह मालिक बन जाता है और अपनी दिव्यता को जान लेता है। उसमें आत्मा की कली खिल जाती है और आत्म-साक्षात्कार का दिव्य पुष्प दृष्टिगोचर हो जाता है। उसने किसी ऐसी वस्तु की उपलब्धि नहीं की है जो पहले वहां हमेशा मौजूद नहीं थी। वह उसे मनुष्य की तरह है जो उस हार की खोज में लगा रहता था जो सदा उसके गले में पड़ा था अथवा उस मृग की तरह है जो कस्तूरी की तलाश सब जगह करता है जबकि वह हमेशा उसके भीतर ही मोजूद रहती है। तब वह पहली बार असत् विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओं का सही मूल्यांकन कर सकता है। यदि तुम एक कतार में हजार शून्य रख दो तो उनका कोई मूल्य नहीं। उनके पहले १ रख दो तो प्रत्येक शून्य को उस पंक्ति में अपनी स्थिति के अनुसार मूल्य मिल जाता है। अतः यह

१ ही है जो शून्यों को मूल्य प्रदान करता है। इसी प्रकार यह आत्मा ही है जो व्यक्त विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओं को महत्व और अर्थ प्रदान करता है। जब तुम अपनी आत्मा को जानोगे तभी तुम यह जान सकते हो कि तुम्हारी पत्नी, तुम्हारा पुत्र या तुम्हारा गुरु वास्तव में क्या अर्थ रखते हैं ?

बहुत लोगों को आश्चर्य होता है कि हमें आत्म-साक्षात्कार के द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के पहले अनेकों दुःखों से भरे हुए सृष्टि क्रम से क्यों गुजरना पड़ता है ? इस समस्या की चिन्ता करना और इस माया के राज्य में इसका उत्तर पाना व्यर्थ है। मान लो सम्पूर्ण विश्व भगवान के द्वारा बनाया गया है। परन्तु हमें जिससे प्रयोजन हैं वह वस्तु यह विश्व नहीं है परन्तु भ्रम की वह दुनियां है जो हमने उन सब उपायों का उपयोग करके बनाई है जिन्हें हमारा मन सोचकर निकाल सकता है। जब तक हम इस अपने स्वनिर्मित संसार को नष्ट नहीं कर देते तब तक हम मुक्त नहीं हो सकते। यह हमारे ही हाथ में है। इसी क्षण हम इस (स्वनिर्मित) विश्व का विनाश करके मुक्त हो सकते हैं। यदि तुम अपनी हथेली में किसी कष्टदायक वस्तु को रखे हुए हो और उसे फेंक नहीं देते तो इसमें दोष किसका है ?

यदि तुममें सच्ची लगन है और तुम सबका कारण जानना चाहते हो तो आगे बढ़ो और कारण की खोज करो। अन्त में तुम्हें ज्ञात होगा कि केवल उन्हीं का अस्तित्व है और वे ही विश्व के मूल कारण हैं। इन चीजों को जानने के लिए

तुमको अपने स्वनिर्मित संसार का और उसको बनाने वाले अहंकार का नाश करना होगा। यह निर्मित विश्व केवल **माया** के स्तर पर ही रह सकता है। जब तुम **माया** के स्तर के परे चले जाते हो तो वहां न सृष्टि है, न विनाश है, न समय है, न स्थान है। जो सचमुच है वह हमेशा शाश्वत रूप से रहेगा। वही सत् है।

तुम असत्य के परदे को हटाने के लिए इस मिथ्या जगत् के ही साधनों का उपयोग करते हो। तुम कांटे को निकालने के लिए दूसरा कांटा लेते हो और फिर दोनों को फेंक देते हो। **साधना** में काम में लाये गये सभी उपाय असत्य हैं परन्तु उनका उपयोग आवरण स्वरूप असत्य को दूर करने के लिए किया जाता है। जब सत्य का ज्ञान होता है तब न संसार रहता है, न बन्धन रहता है और न **साधना** रहती है। केवल वही शाश्वत 'सत्' अन्तिम सत्य बच रहता है। अत तुम देखोगे कि इस विश्व के, जो कि ब्रह्माण्ड है, यथार्थ रूप को जानने का एक मात्र मार्ग अपने आपको—पिण्डाण्ड को जानना है।

विभिन्न मार्गों की समस्या पर विचार करते समय उन लोगों को चेतावनी के रूप में कुछ शब्द कहना आवश्यक है, जो बिना सोच-विचार के या तो पुस्तकें पढ़ कर अथवा सामान्य **यौगिक** क्रयाओं का वाह्य ज्ञान रखनेवाले नाम-मात्र के **योगियों** के मार्ग प्रदर्शन में विभिन्न **यौगिक** क्रियायें करते हैं। समुचित मार्ग प्रदर्शन के अभाव में और आवश्यक नियमों का पालन

न करने के कारण अनेकों ने प्राणायाम का अभ्यास करके अपना जीवन बरबाद कर डाला है। यदि मध्यम मार्ग से और सही ढंग से **प्राणायाम** का अभ्यास किया जाय तो वह उपयोगी सिद्ध होता है। परन्तु इसके लिए अभ्यासी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, भोजन पर अवश्यमेव नियंत्रण रखना चाहिए और पूर्ण संतुलित एवं आत्म-निग्रही जीवन बिताना चाहिए। मस्तिष्क एक बहुत ही सूक्ष्म यंत्र है और बिना सोचे-विचारे नाम मात्र की **यौगिक** क्रियाओं को करने से वह आसानी से बिगड़ सकता है।

हठयोग का ध्यान प्रायः स्थूल शरीर पर ही केन्द्रित रहता है। स्थूल शरीर को नियंत्रित करने से चमत्कार के कई कार्य करना और आयु बढ़ाना संभव है। परन्तु जो भगवान् को जानना चाहता है और मुक्त होना चाहता है उसके लिए इन सब का भला क्या उपयोग हो सकता है?

छठा अध्याय

धर्म क्या है ? सनातन धर्म

दुःख का कारण और उसका अन्त करने के एकमात्र सफल उपाय के बारे में जो कुछ उपरोक्त कथन किया गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि सच्चा धर्म केवल यंत्रवत् कुछ निश्चित क्रियाओं से गुजरने में ही नहीं है। अपने सच्चे अर्थ में धर्म हमें अपनी दिव्यता का अधिकाधिक विकास करने में सहायता देता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, हमारा सच्चा और अन्तरतम रूप दिव्य है। वह हमारे मलिन स्वभाव रूपी राख से ढकी अग्नि की तरह है। हमें केवल राख को हटाना है और तब आग अपनी सम्पूर्ण तेजी और शान के साथ भड़क उठेगी। भगवान् हमारे हृदय में मानों परदे के पीछे छिपे हैं। हमें उनका दर्शन पाने के लिए केवल परदे को हटाने की आवश्यकता है।

हिन्दू-धर्म को केवल किसी विशेष आचार्य के द्वारा निर्धारित आचरण-संहिता नहीं मानना चाहिए। इसे हमें जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालने वाले एक शाश्वत नियम की अभिव्यक्ति मानना चाहिए। इसीलिए यह सनातन धर्म शाश्वत धर्म कहलाता है। यह गुरुत्वाकर्षण के नियम के समान है जो भौतिक जगत् की अद्भुत प्राकृतिक घटनाओं को नियंत्रित करता है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही गुरुत्वाकर्षण के नियम का अस्तित्व है। यह भौतिक जगत् के अस्तित्व में

ही समाया हुआ है। चाहे लोग उसे जाने अथवा उसके विषय में अनभिज्ञ रहें परन्तु इससे प्रकृति की अद्‌भुत घटनाओं पर पड़ने वाले उसके प्रभाव में कोई अन्तर नहीं पहुंचता। न्यूटन ने सिर्फ इस नियम को खोज निकाला था और इस प्रकार उसने मनुष्य जाति को अद्‌भुत प्राकृतिक घटनाओं को समझाने में और कुछ उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए उसका उपयोग करने में सहायता दी थी। इस नियम के अभाव में कई वैज्ञानिक अनुसंधान न हो पाते।

इसी प्रकार **सनातन धर्म** या शाश्वत धर्म सृष्टि के प्रारम्भ से ही चला आ रहा है। यह भौतिक और अतिभौतिक संसारों के स्वभाव में ही समाया हुआ है और जीवन के हर पहलू को नियंत्रित करता है। हमारे ऋषियों ने केवल इस सर्वव्यापी नियम के विभिन्न पहलुओं को खोज निकाला था और उसे हमारे श्रुतियों और स्मृतियों में शामिल कर लिया था। उन्होंने संसार के अन्तिम सत्य का पता लगाने के लिए अपने भीतर अधिकाधिक गहरा गोता लगाकर ये अनुसंधान किये थे।

सातवाँ अध्याय

विवेक और विचार के द्वारा इच्छा की तीव्रता

जिन्हें धर्म में दिलचस्पी है ऐसे कई लोग अध्यात्म जीवन की कामना करते हैं परन्तु उनकी यह कामना, अस्पष्ट, अनिश्चित और बड़ी कमजोर रहती है। इच्छा की तीव्रता ही आत्म-साक्षात्कार करा सकती है। सैद्धान्तिक रूप से यदि हम सांसारिक इच्छाओं से अपने आप को पूर्णतया मुक्त कर लें तो एक क्षण में मुक्त हो सकते हैं परन्तु वास्तविक जीवन में हमें भगवत्प्राप्ति की अपनी इच्छा को क्रमशः अधिकाधिक तीव्र बनाना होगा जब तक वह हमारे मन पर अपना पूर्ण अधिकार न कर ले। हमें उनके दर्शन की सच्ची भूख, और गहरी आकांक्षा सदैव होनी ही चाहिए। वह भूख कैसे उत्पन्न की जा सकती है? यह निरन्तर और दीर्घकाल तक की गई साधना का फल है। परन्तु हम दृढ़ निश्चय और एकाग्र मन से साधना कर सकें इसके पूर्व हमें कुछ प्रारम्भिक कार्य करने होंगे और इस प्रारम्भिक कार्य में **विवेक** और **विचार** का बड़ा महत्व है।

सर्वप्रथम हमें अवलोकन, अध्ययन और विचार से यह अवश्यमेव अनुभव कर लेना चाहिए कि वाह्य जगत् में हमारे द्वारा निर्धारित लक्ष्य और उनकी प्राप्ति पूर्णतया व्यर्थ है।

हमें बड़ी सच्चाई से और आलोचनात्मक ढंग से अवश्यमेव विचार करना चाहिए कि हम अपने सांसारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किये गये प्रयत्नों से क्या पा सके हैं? क्या सम्पत्ति, नाम, कीर्ति, पत्नी, संतान, शारीरिक सुख और भोग हमें किसी प्रकार का चिरस्थाई सुख, मन की शान्ति या आन्तरिक शक्ति दे सके हैं? अपनी बड़ी सफलताओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर हम देखेंगे कि हमारा लाभ वस्तुतः सांसारिक सुखों की मृगतृष्णा में ही भटक रहे हैं। यह केवल लगन से सोचने और सच्चाई से जांच-पड़ताल करने का प्रश्न है। इस प्रकार के विचार और सतत चिन्तन के फलस्वरूप हमें मन की सच्ची आस्था प्राप्त होगी जिसमें विवेक और वैराग्य का निवास रहता है। लोग कभी-कभी पूछते हैं कि हम सत्य और असत्य का भेद किस प्रकार कर सकते हैं जबकि हम सत्य को नहीं जानते?" जीवन के स्वभाव, उसकी सीमाओं और भ्रमों का सतत अवलोकन और चिन्तन करते हुए इस असत् संसार को नष्ट कर दो। जिस संसार में तुम निवास करते हो उसके परिवर्तनशील और भ्रामक स्वभाव का जब तुम सच्चा अनुभव कर लेते हो तो तुम इसमें आसक्त नहीं रह सकते। इसलिए सदैव विचार करते ही रहो। इस असत्य संसार का स्वभाव क्या है? सत्य क्या है? जीवन का लक्ष्य क्या है? उस लक्ष्य तक कैसे पहुंचा जा सकता है? यह सत्य है कि केवल विचार करने से विशेष लाभ नहीं होता। तुमको तलाश करनी चाहिए और कार्य करना चाहिए। परन्तु तुम गम्भीरता-

पूर्वक विचार किये बिना और स्पष्ट परिणामों तक पहुंचे बिना सच्चाई से अनुसंधान कार्य नहीं कर सकते। इन मौलिक प्रश्नों पर जो विचार नहीं करते वे किस प्रकार इनको ठीक-ठीक हल कर सकते हैं? बुद्धि का उपयोग क्या है? उससे काम लेना और सत्य की खोज करना। क्योंकि जो मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग करता है वही जीवन के जटिल प्रश्नों को हल कर सकता है। संसार के क्षणिक सुखों की ओर हमेशा दौड़ते रहना और अपने भीतर स्थित सब सुखों के उद्‌गम स्थान की ओर से उदासीन हो जाना-निरी मूर्खता है। वशिष्ठ ने कहा कि आत्मा का साक्षात्कार करना फूल तोड़ने से भी अधिक आसान है। क्यों? क्योंकि फूल तोड़ने के लिए हमें हाथ बढ़ाना पड़ता है और प्रयत्न करना पड़ता है। परन्तु आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए हमें केवल भीतर देखना है। सत्य हमारे भीतर पहले से ही मौजूद है। हमें केवल उसे खोजना है। विचार और चिन्तन के द्वारा असत्य संसार का नाश करना इस प्रारम्भ कार्य का निषेधात्मक (negative) रूप है। इसका निर्वे-यात्मक (Positive) रूप है--अध्यात्म-जीवन में अपने लक्ष्य प्राप्ति के महान् मूल्यों का सतत् ध्यान करना। जब हम सच्चिदानन्द स्वरूप अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जावेंगे तब हमें जो प्राप्ति होगी उसके मूल्य का अनुभव करने का प्रयत्न हमें अवश्यमेव करना चाहिए। अध्यात्म-जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने और भगवान् को खोजने का थोड़ा भी अनुभव यदि किसी व्यक्ति को हो जाय तो वह बाह्य-

जगत् की सभी वस्तुओं का परित्याग कर देगा और केवल लक्ष्य की ओर दौड़ेगा। अधिकांश साधकों के सम्बन्ध में वास्तविक कठिनाई यही होती है कि आत्म-साक्षात्कार के इस महान् स्वरूप का स्पष्ट चित्र उनके मन में अंकित नहीं होता और उनके विचारों में गड़बड़ी रहती है। यही कारण है कि उनके प्रयत्न अधूरे रहते हैं और वे बड़ी जल्दी निराश हो जाते हैं। हम जो कुछ चाहते हैं उसकी स्पष्ट कल्पना हमारे मन में होनी चाहिए। हमारे उद्देश्य की रूपरेखा स्पष्ट होनी चाहिए। परीक्षा में जो विद्यार्थी उत्तीर्ण होते हैं उनके विचार स्पष्ट होते हैं; जो अनुत्तीर्ण होते हैं उनके विचारों में गड़बड़ी रहती है। हमें अपना लक्ष्य नहीं बदलना चाहिए। हमें **स्थिर निश्चय** रखना चाहिए। तभी हम सम्पूर्ण हृदय से अपने आपको अनुसंधान कार्य में लगा सकते हैं।

ईश्वर के अनुसंधान कार्य की इच्छा को तीव्र बनाने की समस्या पर विचार करते समय हमें इस बात की जांच करनी चाहिए कि सांसारिक वस्तुओं का इच्छा किस प्रकार उत्पन्न और तीव्र होती है। सांसारिक आकांक्षा रखने वाला एक सामान्य व्यक्ति गवर्नर के जीवन के विषय में सुनता है। उसे ज्ञात होता है कि गवर्नर की मासिक आय ५०००) है, विशाल भवन में रहता है और हजारों लोग उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। वह गवर्नर के जीवन का जितना ही अधिक चिन्तन और ध्यान करता है, गवर्नर बनने की

उसकी इच्छा उतनी ही अधिक तीव्र होती जाती है। इसी प्रकार महात्माओं के मुख से भगवान् और आत्म साक्षात्कार के आनन्द की महिमा सुनते-सुनते भगवान् को पाने की इच्छा उत्पन्न और तीव्र होती है। इसीलिए गीता में भगवान् कहते हैं "एकमात्र मेरा ही विचार करो, तब तुम एकमात्र मुझमें ही निवास करोगे।" भगवान् का सतत् चिन्तन करने के लिये धन और किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं है। और वही सांसारिक कठिनाइयों से बाहर आने का सब से सुगम रास्ता है। जब तुम भगवान् के विषय में भक्ति-पूर्वक और सच्चाई से सोचना प्रारम्भ करते हो तब तुम सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होने के मार्ग से लग जाते हो। यदि हम उन पर पूर्णतया और बिना हिचकिचाहट के निर्भर रहते हैं तो वे हमारी बाहरी और भीतरी दोनों जगत की आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। परन्तु "मुर्ख अपने हाथ में रखे खीर को नहीं खाता बल्कि सब जगह भिक्षा मांगता फिरता है।"

आठवां अध्याय

साधना

जो कुछ अध्ययन किया गया है उसे यदि साधक काम में नहीं लाता तो धर्म के सिद्धातों का ज्ञान अधिक उपयोगी नहीं होता। उसे पूर्ण वेद, **उपनिषद** और अन्य धार्मिक ग्रन्थ कण्ठस्थ हो सकते हैं परन्तु यदि वह उनमें दिये गये आदेशों का पालन नहीं करता तो वह अन्धकार में रहेगा और दुःख भोगता ही रहेगा। केवल अभ्यास के द्वारा ही हम न केवल आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन करने के मार्ग में आगे बढ़ते जाते हैं। परन्तु अपने धार्मिक ग्रन्थों के गुप्त वास्तविक अर्थों को समझते भी जाते हैं। साधक सम्पूर्ण **भगवत्गीता** को कंठस्थ कर सकता है परन्तु यदि वह उसकी शिक्षाओं का पालन करने का प्रयास नहीं करता तो वह उसे ठीक-ठीक नहीं समझ सकेगा। यहां तक कि यदि कोई व्यक्ति **तपस्या** नहीं करता और प्रेम का विकास नहीं करता तो उसके लिए भागवत के समान सरल पुस्तक भी अर्थहीन ही रह जाती है। अतः साधना ही हमारे ग्रन्थों मे दिये गये आध्यात्मिक ज्ञान तक ले जाने वाले द्वार का उद्घाटन करती है। धर्म केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करने का नहीं परंतु होने और बनने का

कई मनुष्यों के मन में यह शंका रहती है कि वे आत्म-सुधार के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं वे उपयोगी हैं या नहीं। उनका मन **प्रारब्ध** या पूर्वनिर्धारित भाग्य की भावना से ग्रस्त रहता है। 'पूर्वनिश्चित भाग्य' कोई चीज नहीं। हमने जो बोया है उसी का फल हम भोग रहे हैं। हमें आपने दुष्कर्मों का फल भोगने और अपनी दुष्प्रवृत्तियों को बदलने के अवसर बार-बार दिये जाते हैं। शुभ और अशुभ प्रवृत्तियों की लड़ाई दो बकरों की लड़ाई की तरह है। जो अधिक शक्तिशाली होगा वह कमजोर को पीछे हटा देगा। कृष्ण की शरण में जाओ और दुष्प्रवृत्तियों से युद्ध करने के कार्य में उनकी शक्ति को तुम्हारे पक्ष से काम करने दो। तुम उन्हें अपना सारथी बना लो। यदि तुम अपने कंधों पर जिम्मेदारी लेते हो, यदि तुम अपनी अल्प-शक्ति पर विश्वास करते हो तो तुम पराजित हो जाओगे।

साधना—के विषय का प्रतिपादन करते समय हमें उन मानसिक और नैतिक गुणों पर विचार करना ही होगा, जिनका विकास साधक को अवश्यमेव करना चाहिए और उन साधनों पर भी हमें विचार करना होगा जिनका अनुसरण इन परमावश्यक गुणों का विकास करने के लिये करना चाहिए। योगी को जिन "दिव्य" गुणों का विकास करना चाहिए उनका वर्णन भववद्गीता के १६वें अध्याय में किया गया है।

अभयं सत्वसंशुद्धिज्ञनियोगत्यवस्थिति ॥
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥

पैराग्राफों में उनमें से कुछ गुणों पर संक्षेप में विचार किया जावेगा।

सच्चाई–हमें कार्य, विचार और वचन–सभी में सभ्यता का अवलम्बन करना चाहिए। सच्चाई के बिना अध्यात्म-जीवन में कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं की जा सकती, जबकि सच्चे प्रयत्न से कालान्तर में सभी चीजें प्राप्त की जा सकती हैं। सच्चाई का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि हमारे विचार और भाव हमारे बाहरी कार्यों से एकत्व रखें परन्तु यह भी है कि हमारे प्रयत्न, उत्साह और पूर्ण मनोयोग के साथ किये जायँ। केवल दिनचर्या समझकर अथवा केवल आदत के कारण बिना उचित दृष्टिकोण या भाव के कार्यों को करने से अधिक लाभ नहीं हो सकता। तुलसीदास जी को दिखावटीपन अप्रिय था अतः उन्होंने मन, शरीर और वचन में कपट न रखने की चेतावनी बार-बार दी है। हमें सत्यवादी होना चाहिये। सत्य बोलना सरल है या झूठ? बहुत लोग हर समय इस भ्रम में पड़कर सदैव झूठ बोलते हैं कि वे इस प्रकार आसानी से कठिनाइयों से बच सकते हैं। अनेकों वकील अपने मुकदमों को जीतने के लिये झूठी बातें गढ़ने में अपना अधिकांश समय और शक्ति खर्च कर देते हैं। वे बड़ी सावधानी से बहस तैयार करते हैं जिन्हें बनाने में उन्हें कई घंटे और कई दिन लग जाते हैं, जबकि सादा सत्य केवल कुछ मिनटों में ही बताया जा सकता है। सत्य का जीवन बिताना असत्यपूर्ण जीवन बिताने से कई गुना अधिक आसान

है।-इसी प्रकार सत्य पर आधारित निष्कपट आध्यात्मिक जीवन मिथ्याडम्बर, मिथ्याचार और असत्यता पर आधारित कृत्रिमतापूर्ण जीवन से कई गुना अधिक श्रेयस्कर है। हम जीवन की समस्याओं को इच्छाओं के कुहासे से देखते हैं और हमारा मन भ्रम के बादलों से आच्छादित है अतः वह सत्यतापूर्ण जीवन हमें कठिन जान पड़ता है।

श्रद्धा–श्रद्धा केवल विश्वास नहीं है। यह एक महान् गत्यात्मक शक्ति है और श्रद्धा के बिना आध्यात्मिक जीवन में प्रगति सम्भव नहीं है। जो कुछ तुम करते हो उसे या तो श्रद्धा पूर्वक करो अथवा मत करो। श्रद्धा के बिना जो कुछ किया जाता है वह व्यर्थ होता है। यदि तुम बिना श्रद्धा के दान देते हो तो वह व्यर्थ है। यदि तुम हिमालय में श्रद्धा रहित होकर तपस्या करते हो तो वह निरर्थक है। यदि तुम श्रद्धा रहित होकर उपासना करते हो तो उसका कोई मूल्य नहीं। श्रद्धा का अभाव संसार को नष्ट कर रहा है।

श्रद्धा और ज्ञान एक दूसरे की अन्योन्य वृद्धि करते हैं। बिना सच्चे ज्ञान के सच्ची श्रद्धा नहीं हो सकती, परन्तु थोड़ी सी श्रद्धा से कुछ ज्ञान प्राप्त होता है और यह श्रद्धा को कुछ आगे बढ़ाता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे की पुष्टि करते जाते हैं जब तक कि सच्चे ज्ञान और सच्ची श्रद्धा की उत्पत्ति नहीं हो जाती। वास्तविक अनुभव से ही श्रद्धा पक्की बनती है।

त्याग—त्याग करना क्यों आवश्यक है ? क्यों न हम खायें, पियें और मौज करें ? वास्तविक कठिनाई तो यह है कि जब तक कोई व्यक्ति **विषय-भोग** से ऊपर नहीं उठ जाता तब तक उसे सच्चे सुख या आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति सुखी होना चाहता है परन्तु सुखी होने का एक ही रास्ता है—अपने ही भीतर सुख की तलाश करना। इंद्रियों के भोगों के पीछे मत दौड़ो। इस प्रवृत्ति का दमन करो। बाहर जो कुछ भी है वह अस्थाई और नश्वर है। उन वस्तुओं में अपना मस्तिष्क और हृदय लगाने से क्या लाभ, जो किसी भी क्षण छीनी जा सकती है। जो प्रलोभन का दमन करते हैं और मन को अनासक्त रखते हैं—केवल वे ही बुद्धिमान हैं। न्य वे सब लोग मूर्ख हैं जो संसार की भ्रामक और नश्वर वस्तुओं के पीछे दौड़ते हैं, भले ही वे बड़े विद्वान और बुद्धिवादी हों और अपने आपको बड़ा बुद्धिमान मानते हों। सच्चा आनन्द शान्ति से ही आ सकता है और पूर्ण त्याग के बिना शान्ति सम्भव नहीं है। बुद्धिमान् मनुष्य पूर्णतया अनासक्त रहता है और सदैव भगवान के साथ रहता है। एक प्रकार से हम सभी भगवान के साथ रहते हैं परन्तु हमें इसका ज्ञान नहीं होता।

त्याग की आवश्यकता के बारे में हमारे मन में स्पष्ट विचार होना चाहिए। भगवत्साक्षात्कार के पहले सभी सांसारिक लक्ष्यों और इच्छाओं का परित्याग करना हमारे लिए परमावश्यक है। सांसारिक जीवन के प्रति हमारे आकर्षण

का कारण हमारी अज्ञानता है। यदि मैं सांसारिक वस्तुओं की व्यर्थता का ज्ञान प्राप्त कर लेता हूं तो उनके लिए मेरे मन में कोई आकर्षण नहीं रहेगा परन्तु यदि मैं उन्हें महत्व-पूर्ण मानता हूं तो वे मुझे आकर्षित करते ही रहेंगे। भगवान ने हमें बुद्धि दी है। तुम अपनी आंखों को खोलकर क्यों नहीं देखते और स्वभावतः ही त्याग क्यों नहीं करते ? पूर्ण त्याग होना चाहिए, उसमें मन में संग्रह की भावना और अपनी सुरक्षा के लिए खास-खास जरूरी चीजों को रखना नहीं होना चाहिए। भीतरी त्याग बाहरी त्याग से अधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु बाहरी त्याग के बिना हम अपने आपको धोखे में डाल-कर यह सोच सकते हैं कि हममें त्याग है जबकि वास्तव में हम आसक्त हैं।

ध्यान देने की दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पहले त्याग आता है और फिर साक्षात्कार होता है। बाह्य जीवन में हम प्रायः अधिक प्रिय वस्तु को पहले प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और बाद में कम प्रिय वस्तुओं का परित्याग करते हैं परन्तु आध्यात्मिक जीवन में हमें श्रद्धा होनी ही चाहिये और आनन्दपूर्वक त्याग करना चाहिये क्योंकि हमें प्रकृति के नियमों में और भगवान् की उदारता में पूर्ण विश्वास है।

आत्म-समर्पण—इससे हम दूसरे सद्गुण अनन्यता तक पहुंचते हैं जिसका विकास भक्त को करना आवश्यक है। तुम्हें प्रत्येक वस्तु में भगवान् पर निर्भर रहने की आदत

डालनी चाहिए। यहां तक कि हमें रोगों से लड़ने में और अपनी सांसारिक कठिनाइयों को दूर करने में भी भगवान् पर अवश्यमेव पूर्ण निर्भर रहना चाहिए। यह कठिन है, परन्तु हम धीरे-धीरे इस अभ्यास को बढ़ा सकते हैं और हम सांसारिक चिन्ताओं से अपने आपको पूर्ण मुक्त कर सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम दैनिक जीवन में काम आनेवाली सभी तुच्छ वस्तुओं के लिये प्रार्थना करते रहें। बुद्धिमान् मनुष्य भगवान् से कोई वस्तु नहीं चाहता क्योंकि वह जानता है कि ईश्वर जो कुछ करता है वह उस विशेष परिस्थिति में उसके लिये सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु यदि हम श्रद्धा एवं अनासक्ति के उस स्तर तक नहीं पहुंचे हैं और यदि हमारे जीवन में कोई भयंकर आपत्ति आ पड़ी है तो उस आपत्ति को दूर करने के लिये स्वनिर्मित उपायों को काम में लाने की अपेक्षा भगवान् से प्रार्थना करना और उस पर आश्रित रहना अधिक श्रेयस्कर है। आखिर वे हमारे पिता हैं और अपनी आवश्यक चीजों को पिता से मांगने में कोई दोष नहीं है।

साधारण व्यक्ति इस प्रकार भगवान् पर निर्भर नहीं रह सकता क्योंकि उसमें आवश्यक श्रद्धा का अभाव है और उसका मन सांसारिक इच्छाओं से परिपूर्ण है परन्तु जो मनुष्य भगवान् की कृपा और भक्ति चाहता है उसे उन पर निर्भर रहना अवश्य सीख लेना चाहिए। गृहस्थ के लिये ऐसी भावना रखना कठिन है परन्तु दृढ़ निश्चयपूर्वक मन को प्रशिक्षण देने से यह सम्भव है। गृहस्थ जीवन को ऐसा युद्ध

क्षेत्र मानना चाहिए जिसमें हमें अपनी मलिन वासनाओं से सतत् युद्ध करना पड़ता है और आवश्यक शक्ति एवं पवित्रता का विकास करना पड़ता है। यदि तुम शीघ्र ही अनन्यता का विकास करना चाहते हो तो किसी एकान्त निर्जन स्थान को चले जाओ जो सभ्यता से दूर हो। देखो कि किस प्रकार उनके अदृश्य हाथों से तुम्हारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक समय पर की जाती है। तभी तुम उसकी महानता, उसकी शक्ति और अपने भक्तों के लिये उसकी व्यग्रता का अनुभव कर सकोगे। जब तुमको इस प्रकार के अनुभव होंगे तब तुम सभी परिस्थितियों में उस पर निर्भर रह सकोगे। साधारण मनुष्य को उनकी शक्ति का ज्ञान नहीं होता। वह नहीं जानता कि हमारे जीवन में प्रत्येक वस्तु उन्हीं से आती है चाहे हमें इसका ज्ञान हो या नहीं। यही कारण है कि वह उन पर निर्भर नहीं रह सकता। परन्तु भक्त में अनन्यता होनी ही चाहिये।

शान्ति पा सकते हैं जो **निर्मोह** और **निरहंकार** हैं। अतः बाह्
संसार की वस्तुओं में पूर्णतया अनाशक्त रह कर उन्हीं में
आशक्ति बढ़ाओ। हिरण मृगतृष्णा की ओर दौड़ता है क्योंकि
वह पशु है और उनमें **बुद्धि** नहीं है। परन्तु भगवान् ने हमें
बुद्धि दी है और हमें भ्रम आकर्षणों की ओर पशु की तरह
नहीं दौड़ना चाहिए जबकि आनन्द का उद्गम हमारे भीतर
ही छिपा है।

शक्ति का परिवर्तन—शक्ति किसी न किसी रूप में
अभिव्यक्त होती ही है चाहे वह रूप शारीरिक हो,
भावात्मक हो या मानसिक हो। उसे बदलने या ऊंचे
स्तर तक ऊपर उठाने के लिए हमें उसके निम्न स्तरों पर
बांध बाँधना पड़ेगा। हमारी इच्छाओं की शक्ति बाह्य संसार
की विभिन्न वस्तुओं के पीछे भागने में नष्ट हो रही है। हमें
भगवान् और केवल भगवान् को ही चाहने के लिए निम्न
जगत की वस्तुओं की चाह छोड़नी होगी। इससे हमारे
जीवन में क्षणिक शून्यता आ सकती है परन्तु यदि हम दृढ़
निश्चयपूर्वक डटे रहें और अपने आप को नीचे न गिरने दें
तो इस प्रकार एकत्रित की गई शक्ति कभी न कभी
भगवत्प्राप्ति की तीव्र इच्छा के रूप में प्रकट होती है जिसे
मुमुक्षा कहते हैं। यदि शक्ति हो तो उसे बदलना सरल है।
किसी भी व्यक्ति को केवल उसकी दिशा बदलनी है। यदि
इच्छा न हो तो उसे बदलना बड़ा कठिन होता है। उस
स्थिति में पहले शक्ति के स्वाभाविक प्रवाह में आने वाली

आनन्द उठा सकते हो। एक साथ ही उनमें बुद्धिमत्तापूर्ण आसक्ति एवं अनासक्ति होनी चाहिए। केवल तभी तुम स्वतंत्रतापूर्वक रह सकते हो। तुम जितनी चीजों के सम्पर्क में आते हो उनके साथ "मेरा" "मेरा" क्यों जोड़ते हो। तुम्हारी पत्नी या तुम्हारा पति दूसरे ही क्षण तुम्हें छोड़ सकता है और यदि तुम आसक्त हो तो तुम्हें अत्यन्त दुःखी होना पड़ेगा।

प्रायः लोग मेरे पास दुःखपूर्ण स्थिति में आते हैं, पति और पत्नी कई संतानों के साथ आते हैं। उनका जीवन नरक है। पत्नी का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, बच्चे कमजोर रहते हैं और पति दुःखी रहता है क्योंकि वह एक रुग्ण पत्नी और कई संतानों का भार नहीं उठा सकता। यहां तक कि वह उनको ठीक-ठीक खिला-पिला भी नहीं सकता। ऐसे जीवन से सारा आनन्द लुप्त हो जाता है।

यदि हम रुककर सोचें तो हमें ज्ञात होगा कि आत्म संयम का अभ्यास ही इन कष्टों को दूर कर सकता है। आत्म संयम पति-पत्नी के व्यक्तिगत जीवन में शक्ति प्रदान करेगा और सम्पूर्ण परिवार को आर्थिक सुरक्षा एवं कष्टों से मुक्ति प्रदान करेगा। आत्म संयम का अभ्यास प्रति बार हमें अधिकाधिक शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्रदान करता है, जब कि जितनी बार हम अपनी आदतों और इच्छाओं के प्रति सिर झुकाते हैं उतनी बार हम अधिकाधिक कमजोर बनते जाते हैं। यदि पति-पत्नी ठीक-ठीक संयमित जीवन

बितायें तो गृहस्थाश्रम स्वर्ग बन सकता है। इसमें उन्हें जरूरतमन्दों की सहायता करने और साधु-सन्यासियों की सेवा करने का विशेषाधिकार प्राप्त होता है। वे भगवान् तथा देवियों और देवताओं की पूजा कर सकते हैं। वे साधना कर सकते हैं और जीवन के महान् रहस्यों को समझने का प्रयत्न कर सकते हैं और भगवान् को जान सकते हैं। प्राय: हमारे कष्टों के कारण हमारी कमजोरी और आत्मसंयम का अभाव ही होते हैं परन्तु हम इसे समझने का प्रयत्न नहीं करते और गृहस्थाश्रम को दोष देते हैं। यदि हम अपनी बुद्धि का उपयोग करें और एक आदर्श गृहस्थ बनने का प्रयत्न करें तो हमें गरीबी में भी शान्ति एवं सुख की प्राप्ति होगी और हमारी सभी समस्याएँ काफूर हो जावेंगी।

प्रत्येक को आत्म-संयम का अभ्यास प्रारम्भ से ही करना चाहिए। यदि हम मन को अपनी इच्छानुसार कार्य करने दें तो हम क्रमश: उसके दास बन जावेंगे। हममें शक्ति होनी ही चाहिए। आत्म-संयम के अभ्यास से कोई भी व्यक्ति अपने मन और इन्द्रियों का स्वामी बन सकता है। सच्चा विजेता कौन है? नैपोलियन? हिटलर? नहीं। वह जिसने अपना मन जीत लिया है।

यदि ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम में जीवन ठीक-ठीक बिताया गया हो, और पूर्ण आत्म-संयम की प्राप्ति की गई हो तो अन्य दो आश्रमों अर्थात् वानप्रस्थ और गृहस्थाश्रमों में जीवन सुगम और आनन्द पूर्ण बन जाता है। एक ऊँचे भवन

के लिए सुदृढ़ नींव की आवश्यकता है अन्यथा ज्यों ही ते आँधी का आघात लगेगा त्यों ही वह उलट कर गिर जावेगा केवल ब्रह्मचर्य की सुदृढ़ नींव पर ही अध्यात्म-जीवन व अट्टालिका का निर्माण किया जा सकता है।

अहिंसा—अहिंसा तीन प्रकार की है–(१) आध्यात्मिक (२) मानसिक और (३) शारीरिक। भगवान् सब जीवं में निवास करते हैं। जो यह विश्वास करता है कि भगवा सर्वव्यापी हैं वह किसी दूसरे व्यक्ति को कैसे हानि पहुँच सकता है? यदि तुम किसी व्यक्ति से घृणा करते हो तो वास्तव में तुम उसके हृदय में स्थित भगवान् से ही घृणा करते हो। यदि तुम किसी व्यक्ति को चोट पहुंचाते हो तो वास्तव में तुम अपने लिए ही दुष्कर्म (पाप) उत्पन्न करते हो। सच्चा भक्त सब प्राणियों में भगवान् की पूजा करता है; और इसीलिए उसके लिए किसी जीव की हानि करना असम्भव हो जाता है भले ही इन जीवों ने उसका अपकार किया हो। लोग शारीरिक और मानसिक हिंसा समझते हैं। परन्तु आध्यात्मिक हिंसा सबसे खराब है। अपने आध्यात्मिक विकास के लिए कुछ न कुछ करना ही आध्यात्मिक हिंसा है जो कुछ तुम्हें भगवान् के चरणों तक पहुंचाता है, वह महत्व- पूर्ण है। यदि तुम मुक्ति के लिए कुछ नहीं करते तो बाहरी बातों में अहिंसा का पालन करने से कोई विशेष लाभ नहीं और न उसमें अधिक सफलता ही मिल सकती है। क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति सभी प्राणियों के प्रति ठीक-ठीक पूज्य

भाव नहीं रखता और उनको भगवान् का रूप नहीं मानता तब तक वह दैनिक जीवन के कष्टों व झगड़ों के बीच रहकर अहिंसा का पालन किस प्रकार कर सकता है जहां लोग उसे हानि और चोट पहुंचाने की चेष्टा करते रहते हैं। यदि उसका दृष्टिकोण ठीक हुआ और वह सबमें भगवान् को देखता है तो उसकी उपस्थिति में सारे झगड़े व शत्रुता समाप्त हो जावेगी।

साधना का एक अंग है उपरोक्त गुणों का प्रयत्नपूर्वक विकास करना। दूसरा महत्वपूर्ण अंग है ऐसी क्रियायें करना जिनसे भगवान् के प्रति भक्ति उत्पन्न हो और मन पवित्र तथा सत्य का प्रकाश ग्रहण करने योग्य बने। सारांश में इन सबको **उपासना** कहा जाता है। **उपासना** के साधन व्यक्ति विशेष के स्वभाव पर और उसके द्वारा पहुंचे गये स्तर पर निर्भर करते हैं। नवसिखुआ साधक स्वभावतः ही प्रार्थना से प्रारम्भ करेगा और इस प्रकार क्रमशः अपनी बहिर्मुखी चेतना को अन्तर्मुखी बनावेगा। उन्नत साधक जिसमें सच्चा वैराग्य है किसी एकान्त स्थान में जाकर अपना सारा समय जप और ध्यान में लगाना चाहेगा। भक्त सदैव भगवान् के रूप और उनकी लीलाओं में अपना मन लगाना चाहेगा। ज्ञानी अपनी चेतना में अधिकाधिक डुबकी लगाना चाहेगा और एक के बाद एक उन सभी परदों को हटाना चाहेगा जो सत्य के प्रकाश को आच्छादित किये हैं। अन्ततोगत्वा दोनों एक ही लक्ष्य तक पहुंचेंगे परन्तु विभिन्न मार्गों से। साधक की क्रियायें इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी उन

दोनों ओर से सहायता मिलेगी। अपने सम्पूर्ण हृदय से मीरा और तुलसीदास की तरह भक्ति के लिए प्रार्थना करो। भगवान् तुम्हारी प्रार्थना अवश्यमेव सुनेंगे। साथ ही निःसन्देह हमें अपने मन पर सतत् चौकसी रखनी पड़ेगी ताकि कोई अपवित्र विचार प्रवेश न करे। हमें अपने आदर्शों को कार्यान्वित करने का सतत् प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम सच्चे हृदय से प्रार्थना करें तो भगवान् हमें तुरन्त ही सब प्रकार के प्रलोभनों से ऊपर उठा लेंगे। प्रलोभनों पर विजय पाने के लिए और अपनी कमजोरियों से युद्ध करने के लिए प्रार्थना सबसे श्रेष्ठ उपाय है। परन्तु प्रार्थना तीव्र और सच्चे हृदय से होनी चाहिए और हममें हमारे चरित्र में से सब कमजोरियों को निकालने के लिए तीव्र इच्छा एवं सच्चा प्रयत्न होना चाहिए।

ध्यान—प्रार्थना, जप एवं इसी प्रकार की दूसरी क्रियायें साधक को क्रमशः उस अवस्था तक ले जाती हैं जहां वह ध्यान का उच्चतर अभ्यास कर सकता है। ध्यान का आध्यात्मिक अर्थ है मन को भगवान् की ओर ले जाने की क्रिया। भगवान् के चरणों में सम्पूर्ण मन रखना ही चाहिए। यदि तुम्हारा मन सांसारिक वस्तुओं की ओर दौड़ रहा हो तो तुम किस प्रकार ध्यान कर सकते हो? मन की शक्तियां सदैव सैकड़ों वस्तुओं की ओर दौड़ने में नष्ट हो रही हैं। धन, नाम और शारीरिक सुख की इच्छाएं तुमको सदैव नीचे की ओर खींच रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में मन एकाग्र

नहीं किया जा सकता। जब आसक्तियाँ नहीं रह जातीं तब मन शान्त हो जाता है और तुम आसानी से ध्यान लगा सकते हो।

लोग प्रायः मेरे पास आते हैं और मेरी सहायता से **समाधि** की अवस्था प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हैं। **समाधि** के सम्बन्ध में उनका विचार पूर्णतया भ्रमपूर्ण है। वे सभी सांसारिक इच्छाओं और वासनाओं से चिपके रहकर समाधि प्राप्त करना चाहते हैं। वे लोक और परलोक दोनों चाहते हैं जो असम्भव है। यह उसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति अच्छा संगीत सुनना चाहता हो और नृत्य देखना चाहता हो जब कि एक मोटी दीवाल उसे कलाकारों से अलग कर रही हो। यदि उसमें सच्ची इच्छा हो तो उसे सर्वप्रथम दीवाल तोड़नी ही चाहिए। जब सम्पूर्ण इच्छाएँ त्याग दी गई हों, सभी आसक्तियाँ नष्ट कर दी गई हों और मन पूर्ण विश्रान्ति की अवस्था को पहुंच गया हो तभी **समाधि** की प्राप्ति हो सकती है। इसके लिए दीर्घकालीन तैयारी एवं मन के सतत् कठोर प्रशिक्षण की आवश्यकता है, और तब इस प्रकार यह देखा जावेगा कि सामान्य सांसारिक मनुष्य जो अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं और सांसारिक विचारों में लिप्त रहकर **समाधि** में कूदना चाहते हैं, उनकी यह इच्छा कितनी अर्थहीन है।

चीजों को समय देना ही होगा। जब तक परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल नहीं हो जातीं, जब तक हम अवकाश प्राप्त नहीं हो जाते और जब तक हमें अधिक समय नहीं मिल जाता तब तक के लिए हमें जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य टालना नहीं चाहिए। तब तक हमारा शरीर क्षीण हो जावेगा और आदतें अपनी जड़ें जमा लेंगी। जब तक वृद्धावस्था नहीं आ जाती और दूसरी विपत्तियाँ घेर नहीं लेतीं तब तक के लिए जो 'सत्य की खोज' को टालते जाते हैं वे उस मूर्ख की तरह हैं जो घर में आग लगने पर कुआं खोदना प्रारम्भ करता है।

नवाँ अध्याय

सगुण और निर्गुण उपासना

हमारे **ऋषिगण** दयालु थे। उन्होंने न केवल भगवान् को प्राप्त किया परन्तु वे जनता को भी उनके चरण-कमलों तक ले जाना चाहते थे। यदि वे भगवान् के अव्यक्त स्वरूप का वर्णन करते तो ऐसा कैसे सम्भव था? अतः उन्होंने जनता को पूजा के लिए सगुण रूप प्रदान किये। उन्होंने कहानियों के साथ अध्यात्म जीवन के सरल सत्य भी प्रदान किये। तुम देखोगे कि कहानियों में वर्णित प्रत्येक घटना के बाद कहानियों में छिपे ज्ञातव्य सत्य को भी प्रकट किया गया है। **रामायण, भागवत** तथा अन्य **पुराणों** में भी हम एक दूसरे में समाविष्ट कहानियों और सिद्धान्तों का मिश्रण पाते हैं। कहानियों से उत्पन्न दिलचस्पी के कारण मन अधिकाधिक एकाग्र हो जाता है और तब स्वभावतः अन्तःस्थित सत्य तक पहुंच जाता है।

सगुण और निर्गुण उपासना तत्वतः एक ही हैं, अन्तर केवल इतना है कि **सगुणोपासना** अधिक सरल है। इसमें कुछ आधार है। सामान्य जीवन में भी हम स्थूल वस्तुओं की सहायता से बालकों को गणित सिखाते हैं। अतः प्रारम्भिक अवस्थाओं में 'रूप' की और साथ ही 'रूप' में

सम्बन्धित सुन्दर कथाओं की अत्यन्त आवश्यकता है। केवल 'रूप' पर विचार करने से हमें ज्यादा लाभ नहीं होता। परन्तु राम और कृष्ण से सम्बन्धित कथाओं पर विचार करने से हम में भक्ति जाग्रत हो जाती है। साधारण लोग निराकार वस्तुओं पर विचार करने में असमर्थ होते हैं परन्तु वे सुन्दर रूप पर आसानी से अपना मन एकाग्र कर सकते हैं और सांसारिक चीजों को कुछ समय के लिए भूल सकते हैं। दिव्य-रूपों की सभी कल्पनाएं अद्‌भुत प्राकृतिक घटनाओं एवं उनकी सुन्दरता से निःसृत हैं। परन्तु भाव का होना आवश्यक है। बिना भाव के पूजा व्यर्थ है। इन दिव्य-रूपों की पूजा करते समय अन्य सब कुछ भूल जाओ। तुम अपने मन में सब प्रकार के कुत्सित रूपों को रखते हो। तुम अपने मन को शक्ति देने के लिए और भक्ति को प्रज्वलित करने के लिए राम, कृष्ण या अन्य किसी देवता के सुन्दर रूपों का चिन्तन क्यों नहीं कर सकते? ये रूप जड़ नहीं हैं। वे दिव्य-रूप हैं, जिनमें दिव्य शक्ति भरी हुई है और वे तुम्हारे विचारों और भावनाओं को संचालित करने की क्षमता रखते हैं।

दसवां अध्याय

सद्गुरु

'गुरु' शब्द की उत्पत्ति दो अक्षरों से है। 'गु' जिसका अर्थ है अन्धकार और 'रु' जिसका अर्थ है दूर करने वाला। 'गुरु' अन्धकार को दूर करने वाला है। सभी सांसारिक गुरुजन एक प्रकार से अन्धकार को दूर करने वाले हैं। वे निम्न लोकों की वस्तुओं का ज्ञान प्रदान करते हैं। सद्गुरु भी अन्धकार को दूर करने वाले हैं परन्तु वे अविद्या के अन्धकार को दूर करने वाले हैं और साधक को **'सत्'** अर्थात् सृष्टि के अन्तिम सत्य का ज्ञान प्राप्त कराने में सहायता पहुंचाते हैं। किसी विज्ञान या कला का अध्ययन करते समय हमें उस व्यक्ति के मार्ग प्रदर्शन में रहना पड़ता है जो उस विज्ञान या कला का ज्ञाता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अध्यात्म-जीवन के मार्ग पर चलना चाहता है तो उसे सद्गुरु के मार्ग प्रदर्शन पर चलना होगा जो स्वयं मार्ग पर चल चुका हो और सत्य को प्राप्त कर चुका हो। केवल वही गुरु जो भगवान् को जानता है, तुमको भगवान् से प्रेम करना और प्रेम के द्वारा उस भगवान् को जानना सिखा सकता है। तुमको उन लोगों के पास जाना होगा जिन्होंने दिव्य-प्रेम की मदिरा छककर पी ली है और जो अपने स्वयं के अनुभव से तुमको भगवान् के बारे

में बता सकते हैं। ऐसा गुरु भले ही सामान्य मनुष्य की तरह दिखाई दे परन्तु यथार्थ में वह मानवता के परे है। संसार के प्रति सहानुभूति होने के कारण न कि अपने लिए वह बाह्य जगत् में सब प्रकार के कार्यों में रत हो सकता है। उसे न कुछ खोना है, न कुछ पाना है। वह तो स्वयमेव मुक्त है। वह भगवान् या ब्रह्म बन गया है। ऐसे मानवरूपी भगवान् का चेला बनना कितने सौभाग्य की बात है! ऐसा गुरु आध्यात्मिक दृष्टि से सोये हुये मनुष्य को जगा सकता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब वह मनुष्य गुरु के उपदेशों का पालन करे। वह ऐसे हजारों मनुष्यों के हृदयों में ज्ञान दीप जला सकता है जो **अधिकारी** हैं। वह कई जन्मों की संचित वासनाओं को उसी प्रकार जला सकता है जिस प्रकार जलती हुई दियासलाई लकड़ी की ढेरी को जला सकती है परन्तु ऐसा गुरु दुर्लभ है।

> दुर्लभं त्रयमेवैतद्दैवानुग्रह हेतुकम्।
> मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

जब साधक सच्चे हृदय से खोज करता है और भगवान् को पाने की तीव्र इच्छा रखता है तभी ऐसे गुरु की प्राप्ति होती है। वास्तव में भगवान् ही गुरु के रूप में मिलते हैं। भगवान् केवल प्रेम से आकर्षित होते हैं। वे केवल प्रेम से बंधे हैं, अन्य किसी बन्धन से नहीं।

लिए साधक को कुछ बातें याद रखनी चाहिए जो गुरु-चेला के सम्बन्ध में बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

सर्वप्रथम चेला को अपने गुरु में पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए। उसे चाहिए कि वह गुरु को ही एकमात्र मार्ग प्रदर्शक माने। उसे चाहिए कि वह एक गुरु से दूसरे गुरु के पास न भागे जैसा कि कई साधकों की आदत होती है। यदि किसी व्यक्ति को जल प्राप्त करने के लिए कुआं खोदना है तो उसे चाहिए कि वह चुने हुए स्थान पर ही ध्यान जमावे और दृढ़ निश्चयपूर्वक खोदता जाय तब तक कि वह जल तक नहीं पहुंच जाता। यदि वह बार-बार स्थान बदलता है और भिन्न-भिन्न स्थानों पर खोदता जाय तो उसे कभी भी जल नहीं मिलेगा। यह सत्य है कि प्रारम्भिक अवस्थाओं में चेला अपने गुरु की महानता नहीं जानता क्योंकि वह स्वयं अविकसित रहता है। परन्तु जब वह श्रद्धा व भक्तिपूर्वक अपने गुरु की सेवा करता है, और उसके अन्तःचक्षु खुलते जाते हैं त्यों-त्यों वह गुरु की वास्तविक शक्तियों, प्रेम एवं ज्ञान का अपरोक्ष एवं वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता जाता है। तब उसकी गुरुभक्ति श्रद्धा पर नहीं बल्कि स्वयं के अनुभव पर निर्भर रहती है और उसे कोई भी शक्ति विचलित नहीं कर सकती। परन्तु इस स्थिति तक पहुंचने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है, सम्पूर्ण हृदय से की गई भक्ति की आवश्यकता है, सेवा की आवश्यकता है, गुरु पर पूर्ण निर्भरता, गुरु की अनन्यता की आवश्यकता

है। तुम्हें अपने गुरु पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए और तुम्हारे पास जो कुछ भी है उसे गुरु को समर्पण करना चाहिए। तुम्हें अपने हृदय के सभी दरवाजे उनके लिए पूर्णतया खुले रखना चाहिए और उनसे कुछ भी छिपाकर या गुप्त नहीं रखना चाहिए। जब कमरा खुला हो तभी सूर्य उसे प्रकाशित कर सकता है। वह उस कमरे को कैसे प्रकाशित कर सकता है जिसमें उसकी किरणों का प्रवेश ही नहीं होता। यही कारण है कि सभी महान् गुरुओं ने भक्ति और सेवा पर बड़ा जोर दिया है। परन्तु सेवा सम्पूर्ण हृदय से की गई सत्य, पवित्र और निष्कपट होनी चाहिए। जहां चेला का दृष्टिकोण ठीक हुआ वहां वह धीरे-धीरे दृढ़ता से परन्तु अविराम गति से बदलता जाता है और अधिकाधिक अपने गुरु के समान बनता जाता है, जो मनुष्य के रूप में भगवान् हैं।

गुरु-चेला के सम्बन्ध में दूसरी सबसे महत्वपूर्ण चीज है व्यक्तिगत सम्पर्क। हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं में पारस पत्थर का वर्णन मिलता है जो तांबा को सोना बना देता है। परन्तु पत्थर को तांबे का स्पर्श करना ही पड़ता है। दोनों को अलग-अलग रखने से फल प्राप्ति नहीं होगी। अतः गुरु और चेला का सम्पर्क या सत्संग आवश्यक है। तब चेला सोना नहीं बल्कि पारस ही बन जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि केवल शारीरिक सम्पर्क आवश्यक नहीं है बल्कि हृदय और मन का सम्पर्क ही चेला में परि-

वर्तन ला सकता है। गुरु के प्रति चेला के दृष्टिकोण-भाव पर ही शक्ति का प्रवाह निर्भर है। केवल श्रद्धा और प्रेम ही आवश्यक नहीं हैं परन्तु आज्ञापालन और निष्काम सेवा भी आवश्यक हैं। चेला को यह अवश्यमेव अनुभव करना चाहिए कि उसे जो कुछ मिल रहा है और आध्यात्मिक मार्ग पर वह जो कुछ उन्नति कर रहा है वह सब गुरु की अपार कृपा का फल है। मतभेद होने से कुछ नहीं बिगड़ता यहां तक कि यदि शिष्य को विश्वास हो कि वह सिद्धान्त के लिए लड़ रहा हो तो विरोध होने से भी कोई हानि नहीं। दयालु सद्गुरु इसे समझ जावेंगे और बुरा नहीं मानेंगे। उल्टे वे यह जानकर प्रसन्न होंगे कि चेले में सत्य के लिए लड़ने का साहस है। परन्तु निष्कपटता, सच्चाई एवं सही कार्य करने के लिए दृढ़ता की नितान्त आवश्यकता है।

लोगों के मन में गुरु कृपा के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त धारणाएँ हैं। यह सत्य है कि आध्यात्मिकता गुरु से चेला तक ठीक उसी प्रकार पहुंचाई जा सकती है जिस प्रकार संपत्ति एक धनवान् व्यक्ति से निर्धन व्यक्ति तक पहुंचाई जाती है। परन्तु यह पहुंचाने का कार्य अचानक या मनमाना नहीं होता जो केवल चेला के मांगे जाने पर ही निर्भर हो। चेला को अपनी मुक्ति के लिए स्वयं प्रयत्न करना पड़ता है। गुरु कृपा पाने की कामना रखने के पहले उसे आवश्यक गुणों का विकास करना ही पड़ता है। वास्तव में गुरु कृपा शिष्य के प्रयत्नों का फल है। प्रयत्न का अर्थ केवल सेवा के ठोस कार्यों को करना

ही नहीं है परन्तु इसमें उचित भावना का विकास करना भी शामिल है जैसे आत्मसमर्पण। आत्मसमर्पण कोई अभावात्मक गुण नहीं है जैसा कि लोग प्रायः समझते हैं। इसमें प्रचण्ड शक्ति भरी है और इसके लिये महान् और अटूट प्रयत्न की आवश्यकता है परन्तु यह **साधना** के क्षेत्र में अन्य साधनों की तरह **गुरु कृपा** से प्राप्त कर सकता है। **गुरु कृपा** और उसके प्रवाह के स्वभाव को समझने के लिए हमें जल-प्रवाह के उदाहरण को समझना होगा। पानी हमेशा ऊंचे स्थान से नीचे स्थान की ओर बहता है, उल्टी दिशा में कभी नहीं बहता। अतः विनम्रता, **दीन-भाव** का होना परमावश्यक है। यदि कोई शक्ति की परवाह नहीं करता अथवा आत्म-समर्पण का सही भाव नहीं अपनाता तो शक्ति कैसे प्रवाहित हो सकती है? यदि **दीन-भाव** हो तो दूसरी सब चीजें आप से आप आती हैं; यहां तक कि बाधाएँ भी हटा दी जाती हैं। अतः शिष्य को पहले योग्य बनाना चाहिये फिर किसी चीज की इच्छा करनी चाहिए। योग्यता आवश्यक है। प्रशिक्षण आवश्यक है। यहां तक कि सद्गुरू की प्राप्ति भी किसी के कर्मों पर निर्भर है। कई लोगों को आश्चर्य होता है कि केवल गुरु पर श्रद्धा रखने से काम चल सकता है या नहीं? वे इस बात से भयभीत होते हैं कि कोई उन्हें लूट न ले अथवा उन्हें गलत रास्ता न बतावे। यद्यपि सामान्य गुरु द्वारा किसी व्यक्ति के लूट लिये जाने की सम्भावना है फिर भी हमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हम एक ऐसे संसार में निवास करते है जिसका संचालन नियम से होता है और हम प्राय;

वही पाते हैं जिसके हम योग्य होते हैं। यदि कोई साधक पूर्णरूप से निष्कपट हो और भगवान् को पाने की तीव्र इच्छा रखता हो तो इसकी बहुत कम सम्भावना है कि वह किसी धोखेबाज मनुष्य के हाथ में पड़ जाय। घटनाएं अचानक नहीं होतीं परन्तु वे कर्म के नियम के अनुसार होती है जो सब का नियंत्रण करता है। यदि साधक में सच्ची लगन हो और अपने गुरु से अपार श्रद्धा रखता हो तो वह अपने गुरु से अपनी सभी आवश्यक चीजें प्राप्त करने में सम्पूर्ण होगा, भले ही लोगों के दृष्टिकोण से गुरु उसकी सहायता पहुंचाने में असमर्थ हो। क्योंकि सभी सहायताएं वस्तुतः भगवान् से प्राप्त होती है और भगवान् ही उसकी आवश्कतानुसार उसकी सहायता करेगा, भले ही उसका साधन (जरिया) आदर्श न हो। इसके सिवा, ज्यों-ज्यों हमारा मन अधिकाधिक पवित्र होता जाता है त्यों-त्यों हमारे विवेक की शक्ति बढ़ती जाती है और विवेकपूर्ण मन से हमारे लिये किसी अयोग्य व्यक्ति को गुरु चुनना सम्भव नहीं। प्रायः केवल विवेकहीन लोगों को ही अविवेकी गुरु मिलते हैं। साधकों के सामने जो दूसरी कठिनाई उपस्थित होती है वह है गुरु और इष्टदेव में भक्ति का बँटवारा। साधक को भगवान् में भक्ति रखनी चाहिए या गुरु में, या दोनों में? इस विषय में शिष्य को एकमात्र गुरु के उपदेशों के अनुसार ही चलना चाहिये और ठीक वही कार्य करना चाहिये जो उसके गुरु कहें। चेला के स्वभाव और उसमें विद्यमान् शक्तियों को गुरु, चेला की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानता है और यद्यपि गुरु के उपदेश कड़ुवे लगें या

उचित न जान पड़े तथापि अन्त में यही सिद्ध होगा कि वे उन परिस्थितियों में सर्वोत्तम थे। इसके अतिरिक्त **इष्टदेवता** और गुरु में अलग-अलग भक्ति रखने की कठिनाई उन दोनों के स्वभाव और आपस में उनके सम्बन्ध की जानकारी न रखने पर आधारित हैं। वस्तुतः उन दोनों में कोई भिन्नता नहीं। **सद्गुरु इष्टदेवता** का स्वरूप ही है और इसी प्रकार उसे मानना भी चाहिये। तब भक्ति की भिन्नता का प्रश्न ही नहीं उठेगा। हम पत्थर की मुर्तियों में भगवान् की पूजा करते हैं। फिर हम गुरु की जीती-जागती प्रतिमा में उसकी पूजा क्यों नहीं कर सकते ? भगवान् हमारा सम्पूर्ण हृदय चाहते हैं। **भावप्रियो माधवः**। तुम किसी भी प्रकार से उसकी पूजा कर सकते हो परन्तु तुम्हें अपने सम्पूर्ण हृदय से उसकी पूजा करनी चाहिये।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के संस्मरण

लेखक—स्वामी पुरुषोत्तमानन्द

जब मैं लगभग १४ साल का विद्यार्थी था तब मैंने अपने स्कूल के हेड मास्टर श्रीरामकृष्ण को नाम सुना। उसी क्षण से मैं श्रीरामकृष्ण जी के प्रति आकर्षण और भक्ति का अनुभव करने लगा। मैं प्रबुद्ध भारत में लेख इत्यादि देने लगा। लगभग सन् १९१० में मैं श्री तुलसी महाराज जी से मिला जिन्हें हरिपाड में आमंत्रित किया गया था। उन्होंने मुझे अपनी शरण में ले लिया और 'भक्त नीलकण्ठ' नाम दिया। उन्होंने मुझे कार्य करने के लिये और कुछ लड़कों को प्रशिक्षण देने के लिये कहा जिनमें से कुछ अभी यहां वहां कुछ आश्रमों के प्रधान हैं। तिरुवल्ल में हमारी एक सभा थी। श्री एम० आर० नारायण पिल्ले, जो उस समय तिरुवल्ल में मुन्सिफ थे, श्रीरामकृष्ण के बड़े भक्त थे और श्री तुलसी महाराज जी के निर्देशन में हमने एक आश्रम बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जिसकी नींव सन् १९११ में स्वामी निर्मलानन्द महाराज जी के द्वारा डाली गई जो तिरुवल्ल में आमंत्रित किये गये थे। सन् १९१३ में उनके द्वारा उस आश्रम का उद्घाटन किया गया। उसी साल हरिपाड के आश्रम का भी उद्घाटन किया गया। मुझे तिरुवल्ल के आश्रम का कार्यभार सौंपा गया और डा०

चेलप्पा को, जो आजकल स्वामी चित्सुखानन्द जी हैं; हरिपाड के आश्रम का कार्यभार सौंपा गया।

सन् १९१६ में श्री तुलसी महाराज जी ने हमको लिखा कि वे श्री अध्यक्ष महाराज जी को कन्या कुमारी अन्तरीप ले जाना चाहते हैं, मुझसे कहा गया कि मैं उनका सम्मान करने और उनकी सेवा करने के लिये सीधे अलवई चला आऊं। अतः मैं अलवई पहुंचा और एक दिन सायंकाल में श्री अध्यक्ष महाराज जी और उनकी पार्टी अलवई स्टेशन पर उतरी। पद्मनाभन टम्पी और दूसरे लोगों ने श्री महाराज जी के लिये दो-तीन दिन तक ठहरने के लिये एक बंगले का प्रबन्ध किया था।

मैं कई वर्षों से श्री तुलसी महाराज जी की सेवा कर रहा था परन्तु उन्होंने मन्त्र या ध्यान के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा था, परन्तु अब अचानक ही उनके मुंह से निकला "भक्त ! तुम्हारे भगवान् आ गये हैं। तुम उनकी सेवा करो और दीक्षा ले लो।"

मैं विभिन्न कार्यों में व्यस्त था, क्योंकि हम श्री महाराज जी को आराम पहुंचाना चाहते थे। जब कभी मुझे समय मिलता था तब मैं उनके पास चला जाया करता था और उनके चरणों के पास बैठा रहता था। जब मैं उनकी ओर देखता था तो मैं उन पर से अपनी आंखें नहीं उठा सकता था। उस समय मैं नहीं समझ सका कि वह

कौन-सी वस्तु थी जो न केवल मेरे नेत्रों को अपितु सम्पूर्ण शरीर को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। वे अध्यात्मिकता के झरने थे, सदैव **समाधि** में स्थित रहते थे। उनके शब्द अल्प और सरल होते थे परन्तु वे शक्ति से परिपूर्ण होते थे। वे मुझसे पूछा करते थे 'तुम क्या चाहते हो, तुम क्या चाहते हो ?' जब मैंने उनकी ओर उत्सुकता से देखा तो मैं अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर सका। मैंने केवल उनसे प्रार्थना की कि वे जो चप्पल पहने थे उन्हें मुझे दे दें। उन्होंने मुझसे कहा, 'मैं इन चमड़े के चप्पलों को तुम्हें नहीं दूंगा। मैं तुम्हें कलकत्ता से खड़ाऊं भेज दूंगा, जिनका मैं उपयोग किया करता था। वर्तमान अध्यक्ष स्वामी शंकरानन्द जी उस समय श्री महाराज जी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। श्री महाराज जी ने उनसे कहा कि वे मेरे पास खड़ाऊं भेजना न भूलें और वे (खड़ाऊं) मेरे पास उचित रीति से भेज दिये गये। मैं जहां जाता था वहां उनको ले जाता था और इस समय वे तिरुवल्ल के आश्रम में हैं। मैंने जान-बूझकर उनको वहां रखा ताकि उस स्थान की प्रगति और उन्नति हो।

अलवाई में कई लोग महाराज के पास अपनी श्रद्धा अर्पित करने आए। वे वातचीत से दूर रहने का प्रयत्न करते थे। वे उनको श्री तुलसी महाराज जी के पास भेज देते थे। उन्हें यह स्थान प्रिय था विशेषतः नदी का दृश्य उन्हें बड़ा प्रिय था, भले ही वर्षा हो रही हो।

अलवाई से हम कोट्टयम् की ओर रवाना हुए। श्री महाराज जी के साथ श्री पद्मनाभन टम्पी, सुपरिन्टेण्डेन्ट आफ पोलिस और श्री एम० आर० पिल्ले, मुन्सिफ और दूसरे लोग थे। हम स्टीम बोट से कोट्टयम् की ओर बढ़े। मौसम तूफानी होने के कारण बोट ऊपर-नीचे होने लगा। हमने बेचैनी की रात बिताई, परन्तु हम दूसरे दिन प्रातःकाल सकुशल कोट्टयम पहुंच गये। महाराज मुझसे कहते रहते थे "मत डरो। मत डरो।"

श्री टम्पी जी ने श्री महाराज जी और उनके दल के सब लोगों को ठहराने के लिए स्थान का प्रबन्ध किया था। वहाँ भी कई स्थानों से कई लोग आकर उनके पास भीड़ लगा देते थे। दो दिनों तक ठहरने के बाद श्री महाराज जी अपने प्राइवेट सेक्रेटरी और श्री टम्पी जी के साथ हरिपाड आश्रम के लिए मोटर से रवाना हुए। मार्ग में अनेकों स्थानों पर प्राचीन हिन्दू प्रणाली के अनुसार दीपों और आरती से उनका स्वागत किया गया।

कोट्टयम् से मैं स्वामी दुर्गानन्द जी, भूमानन्द जी, यतीश्वरानन्द जी, ब्रह्मचारी गोपाल और दूसरे लोगों के साथ स्टीम बोट से हरिपाड को चल पड़ा। हम बहुत रात बीते आश्रम पहुंचे। श्री महाराज जी विश्राम कर रहे थे। मैं गया और उनके सामने दण्डवत् करके धीरे-धीरे चला आया। श्री तुलसी महाराज जी के आदेशानुसार मैनेजर सुब्बाराम अय्यर जी ने सारा प्रबन्ध कर दिया था और आश्रम में श्री महाराज जी का समय शान्तिपूर्ण ढंग से बीतता था। उन्हें यह स्थान बड़ा प्रिय था।

दूसरे दिन, आने पर श्री तुलसी महाराज जी ने मुझसे कहा, "हाँ! भक्तन्! कल महाराज जी कृपापूर्वक तुम्हें दीक्षा देंगे, अतः तैयार हो जाओ। रात में और प्रातःकाल की दीक्षा के पहले कुछ मत खाओ-पिओ।" दूसरे दिन प्रातः-काल मैं तैयार हो गया। दीक्षा का कार्य मठ के भीतर रखा गया था। श्री महाराज जी ने पहले ही आसन ग्रहण कर लिया था। श्री शंकरानन्द जी महाराज द्वार पर विराजमान थे। वह दृश्य अभी तक मेरे मन में अंकित है। श्री तुलसी महाराज जी ने मेरे पास खबर भेजी और श्री शंकरानन्द जी मुझे भीतर ले गये। मैं क्या देखता हूं कि स्वयं श्री दक्षिणामूर्ति जी अपनी तेजपूर्ण महानता के साथ मौन धारण किये हुए सबको आशीर्वाद देने के लिये विद्यमान हैं। मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा। आचमन आदि प्रारम्भिक कृत्यों के पश्चात् उन्होंने मेरे हृदय में पवित्र मन्त्र की स्थापना की।

मैं अत्यधिक आनन्दित हो उठा और मैंने अनुभव किया कि मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं।" फिर मैंने अपनी तुच्छ भेंट उनके चरणों में अर्पित की और चुपचाप बाहर आ गया; फिर मैं अपने आपको भूलकर श्री महाराज जी के कमरों में घण्टों बैठा रहा। उसी दिन सुब्बाराम अय्यर आदि कई लोगों को दीक्षा दी गई।

श्री महाराज जी आश्रम में बड़े आनन्द से थे। ब्रह्मचारी चेलप्पा चाहते थे कि श्री महाराज जी को आश्रम में अधिक समय तक रोकें पर वे रुक नहीं सकते थे। तीन या चार दिनों के बाद श्री महाराज जी व उनकी पार्टी को डा० टम्पी की प्रार्थना पर, क्विलोन के लिए हरिपाड छोड़ना पड़ा। डा० टम्पी उस समय क्विलोन में डाक्टर के रूप में प्रैक्टिस कर रहे थे और उन्होंने कई वर्ष पहले श्री महाराज जी से दीक्षा ली थी।

हम पुनः स्टीम बोट से रवाना हुए। श्री महाराज जी हम सबको सुखी और आनन्दित बना रहे थे। श्री महाराज जी के रहने के लिए एक विशाल भवन में व्यवस्था की गई थी। वहां अनेकों लोग इकट्ठे हो जाते थे परन्तु श्री महाराज जी भीड़ से दूर रहना चाहते थे। डा० टम्पी श्री महाराज जी पर पूर्ण भक्ति रखते थे। एक दिन प्रातःकाल श्री महाराज जी बिना पूर्व सूचना दिये ही डाक्टर के घर जा पहुंचे। डाक्टर और उसके परिवार के लोग बड़े आश्चर्य में पड़

गये और उनको यह नहीं सूझ पड़ा कि उस समय वे क्या करें ? परन्तु उनका भवन पवित्र हो गया।

क्विलोन से हम त्रिवेन्द्रम् के लिए रवाना हुए। त्रिवेन्द्रम् में श्री महाराज जी के ठहरने की व्यवस्था देखने के लिए कुछ भक्तों का समुदाय पहले ही रवाना हो गया था। वहां एक 'वेदान्त सोसाइटी' थी जिसमें जर्मनी से लौटे हुए पद्मनाभन् पिल्ले नामक एक महाशय बड़ी दिलचस्पी लेते थे। श्री महाराज जी ने प्राइवेट सेक्रेटरी और श्री तुलसी महाराज जी के साथ क्विलोन पहले ही छोड़ दिया और उनके बाद हम लोग रवाना हुए। त्रिवेन्द्रम् में भव्य स्वागत हुआ जिसमें मैं उपस्थित नहीं हो सका। भवन दीपमालाओं से सुसज्जित किया गया था।

'वेदान्त सोसाइटी' ने रामकृष्ण आश्रम खोलने के लिए वट्टियुर कव्वू में ऊँचाई पर जमीन का एक टुकड़ा प्राप्त कर लिया था। किसी शुभ दिन श्री महाराज जी उसका शिलान्यास करने वाले थे। वह स्थान नगर से चार-पाँच मील दूर था और बड़ा ही शान्त था। उन दिनों सड़कों पर बहुत कम मोटरें व दूसरे वाहन मिलते थे। उस शुभ कार्यक्रम में अनेकों लोग भाग लेना चाहते थे। श्री तुलसी महाराज जी एक रात पहले ही उस स्थान पर पहुँच गए और उन्होंने कुछ पूजा और होम करवाया। श्री महाराज जी बड़े तड़के ही मोटर से उस स्थान पर पहुँच गये। हम लोगों ने उनका अनुसरण किया, कुछ पैदल गये और कुछ टांगा आदि पर गये। वहां

बड़ी भीड़ थी। बड़ा ही मनोहर दृश्य उपस्थित हुआ जब श्री महाराज जी ने स्वयं अपने हाथों से शिलान्यास किया। प्रसाद बाँटा गया। एक फोटोग्राफ लिया गया। कुछ आश्रमों में यह फोटोग्राफ देखा जा सकता है। श्री महाराज जी बड़े प्रसन्न हुए। साधन-भजन के लिए यह स्थान अत्यन्त उपयुक्त था।

सब लोग एक-एक करके जा रहे थे। मैं श्री महाराज जी के निकट ही था। वे बड़े प्रसन्न होकर मुझसे कह रहे थे, "भक्त, तुम देख रहे हो कि यह कितना सुन्दर स्थान है। तुमको कुछ ब्रह्मचारी बनाना ही चाहिए। जब भवन-निर्माण का कार्य पूर्ण हो जाय तब उन्हें यहाँ रहने दो और तपस्या करने दो–तपस्या के लिये यह बड़ा ही सुन्दर स्थान है। श्री तुलसी महाराज जी ने कठोर परिश्रम किया जिसके फलस्वरूप वहाँ एक सुन्दर आश्रम का जन्म हुआ।

दक्षिण में आने का श्री महाराज जी का एकमात्र उद्देश्य था कन्या कुमारी में माता जी (देवी जी) का दर्शन करना। अतः वे इस स्थान में आने के लिए शीघ्रता कर रहे थे। उनको शीघ्र ही तिरुवल्ल छोड़ना था। वे कार से कन्याकुमारी पहुंचे। हम सबने उनका अनुसरण किया। श्री महाराज जी और उनकी पार्टी के कुछ चुने हुए लोगों को एक दुमंजिले भवन में ठहराया गया और हम सब लोग सरकारी धर्मशाला में ठहरे। मैं सोचता हूं कि किसी संध्या

कीर्तन करते हुए जाया करते थे। उन्होंने शान्त एवं नीरव मंदिर में प्रवेश किया और धीरे-धीरे वे देवी की मूर्ति के अधिकाधिक निकट आते गये। सारा भीतरी भाग प्रकाशित किया गया था। संगीत और आरती का कार्यक्रम चल रहा था, हम लोग श्री महाराज जी को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए देख रहे थे। वे पूर्णतया शान्त थे, उनका मुख प्रकाश और आनन्द से चमक रहा था। एक साधारण व्यक्ति भी देवी के सामने आनन्द और सुख का अनुभव करता है। बड़ा ही मनोहर रूप है, अत्यधिक सुन्दर। वे वहा बहुत समय तक रहना चाहते थे। परन्तु पूजा-पद्धति ऐसी है कि किसी व्यक्ति को उस दिव्य वातावरण में अधिक समय तक रहने की इजाजत नहीं है।

श्री महाराज जी अपने निवास स्थान को जाने की तैयारी कर रहे हैं। कई कुमारी कन्यायें उनके पास जाती हुई दिखाई दे रही हैं। उनका बर्ताव उन बच्चियों के प्रति अत्यन्त वात्सल्यपूर्ण एवं दयापूर्ण था। श्री तुलसी महाराज जी रुपयों से भरी थैली लिए उनके पास ही स्थित हैं। वे श्री महाराज जी का स्वभाव जानते हैं। वे श्री महाराज जी को रुपयों पर रुपये दे रहे हैं और श्री महाराज जी उनको उन बच्चियों को बांट रहे हैं।

श्री महाराज जी वहां अवश्य ही एक-दो हफ्ते ठहरे होंगे। वे जब-जब मन्दिर जाते थे तब-तब वे सबको पैसा बांटते थे। छोटी बच्चियों के संग में उनको बड़ा आनन्द

कन्याकुमारी में सब लोग बड़े प्रसन्न थे विशेषतः श्री महाराज जी । परन्तु कुछ लोग वहां के भोजन से संतुष्ट नहीं थे । उस समय वहा अच्छा भोजन प्राप्त करना बड़ा ही कठिन था । कीमत भी बहुत चढ़ी-चढ़ी थी ।

श्री महाराज जी और उनकी पार्टी कन्याकुमारी अन्तरीप छोड़ने वाली थी । नागर कोइल के इंजीनियर श्राथानू पिल्ले जी ने श्री महाराज जी से प्रार्थना की कि वे नागर कोइल में अपनी यात्रा भंगकर वहां कुछ रात बितावें । अतः हम सब लोग वहां रुक गये । उन्होंने भव्य भोज दिया । श्री पिल्ले जी तथा अन्य व्यक्तियों के साथ कुछ बातचीत करके श्री महाराज जी ने विश्राम किया । दूसरे दिन प्रातः काल उन्होंने नागरकोइल छोड़ दिया और क्विलोन पहुंचे । वे इस बंगले में ठहरे जो पहले उनके ठहरने के लिए लिया गया था । वहां प्रतिदिन नियमित रूप से उत्सव हुआ करते थे । श्री महाराज जी की हर प्रकार से सेवा करने के लिए डाक्टर बड़े उत्सुक थे । निश्चित समय पर जनसभा होती थी जिसमें श्री तुलसी महाराज जी लोगों से चर्चा करते थे । श्री शंकर महाराज जी भी कुछ लोगों का स्वागत करते थे और उन्हें आदेश एवं उपदेश देते थे । श्री महाराज जी को इन सब में बड़ा आनन्द आ रहा था । यहां भी कुछ अधिक भाग्यशाली लोगों को श्री महाराज जी से दीक्षा मिली, जिनमें से दो व्यक्ति हैं श्री आगमानंद जी और श्री चन्द्रशेखर पिल्ले जी ।

फिर श्री सुब्बाराम अय्यर जी और श्री चेलप्पा जी फिर से श्री महाराज जी को हरिपाड़ ले जाने के लिए हरिपाड से आये। यद्यपि श्री महाराज जी को वह आश्रम प्रिय था, परन्तु उन्हें शीघ्रातिशीघ्र मुख्य निवास स्थान तक पहुंचना था, अतः वे शीघ्रता करने लगे। मैं भी श्री महाराज जी के साथ कलकत्ता जाना चाहता था। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे मुझे कलकत्ता ले चलें। उन्होंने मुझे अपने साथ चलने की अनुमति दे दी। परन्तु श्री तुलसी महाराज जी बड़े कठोर थे। वे अपने स्वाभाविक ढंग से मुझे सुनाने लगे, 'तुम दूर जाना चाहते हो। यहां आश्रम की देख-रेख कौन करेगा?' इससे मेरी आंखों में आंसू आ गये। मुझे वापिस रुकना पड़ा। श्री महाराज जी और उनकी पार्टी ने एक स्पेशल स्टीम बोट से क्विलोन छोड़ दिया। हम में से कुछ लोग हरिपाड के निकट स्थित एक स्थान तक उनके साथ गये और वहां मुझे पीछे रुकना पड़ा।

: प्रकाशक :

योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री सिद्ध गुफा

मु० पो० सवांई, आगरा ।

मूल्य : एक रुपया पच्चीस पैसे

: मुद्रक :

कल्याण प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

विषय सूची

भूमिका

योगीराज श्री मुलखराज जी महाराज परम् कारुणिक महापुरुष थे। उनका जीवन अतीव उज्जवल व परम् तेजोमय रहा। ६ जुलाई सन् १९१६ से उन्होंने योगमार्ग में पदार्पण किया। योग-योगेश्वर प्रभु सद्गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज के चरणारविन्दों को प्राप्त करके उन्होंने अपने जीवन को धन्य बना लिया। अभी कुछ दिनों पहले मैंने एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी जिसका सम्बन्ध भाई ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी से हैं, जिसमें भाई श्री गोपालानन्द जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र व उनके ध्यानानुभव लिखे गये हैं। इस पुस्तक के लिखने के बाद मेरे मन में बार बार यह संकल्प बनता रहा कि मैं श्री मुलखराज जी महाराज की जीवन कथाओं को भी लिखने का प्रयत्न करूँ। किन्तु श्री मुलखराज जी महाराज के जीवन चरित्रों को प्रचार की व्यस्तता के कारण मैं जल्दी में क्रम बद्ध नहीं कर पाया इसीलिये लम्बा समय निकलता चला गया। श्री मुलखराज जी महाराज का जीवन सद्गुरुदेव योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की चरण शरण में आने के बाद एकदम अलौकिक बन गया। उस अनुकम्पा से वह बहुत थोड़े समय में ही सम्प्रज्ञात योग की पराकाष्ठा पर पहुँच गये। कई वर्ष तक लगातार तुरीय स्थिति में रहे। उनकी आँखें खुलाने से भी खुलती नहीं थीं। आँखें बन्द रहते हुए सहज स्थिति में ही अपने आप को उस नित्य परम् चेतन में विलीन रहते थे। उनका मन अपने पराये के ज्ञान से अतीत हो गया था। जिस समय उनकी आँखें समाधि से

खुलती थीं उस समय वह प्राणीमात्र को अपना आत्मा देखते थे। इस स्थिति में जो भी व्यक्ति उनके सामने आया उसी ने परम् अनुग्रह को प्राप्त किया और अपने आप को कृतार्थ किया। हमारे आचार्यों ने तुरीय-स्थिति का वर्णन बड़े ऊँचे शब्दों में लिखा है यहाँ तक कि जिस वातावरण में ऐसे महापुरुष रहते हैं उस वातावरण से भी सर्व-साधारण प्राणी कल्याण को पा लेते हैं। हमारे आचार्यों ने इन भावों की पुष्टि मुक्त कंठ से की है "यस्मिन् देशे वसेद्योगी ध्यान योग विचक्षणा, सोपि देशो भवेत् पूतः किम् पुनस्तस्य बान्धवा।" अर्थात् जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है वह देश भी पवित्र हो जाता है और उसके सम्पर्क में रहने वालों की तो बात ही क्या है। श्री मुलखराज जी महाराज के जीवन में यह उक्ति बिल्कुल चरितार्थ में मिलती है। उन्होंने अपनी तुरीय स्थिति में जिसको एक बार भी आंख उठा कर देखा वही कृतार्थ हो गया। जैसी जिसने मनोकामना की वैसी ही सफल होकर के चट उसके सामने आ गई। श्री मुलखराज जी महाराज की जीवन कथाओं के विषय में मैं विशेष रूप से तो नहीं जानता था किन्तु उनके सम्पर्क से जो भी कथाएँ मुझे उपलब्ध हुई हैं वह सभी कथाएँ मानव समाज के लिये परम् हितकर हैं। जो इन कथाओं को मन लगाकर पढ़ेंगे उनकी योग प्रवृत्ति तो बन जाना स्वाभाविक ही है इसके अतिरिक्त उनके जीवन में घटित होने वाले योग सिद्धान्तों को समझ करके जो भी उस मार्ग पर अपने आप को चलाने का प्रयत्न करेंगे वह अवश्य ही श्री प्रभुजी की परम् अनुकम्पा को प्राप्त कर अपने आप को योगयुक्त बना लेंगे।

को परम् श्रेय किस उपाय से प्राप्त होता है। भगवत् दर्शन कैसे उपलब्ध होते हैं। श्री मुलखराजजी महाराज के मकान के पास में ही थोड़ी दूर पर ही किसी मन्दिर में नैतिक साधु-सत्संग होता था। अपनी माता जी के साथ श्री मुलखराज जी वहाँ नित्य नियम से जाया करते थे। कदाचित् अपने विद्यालय से आने में इनको कोई विलम्ब हो जाया करता था तो भी एक बार सत्संग के स्थान पर पहुँच अवश्य जाया करते थे। जिस मन्दिर में यह सत्संग के लिए जाते थे। उस मन्दिर का नाम हर मन्दिर साहब था। इनका यह नियम था कि यह सत्संग में सबसे पहले आ जाते और बाद में अधिक देर तक बैठा करते। जो महात्मा सत्संग करते थे। उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है कि यह छोटा बच्चा इतने लम्बे समय तक चुपचाप सत्संग में बैठा रहता है उसमें बाल सुलभ चांचल्यता भी नहीं है।

इनके ऐसे सरल स्वभाव को देखकर हर व्यक्ति का मन इनकी ओर आकर्षित हो जाता था। एक रोज अवसर पाकर सत्संग कराने वाले महात्मा ने इनके मानस भाव पूछे व इनके बतलाने पर हृदय के अन्दर छिपे हुए तीव्र वैराग्य भाव समझकर उस महात्मा का हृदय स्वतः ही बहुत आल्हादित हुआ व बड़े प्यार के साथ इनसे कहा "बेटा समय आने पर तुम्हें महापुरुष मिलेंगे। उनकी पूर्ण कृपा से तुम अपने परम् लक्ष्य को पाओगे।" श्री मुलखराजजी का बाल जीवन इसी प्रकार से शनैः शनैः निकलने लगा।

विद्याध्ययन भी अब अधिक समय तक नहीं चल सका क्योंकि कुछ तो विद्या अभ्यास में इनकी अपनी रुचि तो नहीं थी दूसरे इनके माता पिता भी आर्थिक उलझनों के कारण अधिक समय तक पढ़ा नही सके। विद्याध्ययन को छोड़ देना पड़ा और अपने

माता पिता के साथ व्यवसाय कार्य में सहयोग देने के लिये यद्यपि अपनी माता पिता के कहे अनुसार अपने व्यापार कार्यों में बाकायदा लगे रहते थे, किन्तु यह सब कार्य करते रहते हुये भी यथा तथा अवसर निकाल करके साधु सत्संग के लिये अवश्य जाया करते थे। एक दिन के सत्संग में श्री हर मंदिर साहब में एक साधु को अपनी शिष्या सहित गद्गद् कंठ से अपने प्रभु के गुणानुवाद करते हुए देखा।

वह एक कबीर पंथी महात्मा थे। उनकी विह्वलता और मधुर सकीर्तन के प्रभाव से इनके मन में उनके प्रति ऊँची श्रद्धा बन गई किन्तु परिणामतः निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला। वह महात्मा स्वयं जिज्ञासु थे व उनको भी आत्मोत्कर्ष करा करके परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाले महापुरुषों की खोज थी। उनके सत्संग से भी इनको आत्म पिपासा में कोई शांति नहीं मिली, प्रत्युत महापुरुष मिलन की दृढ़ लगन दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली गई।

इनके हृदय में उन्हींके चरणों का प्रकाश है। समय आनेपर वह कृपामय इनको पूर्ण रूपेण अवश्य अपना लेंगे और यह अपने मनुष्य जीवन के पूर्ण फल को पाजायेंगे। इसी प्रकार से कई एक साधु संतों के दर्शन हुए, किन्तु कहीं भी मन को संतोष नहीं मिला। किन्तु वैराग्य के उच्चतम भाव मन में अधिकाधिक बढ़ते ही चले गये। इनके मनोगत वैराग्य भाव अब इनके माता पिता व अन्य कुटुम्बियों से भी छुपे न रह सके। उन सब ने मिलकर विचार किया कि इस बालक की जल्दी से जल्दी शादी करदी जाय ताकि यह गृह बन्धनों में पूरी तरह जकड़ जाय अन्यथा यह बालक कहीं साधु संतों के साथ निकल गया तो दुबारा हाथ नहीं लग पायेगा।

पाणिग्रहण संस्कार

श्री मुलखराज जी के माता पिता इस लगन में तो थे ही कि जल्दी से जल्दी इनकी शादी कर दी जाय अन्ततः माता पिता ने प्रयत्न करके इनका विवाह संबन्ध करा दिया। श्री मुलखराज जी का विवाह सम्बन्ध जि० अमृतसर में जगदेव ग्राम निवासी ला० झंडाराम जी की सुपुत्री आयुष्यमती मोहन कौर से संवत् १९०५ में लगभग २० वर्ष की आयु में हो गया और श्री मुलखराज जो का गृहस्थ जीवन सब प्रकार से सुखमय चलने लग गया। एक बार अकस्मात एक घटना घटित हुई और वह यह थी—श्री मुलखराज जी के श्वसुर ला० झंडाराम जी कारणवश बहुत बीमार हो गये। उनको अमृतसर के बड़े अस्पताल में दाखिल करा दिया गया। श्री मुलखराज जी नित्य प्रति उनको घर से भोजन बनवा करके अस्पताल में भोजन कराने के लिये जाया करते थे।

शक्ति को देख करके उनके प्रति इनके मन में बहुत प्रेम होगया जिसके परिणाम स्वरूप यह कभी कभी उस फकीर को मिलते रहे। वह फकीर भी इनके भावी जीवन की उत्कृष्टता को समझ कर कभी-कभी इनसे मिलने के लिये आया करते थे और अपने मन से इनका पूर्ण सम्मान करते थे। प्रारब्धानुसार गृहस्थ-जीवन में इनकी धर्मपत्नी ने दो कन्याओं को जन्म दिया क्रमशः गृहस्थ जीवन रहते भी इनके मन के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वैराग्य धारायें बराबर चलती ही रहीं।

उनको नैपाल हिमालय से आये हुए कई वर्ष व्यतीत हो चुके थे। अमृतसर में साधारण गृहस्थियों की तरह निवास कर रहे थे। उनके दिव्य स्वरूप को कोई भी समझ नहीं सकता था। श्री प्रभुजी प्राय अपने स्थान पर ही रहते थे। किसी प्रकार के जलसे तमासे व सभाओं में नहीं जाते थे। किन्तु उस दिन उन शांत सागर के मन भी एक तरंग आई उसके साथ कांग्रेस का जलूस देखने के लिए बाजार में निकल पड़े। कांग्रेस का जलूस चौक मल्लासिंह की तरफ से जा रहा था। श्री प्रभुजी सब प्रकार से परिपूर्ण योग-योगेश्वर एक दुकान पर खड़े हुए जलूस को शोभा को देख रहे थे।

इसी समय जोशीले गीत गाते हुये श्री मुलखराज जी सामने से निकले श्री मुलखराज जी की उम्र उस समय लगभग २४ या २५ वर्ष की होगी। श्री प्रभुजी की दृष्टि उनके शरीर पर पड़ी पूर्व संस्कारों का प्रत्यक्षीकरण हुआ। श्री प्रभुजी का हृदय द्रवित हो उठा और गद्गद् कंठ होकर पूछ उठे, "बेटा आज-कल तुम कहाँ हो, तुम्हारा जन्म किस जगह हुआ है, तुम्हारा नाम क्या है।" किन्तु श्री प्रभुजी की यह सभी बातें श्री मुलख-राज जी के मन को अच्छी नहीं लगीं। श्री प्रभुजी उस समय साधारण सूती मिल के कपड़े पहने हुए थे।

श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी को उत्तर दिया, 'यह देश-द्रोहियों के मिल के कपड़े पहले उतारो व फूँक कर आओ व शुद्ध खद्दर के वस्त्र पहन कर आओ तब में तुमसे बात करूँगा। श्री मुलखराज जी के मुख से निकले हुये ऐसे कड़े शब्द सुनकर अपने पन के नाते मन में तो प्रसन्न ही रहे किन्तु बाहरी लौकिक मर्यादा से चुप ही रह गये व लौट कर अपने स्थान पर चले आये। वहाँ पर बहुत से सत्संगी बैठे हुए थे ध्यान योग की

चर्चाएँ चल रहीं थी किन्तु श्री प्रभुजी के मन का दृश्य कुछ और ही प्रकार का था। मनोमुद्रा से प्रसन्न दिखलाई दे रहे थे, किन्तु साथ ही कुछ गम्भीर दिखलाई देते थे। कभी-कभी मुख पर साधारण हँसी आ जाती थी और उसको रोक जाते थे। इस सब दृश्य को सभी सत्संगी देख रहे थे और मन ही मन यह सोच रहे थे कि आज यह क्या विलक्षण कृपा है।

इसी बीच में (पंडित रामरत्न एक पुराने सत्संगी थे) प्रभुजी आज यह क्या विचित्र दृश्य है आज आप बार-बार किसको स्मरण करके हँस रहे हैं। श्री प्रभुजी कुछ थोड़े हँस कर बोले "बेटा आज हमें एक तुम्हारा भाई मिला है। वह जन्मों से बिछड़ा हुआ है किन्तु हमारा ही बालक है। हमने उसको देख लिया है इसलिए कुछ ममत्व के संस्कार मन में बन आये हैं वैसे उसके मिलने का संस्कार काल अभी आठ वर्ष बाद का है, किन्तु जब हमने उसको देख लिया है तब उसके यह आठ वर्ष आठ दिन में निबट जायेंगे और आज के आठवें दिन हमारा बच्चा हमारे पास अवश्य-अवश्य आ जायेगा। रामरत्न ने प्रार्थना की प्रभो! मुझे आज्ञा दीजिये अमृतसर में ऐसा कौन सा बच्चा है जो आपके पास न आ सके मैं उसको फौरन जल्दी ही बुला लाऊँगा। श्री प्रभुजी ने कहा नहीं वह आठ दिन के अन्दर स्वयं ही अवश्य-अवश्य आ जायेगा संस्कार उसको ले आयेगा। शनैः शनैः वह आठ दिन निकल गये सभी सत्संगियों को मन में बड़ा उल्लास था।

सब यह चाह रहे थे देखें आज आठवाँ रोज है कौन वह बालक है जिसको श्री प्रभुजी आज इतने दिन से याद कर रहे हैं। आज आठवाँ दिन है हम भी उस बड़ भागी बालक को देखें जो आते ही श्री प्रभुजी के महान् अनुग्रह को पायेगा। सभी

सत्संगी इस विचार में निमग्न थे। प्रातः काल लगभग ६ या ६।। बजे का समय होगा दर्शनार्थी स्त्री पुरुषों का यातायात प्रारम्भ हो चुका था। सभी लोग अपने-अपने मन की कामनाएँ श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में बतला रहे थे। श्री प्रभुजी लोगों की भावना अनुसार उनके भले के लिए उपयोगी साधना बतला रहे थे इतनी देर में इसी समुदाय के अन्तर्गत एक २४ या २५ साल का नवयुवक बालक सामने आया। उसके हाथ में उसकी अपनी जन्मपत्री थी उसको किसी ने बतलाया था कि यह योगीराज हैं। जन्म-पत्री को देखकर के भूत भविष्य की बातें कहते हैं. मैं भी अपनी भविष्य की बातों के प्रारब्ध को जानूँ इसी आशा को लेकर के यह नवयुवक श्री प्रभुजी के चरणों में उपस्थित हुआ था। किन्तु बड़े भारी आश्चर्य की बात यह थी जिस उमंग व उत्साह के साथ-साथ जन्म-पत्री को हाथ में लिए हुए यह बालक श्री प्रभुजी की ओर आगे बढ़

थोड़ी ही देर में इसकी जन्म-पत्री को देख करके व उसके पृष्ठों को उलट-पुलट के श्री कृपानिधि जी ने फलादेश बतलाया, "बेटा तुम्हारी जन्म-पत्री में लिखा है आज से ही तुम योगी बन जाओगे आज से तुम्हें अपने भूत-भविष्य का ज्ञान स्वत: ही होने लगेगा। तुम्हारी आँखें बन्द होंगी किन्तु बन्द आँखें होते हुए भी तीन लोक के नजारे तुम यहीं बैठे देख सकोगे। श्री प्रभुजी फलादेश कह रहे थे किन्तु उनकी कृपामयी वाणी को सुन करके आने वाले बालक के मनमें अत्यन्त आश्चर्य व कुतूहलता बढ़ती ही जा रही थी। वह यह समझता था ये क्या कह रहे हैं आज ही मैं भूत-भविष्य का ज्ञाता बन जाऊँगा, आज ही मुझे भगवान के दर्शन मिल जायेंगे यह कैसे सम्भव हो सकता है। सुनने वाले अन्य सत्संगियों के मन में भी बड़ा आश्चर्य था और सभी इस आकांक्षा में थे देखें इस बालक को अभी-अभी किस महान् कृपा का दान देने वाले हैं।

सभी की कुतूहलता को बढ़ाते हुए श्री प्रभुजी ने बालक को अपने पास बुलाया व कान में कुछ बतलाया और आज्ञा दी, "बेटा आँखें बन्द करके बैठ जाओ वह बालक श्री प्रभुजी की आज्ञा को पाकर के अपने साधन पर बैठ गया। साधन में बैठते ही जिज्ञानुभूति जारी होगई। भूत भविष्य के नजारे सामने आने लगे। उसको बाहर के बरामदे में ध्यान में बैठा करके और मकान में ताला बन्द करके श्री प्रभुजी ओकाड़ा मण्डी चले गये।

करते हैं। श्री गणपति जी ने उसी समय हाथ का इशारा करते हुए श्री प्रभुजी की ओर बतलाया यही तुम्हारे पूर्व जन्म के पिता हैं। जिस समय श्री माता जी को जानने की इच्छा हुई तो श्री माताजी का दर्शन एक देव लोक में कराया उनका वर्ण बहुत उज्वल गौर व तेजोमय था।

शरीर मान काफी लम्बा था। बहुत मृदु भाषिणी थीं। श्री माताजी ने देव लोक से ही इन्हें आर्शीवाद दिया इसके अतिरिक्त और कई प्रकार के दृश्य ध्यान में श्री मुलखराज जी महाराज ने देखे। इन्हीं आठ दिनों के अन्दर श्री गणपति जी के दर्शन हर समय खुली आँखों और बन्द आखों उन को होते रहे। आठ दिन के बाद जिस समय श्री प्रभुजी ओकाड़ा मण्डी से लौट कर आये तो श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी की ओर मुस्कराते हुये देख कर कहा "कहो बेटा तुम्हारे प्रश्नों का जवाव तुम्हें मिल गया है ?" श्री प्रभुजी के दर्शन पाते ही श्री मुलखराज जी ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की और प्रार्थना की हाँ प्रभुजी आपने अपने भटकते हुए वालक को पकड़ लिया है। श्री मुलखराज जी के अत्यन्त विनययुक्त शब्दों को सुन करके श्री प्रभुजी ने करुणा कर उनको कन्ठ से लगा लिया और हार्द दीक्षा देकर के एक दम तुरीय स्थिति प्रदान करदी जिससे उनका वर्षों तक बना रहने वाला मस्ती जैसा नशा सामान्य रूप से बना रहने लगा इसी नशे के विषय में अनुभवी लोगों ने वाणियें लिखी हैं।

गुरु नानक देव ने कहा है, "नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिनरात," यह स्थिति इनकी इस प्रकार की थी जिसमें यह बिल्कुल बाह्य ज्ञान से शून्य रहते थे। स्थिति में जिसके लिये जो जैसा शब्द निकल गया वह अमिट होगया।

तुरीय स्थिति की दिव्य घटनाएँ

श्री मुलखराज जी महाराज इस मस्ती के नशे में इस प्रकार झूमते झामते चलते थे जिसमें उनको बिल्कुल वाह्य ज्ञात नहीं रहता था, किन्तु एक बड़ा भारी आश्चर्य था और वह यह कि जिस समय वह अमृतसर के कर्मों ड्योढी व हाल बाजार आदि बड़े-बड़े बाजारों से निकलते थे उस समय भी किसी मोटर, ताँगा, रिक्शा व साधारण मनुष्यों से भी उनकी भिड़न्त नहीं होती थी। एक बार भाई श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द श्री प्रभुजी के साथ चल रहे थे उधर दाहिनी ओर श्री मुलखराजजी महाराज चल रहे थे उस समय श्री ब्रह्मचारी जी ने श्री प्रभुजी से पूछा कि प्रभुजी यह क्या बात है श्री भाई जी की आँखें बिल्कुल बन्द रहती हैं और ऐसी स्थिति में भी यह सभी मोटर तांगों रिक्शों से बचकर निकल जाते हैं और इस स्थिति में क्या आनन्द है। श्री प्रभुजी ने उनका जवाब दिया, ''बेटा इसको जो आनन्द है उसको तो यही जानता है। यह आनन्द बतलाने

स्थिति में कभी भी भिडन्त नहीं हुआ करती और नहीं ऐसी स्थिति में पहुँचे हुए योगी को कोई किसी प्रकार का नुकसान पहुँचा सकता है।

समाधि परिणाम वाले योगी की वृत्ति जहाँ-जहाँ पहुँचती हैं वहाँ-वहाँ वह तद्रूप हो जाता है और तद्रूप होने पर उसकी वह शक्तियाँ हर समय उसका साथ दिया करती हैं। समाधि का अर्थ है "समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्यन:" अर्थात् :—जीवात्मा और परमात्मा की बिल्कुल अभिन्नावस्था को समाधि कहते हैं। भगवान पातंजलि देव जी के शब्दों में समाधि का अर्थ है।

"तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्य" "मिव समाधि"

अर्थात्—योगी जिसका ध्यान करता है वही भासित होता रहे अपना स्वरूप भी शून्यवत् हो जाये अर्थात् अपना स्वरूप ज्ञान न होकर लक्ष्य का ही स्वरूप ज्ञान हो योगी यह समझे कि वह मैं ही हूँ तो समझ लेना चाहिये कि समाधि शब्द उसके लिए क्रियान्वित है। श्री मुलखराजजी महाराज इस ही स्थिति में हर समय रहते थे। वह चलते-फिरते उठते बैठते देखते थे कि वह भगवान विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप में विलीन हो रहे हैं। कदाचित् उनकी समाधि परिणाम वाली मनोवृत्ति भगवान शिव की ओर चली गई तो उन्होंने देखा :—

"शिवोऽहम् शिव: केवलोऽहम्"

अर्थात् :—मैं शिव हूँ केवल सदाशिव मैं ही हूँ। एक बार इसी तुरीय स्थिति में बन्द आँखों में अमृतसर में गुरुबाजार से होते हुए श्री मुलखराजजी कहीं घंटाघर की तरफ जा रहे थे। उस स्थिति में जाते हुए श्री बहन द्रौपदी देवी जी ने उनको देखा

उड्यान गति द्वारा पहाड़ से नीचे आना

एक बार श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी को व श्री गोपाला नन्द जी को साथ लेकर के आंकड़े के पहाड़ पर गये। साथ में और भी बहुत से गृहस्थ शरीर थे। अन्य साथ में जाने वाले सत्संगी लोगों ने जब इन दोनों की ऐसी दशा देखी कि पल-पल में मूर्छित हो जाते थे और शरीर चेतना हीन होकर जड़वत पत्थर की तरह गिर जाते थे, लोगों ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि प्रभो आप ले तो आये हैं किन्तु पहाड़ से नीचे कैसे उतारेंगे तो श्री प्रभुजी हँसे और कहा कि भाई यह तुम लोगों से पहले जायेंगे और कोई नुकसान भी होगा नहीं। लोगों ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की महाराज हम यह देखना ही चाहते हैं कि यह लोग पागलों जैसी स्थिति में रहने वाले कैसे पहाड़ से नीचे उतर जाते हैं। लोगों की इस हार्दिक भावनाओं को देख कर श्री प्रभुजी ने कहा कि अच्छा अभी हम तुम्हारे सामने नीचे उतार देते हैं। ऐसा कह कर श्री प्रभुजी ने दोनों को खड़ा कर लिया और निर्दय भाव से गर्दन पकड़ करके पहाड की चोटी से नीचे को धकेल दिया सभी लोगों ने देखा कि श्री गोपालानन्द जी दादुरी वृत्ति से नीचे जा रहे हैं और श्री मुलखराज जी उड्यान गति से नीचे जा रहे हैं। लोग सभी पहाड़ा पर ही खड़े थे सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ और लोग धन्य-धन्य कहने लगे।

श्री मुलखराज जी महाराज वर्षों तुरीय स्थिति में रहे। वह सब क्रियायें करते हुए भी देहाभास रहित रहा करते थे। लगभग ८ महीने तो बिल्कुल ही बाह्य चेतना शून्य रहे। ऐसी स्थिति में सभी प्रकार के विषैले जन्तु भी इन पर अपना कोई प्रभाव नहीं डालते थे! सर्प बिच्छू आदि अंग में लिपट जाते और फिर अपनी स्वभाविक गति से उतर कर चले जाते। श्री मुलखराज जी की यह स्थिति जब अनवरत बनी ही रहने लगी तो उनके घरवालों को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में आकर प्रार्थना की—महाराज यह ही हमारा बड़ा लड़का है और ये ही नशैयों की तरह से दिन रात पडा रहता है। हमारा कोई भी कार्य व्यवहार नहीं चलता इसलिये कृपा करके इसकी इस स्थिति में परिवर्तन कीजिये जिससे कि यह अपना भजन ध्यान करता हुआ दुनियावी व्यवसाय में भाग ले सके। यद्यपि योग-योगेश्वर श्री प्रभुजी की यह इच्छा विल्कुल नहीं थी कि वह श्री मुलखराज जी को यत्किञ्चित भी वहिर्मुखता की ओर ले जायें किन्तु उनके घरवालों के अतिशय अनुरोध करने पर श्री प्रभुजी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और आज्ञा दी कि—अच्छा कल से मुलखराज तुम्हारे घर के सब काम करेगा किन्तु आंखें उसकी बन्द ही रहेंगी। तुम्हारे किसी भी कार्य व्यवहार में हानि नहीं हो सकेगी। काम सब बराबर चलते रहेंगे। श्री प्रभुजी के आदेश को पाकर श्री मुलखराज जी के पिताजी ने प्रार्थना की कि महाराज बन्द आंखों में यह मुलखराज दुकान पर क्रय विक्रय का कार्य कैसे कर सकेगा। और इसकी आंख बन्द रहते हुए किसी प्रकार का नुकसान हो गया तो इसका जिम्मेवार कौन बनेगा। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया, "कोई चिन्ता

मत करो इससे किसी भी प्रकार का नुकसान हो गया तो उसके जिम्मेवार हम होंगे। श्री प्रभुजी के बार-बार ऐसे आज्ञा प्रदान करने पर श्री मुलखराज जी के पिता उनको अपने साथ ले गये और दुकान पर सौदा बेचने के लिये बैठा दिया। वह भी श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार क्रय विक्रय आदि सभी कार्य करने लगे।

दुकान पर अखंड समाधि व माता को दर्शन

श्री प्रभुजी की परम् अनुकम्पा से दुकान का सभी कार्य भार श्री मुलखराज जी ने सँभाल लिया। जिस दिन से श्री मुलखराज जी दुकान पर बैठे उसी दिन से दुकान की आय दसौगुनी अधिक बढ़ गई। श्री मुलखराज जी से सभी कुटुम्बी यह भली प्रकार से समझ गये यह सब कुछ श्री प्रभुजी की परम् अनुकम्पा का ही फल है। एक दिन प्रात काल के समय श्री मुलखराज जी की माता जी दुकान पर आईं। उन्होंने आकर देखा कि उनके पुत्र श्री मुलखराज जी बिल्कुल निश्चल भाव से बैठे हुये हैं और उनकी अखंड समाधि लगी हुई हैं। उनके सिर पर एक चूहा चढ़ा हुआ है और दो पैर के बल खड़ा होकर के कभी-ऊपर सामने देखने लगता है और कभी इधर उधर घूमने लगता है, किन्तु श्री मुलखराज जी को इसका यत्किंचित भी बोध नहीं हैं। अपने पुत्र की इतनी ऊँची स्थिति को देखकर के उनकी माता जी नें श्री प्रभुजी का परम् अनुग्रह माना और अपने बेटे को ही साक्षात शिव का रूप मान कर उनको बार बार नमस्कार किया।

श्री मुलखराज जी के पिता व उनके भाइयों के विचार आर्य समाजिक थे। वह लोग श्री मुलखराज जी की ऊँची समाधि स्थिति को देखते हुए भी इन पर विश्वास नहीं रखते थे। अतः ये लोग इस आशा में थे कि मुलखराज जी के व्यापार कार्यों में कोई त्रुटी निकले या किसी प्रकार की हानि दिखलाई दे तो यह लोग श्री प्रभुजी से जाकर कहें कि आज मुलखराज ने हमारा अमुक नुकसान किया, किन्तु श्री प्रभुजी की परम्

अनुकम्पा से उनके भरसक छिद्रान्वेषण करने पर भी ऐसा कोई अवसर मिल नहीं पाया जिससे कि वह श्री मुलखराज जी की शिकायत कर सकें।

किन्तु जिस व्यक्ति को जैसी लगन होती है यदा कदा उसको वैसा संयोग मिल ही जाया करता है। यहाँ पर भी एक घटना इसी प्रकार की घटित हो ही गई जिससे वह लोग अपने मन में शिकायत करने के लिये उल्लसित हो उठे। यह लोग मन में यह सोचते भी थे कि भले ही हमारा कोई नुकसान हो जाय किन्तु एक बार हम श्री मुलखराज जी के गुरुदेव योग-योगेंश्वर प्रभुजी रामलाल जी के चरण कमलों में यह कह तो दें कि इस मुलखराज ने अपनी भजन समाधि में ही हमारा दुकान का इतना नुकसान कर दिया। सो ईश्वर इच्छा से उनको ऐसा ही एक असफल संयोग मिला और वह इस प्रकार :—

कुम्हारों पर कृपा

एक रोज श्री मुलखराज जी नित्य की भाँति ध्यान मुद्रा में पड़े हुये थे। ग्राहक लोग आते थे सौदा लेते थे चले जाते थे और कीमत पूरी-पूरी अदा कर जाते थे। एक रोज कहीं से कुछ कुम्हार लोग आये और उन्होंने दुकान पर आ करके थोक भाव से कुछ बिनौले खरीदे और अपने गधों पर लादकर के चुपचाप चल दिये। कुम्हारों ने अपने मन में यह अनुमान लगा लिया था कि यह लाला नशेई है रोज सोया पड़ा रहता है, इसको कीमत चुकाने की आवश्यकता ही क्या है ? सौदा खरीद ही लिया है तुम चुपचाप यहाँ से चले चलो। कुम्हारों ने अपने मन में इस प्रकार का विचार किया और तत्काल ही उस विचार को कार्य रूप में परिणत किया और वे लोग तत्काल वहाँ से चले गये। इधर श्री मुलखराज जी उसी प्रकार ध्यानस्थ पड़े थे। कहीं से उनके पिता ला० देवीदास जी और छोटे भाई घूमते हुए आये।

उन्होंने आकर पूछा कि भाई मुलखराज कुम्हार बिनौले खरीद कर ले गये हैं उसका रुपया कहाँ है। श्री मुलखराज जी ने उत्तर दिया कि कुम्हार वह रुपया नहीं दे गये। ज्यों ही श्री मुलखराज जी के मुख से यह उत्तर निकला त्यों ही उनके पिता और छोटे भाई ने अपने मन में दृढ़ विचार कर लिया कि आज श्री मुलखराज के गुरुदेव के चरण कमलों में जाकर कहेंगे कि महाराज हमारा इतना नुकसान हो गया है, वोह इस मुलखराज ने किया है अतः आप अपने वचनानुसार इस नुकसान

पाते ही श्री प्रभुजी को अपवाद की बाते क्रिया करते और मुखसे अपशब्द बोलते और सोते समय जिधर श्री प्रभुजी निवास करते थे उस दिशा को पैर करके सोते थे जिससे श्री मुलखराज जी के मन में चिढ़ उठे और दुःख हो। और वैसा ही हुआ भी। इनके दुर्व्यवहार से श्री मुलखराज जी बहुत ही अधिक में तंग आ गये और यह सोचने लगे कि मेरे शरीर के कारण ही मेरे पिता हैं।

इसलिये तुच्छ शरीर को मुझे त्याग देना चाहिये क्योंकि यह लाला देवीदास से पैदा है। न यह शरीर रहेगा और न यह निन्दा सुननी पड़ेगी। यह सब विचार करके श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी के चरणों में जाकर प्रार्थना की कि प्रभो मेरा पिता मुझसे बड़ा अन्याय करता है। और आपके श्री चरणों का बड़ा अपवाद करता है, यह सब कुछ मुझसे सहन नहीं होता, या तो कृपा करके मेरे पिता के स्वभाव को ही बदल दीजिये अन्यथा यह शरीर अब संसार में न रहे, यही अच्छा है। श्री मुलखराज जी की प्रार्थना को सुनकर के श्री प्रभुजी मुस्कराये और कहने लगे कि बेटा यह बात तुम्हारे लिये कुछ भी कठिन नहीं है। तुम आज ध्यान में बैठकर जब भी गणपति में लय होगे तो सिद्धि को आज्ञा दे देना कि वह तुम्हारे पिता के स्वभाव को बदल दे। बस इतना करने से तुम्हारे पिता का स्वभाव बिल्कुल बदल जायेगा और वह तुम्हें फिर कोई अपशब्द नहीं कहेगा।

अभी उनके चरणों में ले चल जिससे में अपने अपराधों की क्षमा याचना करूँ और मैं भी शरण हो जाऊँ, जिससे मेरा कल्याण हो सके। श्री मुलखराज जी के पिता को दिन निकालना कठिन हो गया, वह रात्रि उनके लिये वर्षों की बन गई।

यथा तथा बड़ी कठिनता से सुबह के पांच बजे। व लाला देवीदास जी श्री मुलखराज जी को साथ लेकर श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में पहुँच गये, लम्बा पड़कर दण्डवत प्रणाम किया व बार-बार क्षमा याचना की कि प्रभो ! आप सर्व समर्थ हैं, मुझ मूर्ख से बड़ी भारी भूल हुई जो अब तक आपके अपवाद में ही पड़ा रहा, और आपके इस बच्चे को व्यर्थ में सताप देता रहा। अब कृपा करके मुझे योग दीक्षा दीजिये जिससे मेरा भी कल्याण हो जाये। श्री प्रभुजी ने उसकी विनय को स्वीकार किया और उसे भी ध्यान दीक्षा दे दी। श्री मुलखराज जी का हृदय बहुत प्रसन्न हुआ कि उनका पिता सन्मार्ग पर आ गया किन्तु श्री प्रभुजी के मन में लाला देवीदास के शरण आने से कोई खुशी नहीं थी और नहीं कोई शोक था। प्रत्युत कुछ उदासीन ही रहते थे। श्री प्रभुजी की उदासीनता को देखकर श्री मुलखराज जी ने पूछा कि प्रभो मेरे पिता के शरण आने से आप कुछ उदासीन से रहने लगे इसका क्या कारण है।

श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि बेटा कारण तो कोई नहीं है किन्तु तेरा पिता उस वस्तु का अधिकारी नहीं है जो तू ने उसे दिला दी है। वह इस शक्ति का अवश्य दुरुपयोग ही करेगा। एक दिन श्री मुलखराजजी ने ध्यान सामाधि में देखा कि उसका पिता श्री प्रभुजी के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा है कि प्रभो इस मुलखराज जी को हमारे वश में कर दो या इसका

यह शरीर जाता रहे। उसी समय श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी की ओर देखा और कहने लगे कि देख, हम पहले ही कहते थे कि यह इस वस्तु का अधिकारी नहीं है। श्री मुलखराजजी को भी अपने पिता से यह भाव जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ और अपने मन को उनसे पहले की तरह उपराम बना लिया। श्री प्रभुजी ने भी लाला देवीदास के इस प्रकार के भाव देख कर उनको विशेष उत्कर्ष नहीं दिया व साधारण स्थिति में ही छोड़ दिया।

दृढ़तर अभ्यास व कुडलनी जागरण

श्री प्रभुजी के परमानुग्रह के बाद श्री मुलखराज जी के पिता, श्री मुलखराज जी के विरोधी तो नहीं रहे किन्तु विशेष अनुकूल भी न हो पाये। सामान्य भाव से रहते रहे। इनके रास्ते में किसी प्रकार की विशेष बाधा उपस्थित नहीं करते थे श्री मुलखराज जी को बहुत अच्छा सुअवसर मिल गया उन्होंने अपने अभ्यास को दृढ़तर बढ़ाना शुरू कर दिया। परिणामतः मूलाधार के अधिष्ठाता देव श्री गणपति जी के दिव्य दर्शन उनको प्रत्येक रोम रोम में अणु परमाणुओं में बने रहने लगे। जहाँ यह दृष्टि जमाते थे वहीं पर ऋद्धि सिद्धि सहित श्री गणपति जी नजर आते थे।

श्री मुलखराज जी को श्री आनंद कंद श्री प्रभुजी की परम् अनुकम्पा से इतनी सहज स्थिति उपलब्ध होगई कि बिना प्रयास के ही इनको सहज समाधि बनी रहने लग गई। इसी ध्यान योग में इनको बार बार भस्त्रिका कुंभक बनने लग गया। भस्त्रिका प्राणायाम के फलस्वरूप उनको सहसा कुंडलिनी जागरण हो गया इन्होंने ध्यान में देखा कि मूलाधार कमल में एक बड़ा भारी सर्प अपने लपेटे खोल करके मुख खोल करके सामने खड़ा है और वह बड़ा तेजोयुक्त है।

क्योंकि अब तक इस प्रकार का अनुभव कभी नहीं हुआ था इसलिये यह अनुभव क्या है इस प्रकार का बोध प्राप्त करने के लिये यह सारी घटना श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में कह सुनाई।

श्री प्रभुजी ने यह अनुभव सुन करके इन्हें बार बार कंठ से लगाया और उत्तर दिया कि—बेटा यह तुम्हारे सुकर्म का फल है। यह महाशक्ति कुण्डलिनी सर्व शक्तियों की आधार भूता है इसी को सर्पिणी कहते हैं और इसका जागरण बड़ी कठिन तपश्चर्या और साधना के बाद हुआ करता है। प्रभु की परम अनुकम्पा से तुम्हें वह सहज में ही होगया है सो अपने अभ्यास को बराबर बढ़ाते चले जाओ। जिसमें तुम्हें अधिकाधिक लीनता प्राप्त होती चली जाये।

श्री प्रभुजी के उस आदेशानुसार श्री मुलखराज जी ने अपने अभ्यास को और भी अधिक बढ़ाना शुरू कर दिया और अपने मन को समझा करके उच्च ध्येय की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हो गये।

सहज समाधि एवं निर्भयता

श्री मुलखराज जी महाराज का अभ्यास इतना ऊँचा बढ़ता चला गया कि उनको सहज समाधि हर वक्त बनी रहने लगी और वह अकुतोभय हो गये।

जिन दिनों श्री मुलखराज जी की यह उच्चतम स्थिति चल रही थी उन्ही दिनों अमृतसर में एक जोरों का हिन्दू मुस्लिम दगा हुआ जिसमें जोरों का कत्लेआम हो गया था किन्तु श्री मुलखराज जी अपने मकान से श्री प्रभुजी के स्थान तक भीषण कत्लेआम के मौके में भी निर्द्वंद चले आया करते थे। जिस समय यह कटरा संतसिंह में पहुँचते तो कटरे वाले लोग भीतर से खिड़कियाँ और दरवाजे वन्द किये मिलते उनको यह भय रहता था कि मुसलमान लोग अन्दर घुस कर लूट मार न करें किन्तु श्री मुलखराज जी ऐसी स्थिति में भी दरवाजे के सामने खड़े हो जाते थे।

लोगों के मन में स्वाभवतः दया पैदा होती और वह जल्दी से खिड़की खोल कर इन्हें भीतर कर लिया करते थे। एक रोज कुछ लोगों ने मिलकर के श्री प्रभुजी से भी यह प्रार्थना की कि प्रभो ! कृपा कर कुछ दिन इन्हें यहाँ आने से रोक दे क्योंकि इस प्रकार से इनको यहाँ आने में इनको भी खतरा है और हम सब को भी हो सकता है। श्री प्रभुजी ने उन लोगों की प्रार्थना को मान लिया और साथ ही उनको भी समझा दिया कि भाई यह ऐसी स्थिति से निकल रहा है जिसमें कोई भय होगा नहीं।

ध्यानावस्था के विशेष अनुभव

योग दर्शन में एक सूत्र आता है :—

"भुवनज्ञानं सूर्यसंयमात् ।" सूत्र का अर्थ है :—यदि योगी सूर्य में संयम करे तो उसको भुवन का ज्ञान होता है । इस सूत्र पर व्यास जी महाराज ने भाष्य लिखा है कि योगी को चाहिये कि आत्म साक्षात्कार से पहले अतल, वितल तलातल रसातल पाताल व महाताल आदि नीचे के लोक व भूः, भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्य आदि सब ऊपर के लोकों को पूर्ण प्रत्यक्ष करले ताकि उसके मन में ऐश्वर्योपभोगों की कोई कामना बाकी न रह जाय । इसी नियम के अनुसार श्री आनन्द कंद श्री प्रभुजी अपने बालकों को स्वर्ग आदि के ऐश्वर्यों को प्रत्यक्ष ध्यान-समाधि में दिखा दिया करते थे ।

इसी के अनुसार श्री मुलखराज जी महाराज को भी प्रायः सभी लोक लोकांतरों के उत्तमोत्तम दृश्य श्री प्रभुजी ने दिखला दिये थे । एक बार ध्यानावस्था में मुलखराज जी के मन में एक प्रश्न पैदा हुआ और वह यह था कि सद्गुरु तत्व क्या चीज है । सद्गुरुदेव की जाति में ब्रह्मा विष्णु शिव सब का विलय हो जाता है । इसलिये उन्होंने ध्यान में श्री प्रभुजी से प्रार्थना की प्रभो ! मैं सद्गुरु तत्व को देखना चाहता हूँ । श्री प्रभुजी ने उनको दिखलाया—वह तत्व प्रणव है । उन्होंने श्री प्रभुजी के परम् दिव्य चेतन स्वरूप को देखा उनका सारा शरीर तेज और

उन्होंने फिर देखा तो उनका वही स्वरूप दिव्य तेजोमय विष्णु स्वरूप था। उसके बाद फिर देखा तो वही शिव रूप था। अन्त में देखते देखते यह देखा कि ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक वही नित्य चेतन प्रकाश था। गुरुदेव के शरीर से जो तेज की किरणें निकल रहीं थीं, उन एक एक किरण के अन्दर अनेकों अण्ड व ब्रह्मांड दिखाई दिये। अनेकों ब्रह्मा विष्णु शिव दिखालाई दिये। वेद उसी नित्य शुद्ध स्वरूप की स्तुतियें गा रहे थे। अन्त में यह सब देख करके उसी स्वरूप को प्रणव रूप देखा और अन्त में प्रणव रूप होकर के वहीं अखंड तेज सभी अन्ड ब्रह्मांडों में व्यापक हो गया। सद्‌गुरुदेव के इस महा दिव्य स्वरूप को देख कर श्री मुलखराज जी का मन आनन्द विभोर हो गया और उन्होंने अपने मन में भली प्रकार जान लिया :—

'नास्ति तत्वं गुरोपरम्।'

चित्त निर्माण की योग्यता व अस्मितानुगत योग

एक बार श्री मुलखराज जी महाराज ने ध्यान में श्री प्रभुजी से पूछा प्रभो ! आप हर व्यक्ति को हर जगह किस प्रकार से दर्शन देते हैं और यह क्या शक्ति है। श्री प्रभुजी ने उनको उत्तर में समझाया कि—बेटा जो साधु वशीकार संज्ञा वैराग्य को प्राप्त होकर ऊँचा उठ जाता है और अखड मण्डलाकार विश्वव्यापक रूप को देखते हुए वह प्रकाशित स्वरूप अपना ही भासित होता है, उसको अस्मितानुगत योग कहते है। कोई भाग्यवान् जीव ही इस योग का पूर्णाधिकारी होता है। ऐसा व्यक्ति 'ऋतम्भरा' प्रज्ञा" का अधिष्ठान बन जाता है और उसको चित्त बनाने की योग्यता आजाती है। देखो ! तुम अपने चित्तों को बनते हुए देखो।" श्री प्रभुजी के ऐसे आदेश देने के बाद श्री मुलखराज जी ने अपने एक चित्त से अनेक चित्तों को बनते हुए देखा। उनके प्रधान चित्त से धुँए की तरह कुछ तेजांश उठता था और उसी से एक अलहदा चित्त तैयार हो जाता था।

सिद्धों की पहचान

एक बार श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी व अन्य सभी सत्संगियों को लेकर के सन् १६२६ में हरिद्वार कुंभ मेले पर आये। कुंभ मेले में हजारों जटाधारी महात्मा आये थे उनमें से ये पहचान नहीं की जा सकती थी कि कौन कौन महात्मा अच्छी पहुँच वाले आये हैं।

बाहरी वेश भूषा से सब सामान्य ही दिखाई देते थे। यह प्रश्न श्री प्रभुजी से श्री मुलखराज जी महाराज ने ध्यान में किया कि प्रभो! यह कैसे पहचान की जा सकती हैं कि इनमें से कौन महात्मा कितनी पहुँच वाला है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया—बेटा जिस जिस की जैसी उपासना होती है उतना उतना ही उस व्यक्ति का तेजो मण्डल बढ़ता ही चला जाता है। तेज पुञ्ज की उपासना से मनुष्य का तेज बढ़ता है और अन्यान्य उपासनायें करने से वही तेज लालिमा और कालिमा को लिये, हुए दिखलाई देता है। सो इस कुंभ मेले में जितने महात्मा आये हैं, उनको तुम ध्यान दृष्टि से उनके सूक्ष्म शरीर के तेजो मण्डल को देखो कि उनके सिर के आस पास कितना तेज

उसके बाद श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभुजी के तेज मण्डल को देखना प्रारम्भ किया तो उनके तेज का आदि अन्त न पा सके। अन्त में श्री प्रभुजी ने उनको उठा दिया और लाड़ व प्रेम में कहा—बेटा हमसे ही उपाय पूछा और हमारा ही इम्तहान लेना शुरू कर दिया।

एक सिद्ध महात्मा से मिलाप

श्री मुलखराज जी महाराज इसी तुरीय स्थिति में लाहौर शहर से निकल रहे थे तो श्वासों प्रश्वासों की गति से उनको किसी महापुरुष का आकर्षण मालूम पड़ा। गति अवरोध न देख करके श्री मुलखराज जी उसी ओर चल पड़े। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि महा तेजो मण्डल युक्त एक महात्मा उनको आकर्षित कर रहे हैं। थोड़ी दूर आगे चलने पर वही महात्मा उनके सामने आ गये। श्री मुलखराज जी ने हाथ जोड़ कर विनय की महाराज आपने मुझे क्यों याद किया है।

महात्मा जी ने जवाब दिया है—बेटा कई जन्म पूर्व तुम मुझे मिले थे। उस समय हमने एक बार फिर मिलने का वायदा किया था वह वचन अब तक शेष था उसकी पूर्ति के लिये हम तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हें पूर्ण पुरुष मिल गये हैं चिंता मत करो अब तुम कृतार्थ हो चुके हो। कुछ दिन के संस्कार चक्र के भुगतान के बाद वह तुम्हें महर्षियों में महर्षि बना कर बैठायेंगे। श्री मुलखराज जी को उस महात्मा के मिलने से बड़ा आनंद आया और पूर्व स्मृति जो उन्होंने याद दिलाई थी उस संस्कार को श्री मुलखराज जी ने भली प्रकार से पहचान लिया व ध्यान मग्न हो गये।

बुद्धि से किये जाने वाले होते हैं। मुलखराज जी महाराज की पत्नी किसी शारीरिक कर्म विपाक वश असाध्य बीमार हो गई। उसकी इस स्थिति को देख करके श्री मुलखराज जी के मन में कुछ मनोमालिन्य के भाव जगे।

श्री प्रभुजी ने जब उनके मन की ऐसी हालत देखी तो कहा—वेटा शरीर का योग वियोग तो होता ही रहता है यह तुम्हारे पास वहुत लम्बे समय तक तो कायम नहीं रह सकेगी किन्तु चिन्ता मत करो यदि तुम्हारा मन इस समय इसके आकस्मिक वियोग से दुःख अनुभव करता है तो अब ये ठीक हो जायेगी किन्तु इसके शरीर से बहुत लम्बी आशा नहीं रखनी चाहिये। श्री प्रभुजी के ऐसे कहने से उस समय वह देवी बिल्कुल ठीक हो गई किन्तु लगभग ६ महीने या वर्ष दिन निकल जाने के बाद होतव्यता होकर रही। उस देवी का शरीर वियोग हो गया। श्री मुलखराज जी की सहधर्मिणी होने के नाते वह देवी कितनी पुण्यात्मा थी इसका तो वर्णन ही किया नहीं जा सकता। श्री परम् करुणार्णव प्रभुजी ने परमानुग्रह करके परम्गति दी।

श्री प्रभुजी के उपदेशानुसार श्री मुलखराज जी ने भी पत्नी के वियोग से अपने मन को स्खलित नहीं होने दिया किन्तु जब देवी मोहनकौर के कुटुम्बी लोग करुणा क्रन्दन से रोते हुए आये तो श्री मुलखराज जी को भी अपनी सहधर्मिणी का वियोग अनुभव हुआ और उनकी आँखों से कुछ आँसू निकले। हमारे भारतीय रीति रिवाज में धर्म शास्त्रों के सिद्धांतानुसार मृत्यु के लिये रोना मरने वाले के लिये अशुभ माना जाता है किन्तु वह रोना स्वाभाविक होता ही है। श्री मुलखराज जी महाराज के कुछ आँसू निकले। सहज समाधि तो उनकी थी ही। क्या देखते

हैं कि उनके सामने एक बहुत बड़ा दिव्य सिंहासन आया। वह सिंहासन अपने प्रकाश से स्वयं प्रकाशित था, देवी का रूप भी दिव्य प्रकाशमय था। सिंहासन में बैठी हुई वह देवी हाथ जोड़े हुए सामने आई। हाथ जोड़ कर प्रार्थना की स्वामी जी आपके कारण श्री प्रभुजी ने मुझे वह लोक दिया है देखो तो। वह कितना तेजस्वी लोक है।

किन्तु आपके आँसू उस दिव्य लोक से मुझे यहाँ खेंच लाये हैं। श्री मुलखराज जी ने जिस समय अपनी सहधर्मिणी की यह बातें सुनी तो प्रसन्न मन से आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया अच्छा तुम इस पुन्य: की पात्रा हो यदि मेरा तन मन उन कृपा सागर जी की चरण धूलि हैं तो तुम दुबारा उसी लोक को चला जाओ और वहाँ जाकर परम् सुख को प्राप्त होवे। श्री मुलखराज जी के उस प्रकार कहते ही दिव्यसिंहासन पर आरूढा वह देवी पुन: उसी तेजोमय लोक को चली गई। इधर क्या हुआ श्री मुलखराज जी ने देखा श्री प्रभुजी दिव्य तेजोमय

प्रभो ! मैं भी एक तेज राशि हूँ। फिर आवाज आई—फिर देखो। उत्तर दिया प्रभो ! मेरा भी नाम रूप आपके इस अखंड तेज में दिखलाई नहीं देता। केवल मात्र सर्वव्यापक अखंड आत्मा आप ही आप व्याप्त हो रहे हैं।

श्री प्रभुजी ने फिर कहा—बेटा अब बतलाओ इस प्रकाश में तुम्हारी स्त्री कहाँ हैं। उत्तर दिया प्रभुजी कहीं नहीं। तुम्हारे माँ वाप कहाँ हैं उत्तर दिया कहीं नहीं। अमृतसर और लाहौर तुम्हारे शहर कहाँ हैं। उत्तर दिया प्रभुजी ! कहीं नहीं। केवल मात्र हे ! अविनाशी आप ही आप सर्वत्र व्यापक हो रहे हो। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया—बेटा मेरा यह वह अभिनाशी धाम हैं जिसमें तू है न मैं हूँ कोई स्त्री है न पुत्र हैं। लोक परलोक शहर नदी गाँव कुछ भी नहीं है। इसको पाकर के मनुष्य जन्म मरण के चक्कर से पार हो जाता है और वह अक्षय सुख को प जाता है।

एक-एक पग पर दस दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल

एक बार सद्गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज ऋषिकेश में विराजमान थे, किसी सांसारिक व्यक्ति ने आकरके उनके चरणारविन्दों में प्रश्न किया कि प्रभो ! सुनने में आता है कि मनुष्य की कोई स्थिति इस प्रकार की आया करती है कि उस स्थिति में यदि वह एक एक कदम आगे चला जाये तो उसको दस-दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है वह स्थिति कौन सी है जिसको पाकर के मनुष्य इतना महान पुन्य का भागी बन जाता है।

उस समय श्री मुलखराज जी महाराज श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में बैठे थे। इनकी ओर देख करके श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी—बेटा ध्यान में देखकर बतलाओ कैसी स्थिति में जाकर मनुष्य एक-एक कदम बढ़ाने पर दस-दस हजार यज्ञों के फलों को पा जाता है।" श्री मुलखराज जी श्री कृपानिधान जी की आज्ञा को पाकर तत्काल ध्यान में बैठ गये। उन्होंने देखा एक बड़े दिव्य सुन्दर प्रदेश में एक दिव्य प्रकाशनीय सिंहासन है। उस सिंहासन पर परम सद्गुरु तत्व मूर्तिमान होकर विराजमान है। श्री प्रभुजी का वह रूप अद्भुत व अलौकिक था। परात्पर ब्रह्म प्रकाश था। श्री मुलखराज जी महाराज ने जब ऐसे अचिन्त्य रूप को देखा वेदों की ऋचायें जिसकी स्तुति गा रहीं थीं, देव लोग पुष्प वर्षा रहे थे। ऐसे नित्य परात्पर शुद्ध स्वरूप को देख करके श्री मुलखराज जी तनमन से न्यौछावर

श्री मुलखराज जी को तृतीय नेत्रदान

एक बार श्री मुलखराज जी की अत्यन्त विनय और नम्रता पर हर समय आल्हादित रहने वाले योग-योगेश्वर श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को अपने पास बुलाया और उनके दोनों भ्रुवों के बीच के मांस को थोड़ा हाथ से खींच दिया। ऐसा करने पर आज्ञा प्रदान की कि-बेटा तुम यहाँ बैठे रहो कुछ देर में तुम्हें यहाँ जलन मालूम पड़ेगी और प्रकाश मालूम पड़ेगा तब हमें बतला देना। "इस तृतीय नेत्र के प्रकाश को श्री मुलखराज जी चलते फिरते उठते बैठते हर समय देखते रहा करते थे। दिन प्रति दिन इसका प्रकाश अति उज्वल होता चला गया।"

सिद्ध लोक दर्शन

एक रोज श्री प्रभुजी ने आल्हादित मन से कहा—ऊपर आकाश की ओर तो देखो। ज्यों ही श्री मुलखराज जी ने अपनी दृष्टि को ऊपर उठाया, थोड़ी ही देर में इस तृतीय नेत्र के प्रकाश में अनंत लोक दिखाई दिये। उसके बाद थोड़ी ही देर में दृष्टि सिद्धलोक को चली गई तो श्री मुलखराज जी ने अनन्त प्रकाशमय श्री सिद्ध लोक को देखा। उसमें कपिलादिक महासिद्ध दिव्य तेजोमय रूप से विराजमान थे। वहाँ पर तम् का लवलेश भी नहीं था। इस अद्भुत दृश्य को देख करके श्री मुलखराज जी कृतार्थ होगये।

यस्य कृपांशात् सुविनिष्ट पापः स्तृतीय नेत्रेण-समुद्गतेन।
महाप्रकाशेन सुसिद्ध लोकमीक्षेच वाह्ये मुलखस्तमाश्रये।

अर्थात्—जिनकी कृपा के एकांश को पाकर के महाप्रकाश मय तृतीय नेत्र को पालिया और उस तीसरे नेत्र को पाकर के परम् प्रकाशमय उस सिद्ध लोक को क्षण भर में देख लिया। ऐसे योग-योगेश्वर परम् प्रभु रामलाल जी हम सब के आश्रय स्थान है। उनकी चरण शरण से ही हम सब भी कृतार्थ होंगे। श्री मुलखराज जी का हृदय परम् संतों जैसा हृदय था। वह बड़ी जल्दी दयार्द्र हो जाया करते थे। एक बार उनको ध्यानस्थ देख करके गरीब ब्राह्मण ने प्रार्थना की महाराज मैं लगभग २७ वर्ष से ध्यान का अभ्यास कर रहा हूँ किन्तु मुझे कोई अनुभूति नहीं होती। श्री मुलखराज जी का हृदय उस ब्राह्मण की सत्यवादिता पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में ले गये और उसकी यथार्थ स्थिति बतला दी। श्री परम कृपासागर प्रभुजी ने उसको पुष्प प्रसाद दिया उसके फलस्वरूप उसी समय से उसको दिव्य दर्शन प्रारम्भ हो गये। वह दीन ब्राह्मण कृत कृत्य हो गया।

श्री प्रभुजी के चरण कमलों में मलाया देवी के लिंग शरीर का दर्शन व उसको सद्गति

मलाया देवी अमृतसर में एक भक्ति मती स्त्री थी। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द के दर्शनार्थ आने का उसका नैतिक नियम था। श्री प्रभुजी ने उसको कई बार योगाभ्यास के लिये आदेश दिया किन्तु वह कुछ न करपाई और अचानक छत से गिर कर के उसका देहावसान होगया। श्री मुलखराज जी महाराज ने ध्यान में देखा, मलाया देवी अपने कारण शरीर से श्री प्रभुजी के पास बैठी हुई है, बड़ी उदास मालूम पड़ती है। श्री मुलख-राज जी ने पूछा प्रभो ! यह मलाया आज आपके पास उदास सी बैठी क्यों मालूम पड़ती है। शी प्रभुजी ने उत्तर दिया—बेटा इसको हमने भजन ध्यान के लिये काफी उपदेश दिया किन्तू इसने कुछ नहीं किया। आज अकस्मात् छत से गिर कर

पुरुष सँभाले हुए ला रहे थे। मलाया को श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी-- मरी अब मेरे पास क्यों बैठी है जा उसमें बैठ जा।"

श्री प्रभुजी के कृपामय आशीर्वाद को पाकर के मलाया चटपट भागकर उस सिंहासन पर जाकर बैठ गई। उस सिंहासन में बैठते ही वह दिव्यांम्बरधरा चतुर्भुजा देवी बन गई। चतुर्भुजा होते ही उसने श्री प्रभुजी को बारम्बार प्रणाम किया और सिंहासन के रक्षक चतुर्भुज दूतों ने भी श्री प्रभुजी को प्रणाम किया। श्री प्रभुजी से आज्ञा पाते ही वह दिव्य सिंहासन तत्काल देव लोक को चला गया। श्री प्रभुजी के परम अनुग्रह को पाकर के मलाया देवी परम् श्रेय को पागई। यह ज्यों की त्यों सारी घटना श्री मुलखराज जी महाराज ने तत्काल ध्यान में देखी। ध्यान से उठने के बाद पता चलाया तो मालूम हुआ कि थोड़ी देर पहले ही मलाया मकान से गिर कर शरीर छोड़ चुकी थी।

उसके फलस्वरूप करुणानिधि के मन में महान् करुणा उपजी और उन्होंने देखा कि आकाश से एक महान् प्रकाश नीचे आ रहा है और उसकी एक तेज धारा इनके सिर पर पड़ी थोड़ी ही देर के बाद ऊपर को दृष्टि उठाई तो देखा कि बैकुन्ठपति भगवान् विष्णु स्वयं दिव्य चतुर्भुज स्वरूप से नीचे की ओर आरहे हैं और अपने शंख से इनके सिर पर तेज की धारा फैंक रहे हैं साथ ही बैकुन्ठ लोक भी दीख रहा है। ज्योंही श्री मुलखराज जी ने भगवान् विष्णु के द्वारा इस तेज प्रकाश को प्राप्त किया तो वह पूर्ववत् भगवान् के चतुर्भुज स्वरूप में लीन होकर स्वयं भी चतुर्भुज हो कर बैठ गये। जिस समय थोड़ी सी भी इनकी [illegible]यता भंग होती थी तो खुली ही आँखों उत्तमोत्तम दर्शन [illegible]ामने आते थे। जिस समय ये प्रातःकाल ध्यान से उठे और [illegible]ी प्रभुजी के दर्शनार्थ कटरा भाई संतसिंह को गये तो श्री [illegible]भुजी ने बड़े प्यार से इनको कंठ से चिपका लिया और कहा-[illegible]टा तुमने अपनी चोटी को क्यों इस प्रकार बाँध लिया क्या [illegible]ह शरीर तुम्हारा है। तुम्हारा तन मन तो हमारा है तुम्हें [illegible]सा नहीं करना चाहिये था। श्री प्रभुजी के इतना कहने पर [illegible]ी मुलखराजजी ने देखा कि स्वयं श्री प्रभुजी की चोटी के बाल [illegible]ींचे हुए हैं और टूटे हुए हैं। श्री प्रभुजी की इस कृपा की [illegible]हानता को जान कर उस दिन से श्री मुलखराज जी और भी [illegible]यादा सचेत रहने लगे। श्री मुलखराज जी इस स्थिति में जहाँ [illegible]ीनता रहती थी वहाँ, "ईशाद्या सकला देवा दृश्यं ते परमा-[illegible]नि।"

अर्थात्—ईश आदि सभी देव उस परम प्रकाश में दिखलाई देते हैं। इस नियम के अनुसार श्री मुलखराज जी का उस स्थिति के अन्दर रहने वाले सभी सिद्ध योगिराज व अन्यान्य महात्माओं

के भी समय समय पर दर्शन होते रहते थे और वह सभी लोग प्रसन्न मुद्रा में धन्य धन्य कहते हुए दृष्टिगत होते थे। आनन्द-कन्द अखिलात्मा भगवान् श्री कृष्ण की दिव्य रासलीला और स्वयं भगवान् श्री कृष्ण के स्थूल दर्शन भी इनको प्राप्त हुए; किन्तु इनका मन सद्गुरुदेव श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में ही विलीन रहता था। अतः नाम रूप से उन्हीं के चेतन स्वरूप में समाधिस्थ रहा करते थे।

ब्रह्मपुरी दर्शन

एक बार श्री आनन्दकन्द प्रभुजी श्री मुलखराज जी को इसी तुरीय स्थिति में अपने साथ ऋषिकेश ले गये व काली कमली वाले क्षेत्र में कई दिन तक निवास किया। ऋषिकेश से लगभग ६—७ मील ऊपर ब्रह्मपुरी का जंगल है। बन को जाते हुए और बन से लौटते हुए श्री प्रभुजी ने कुछ समय यहाँ निवास किया था। अपने आपको ऋषिकेश आया देख कर के श्री मुलखराज जी के मन में यह धारणा बनी कि अब ऋषिकेश आये हुए हैं, जिस पवित्र बन में श्री प्रभुजी ने निवास किया उसके दर्शन करलें और अवसर पाकर यह प्रार्थना श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में की। श्री मुलखराजजी की हार्दिक अभिलाषा को देख करके श्री प्रभुजी उनको ब्रह्मपुरी ले गये व वहाँ जाकर ब्रह्मधारा के दर्शन कराये। वहाँ पर श्री गंगा जी से कुछ ऊपर ब्रह्मधारा के निकट पहाड़ में वह गुफा थी जिसमें श्री प्रभुजी ने बन जाते हुए और बन से आते हुए हरिद्वार कुम्भ से पहले निवास किया था

ब्रह्मधारा के दक्षिण भाग में एक सुन्दर वाटिका थी जिसमें केले के वृक्ष अभी तक बहुत काफी विद्यमान हैं और कुछ बन के वृक्ष लगे हुए हैं। साधुओं ने कुछ और भी पौधे लगा लिये हैं। इसी वाटिका में बन के निवास काल में श्री प्रभुजी निवास किया करते थे। यहाँ पर जो केले लगे हुए हैं इनका बीजारोपण पहले पहले श्री प्रभुजी ने ही किया था। श्री प्रभुजी यह बढ़िया केले कहीं से लाये थे और अपने हाथों यहाँ लगा दिये थे।

कहीं से निकल आया। चीते को देख कर के श्री प्रभुजी ने कहा कि बेटा देखो यह क्या आ रहा है। श्री मुलखराज जी ने उस चीते को हिंस्र जन्तु न समझ कर अपने ही आत्मा की तरह प्यार से देखा उसकी ओर आगे को बढ़े तो वह चटपट भाग गया।

इस प्रकार से ब्रह्मपुरी के जंगल का चारों ओर का दृश्य दिखला करके श्री मुलखराज जी को श्री प्रभुजी अपने साथ ऋषिकेश लौटा लाये। उन दिनों ऋषिकेश में रेलवे स्टेशन बनने वाला था श्री प्रभुजी नित्य ही कहीं न कहीं भ्रमण करने जाया करते थे और श्री मुलखराज जी को भी साथ ले जाया करते थे। एक रोज स्टेशन बनने की जगह को देखने को गये, वहाँ पर बहुत सुन्दर सुन्दर मृग चर रहे थे। जिस समय यह दृश्य देख ही रहे थे देखते ही देखते एक चीता निकला और एक मृग के बच्चे को उठा कर लेगया। इस घटना को देख कर के श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को समझाया कि—बेटा इस संसार में जीव जीव का आहार है।

प्राणी मात्र काल के गाल में है बुद्धिमान मनुष्य वही है जो इस मनुष्य लोक में जन्म पाकर अपने आपको काल के चक्र से बचा ले और जन्म मरण से छूट करके अपने परम् लक्ष्य को प्राप्त करले। इस मनुष्य जन्म का यही परम् पुरुषार्थ है। इस प्रकार से ऋषिकेश में रह करके श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी को अनेक आकृति दृश्य दिखला कर शिक्षा देते रहे और अभ्यास व वैराग्य को दृढ़ बनाते रहे। सायं समय भ्रमण के लिये ले जाया करते थे और रात्रि को बस्ती में लौट आया करते थे।

एक दिन वहाँ पर कोई भंडारा था उस भंडारे में एक उग्र स्वभाव वाले महात्मा बैठ गये जो अक्सर अपने क्रोध वश होकर भंडारों में विघ्न बाधाएँ पैदा किया करते थे। जिस समय श्री प्रभुजी उस साधु की तरफ बार बार देख रहे थे तो श्री मुलखराज जी ने पूछा प्रभो ! क्या कारण है जो आप इस महात्मा की ओर देख रहे हैं श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया बेटा यह महात्मा बहुत उग्र स्वभाव का है अक्सर भंडारों में बाधा डाल दिया करता है हम इसकी ओर इसीलिये देख रहे हैं कि यह यहाँ पर इस प्रकार की कोई उदण्डता न करे। उस महात्मा ने भी श्री प्रभुजी की दृष्टि को देख लिया था इसलिये चुपचाप भोजन करके बहुत जल्दी और साधुओं से पहले ही वहां से उठ कर चला गया।

इस प्रकार से ऋषिकेश व हरिद्वार आदि का भ्रमण करा के कुछ समय के बाद श्री प्रभुजी पुनः श्री मुलखराज जी को साथ लेकर अमृतसर आ गये। वहाँ पर पूर्ववत् अपना नैतिक सत्संग का कार्यक्रम बाकायदा चलने लगा।

जल में दिव्य गुणों का प्रकाश

एक वार श्री आनन्द कन्द प्रभुजी सुन्यारा वाले कुँए पर विराजमान थे, सत्संग बाकायदा चल रहा था। श्री प्रभुजी को कुछ प्यास लगी और उन्होंने श्री मुलखराज जी को किसी कुँए से जल लाने की आज्ञा प्रदान की। आज्ञा पाकर श्री मुलखराज जी जल लेने चल दिये तो उनके मन में बागमती गंगा के जल की स्मृति बन उठी। वह मन में विचारने लगे कि श्री प्रभुजी बागमती के जल की बहुत प्रशंसा किया करते हैं सो आज कहीं से उसी प्रकार का जल उपलब्ध हो तो मैं लेजाकर श्री प्रभुजी को पिलाऊँ। यह सोचते सोचते ही श्री मुलखराज जी एक कुँए पर पहुँचे। कुँए पर पहुँच करके ज्यों ही उन्होंने कुंए की ओर दृष्टि डाली तो कुँए में बहते हुए जल की एक पवित्र धारा दिखलाई दी। श्री मुलखराज जी ने उसी धारा से बड़ी जल्दी जल भर लिया और श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में ले गये।

पास में बैठे हुए और सत्संगियों ने व श्री प्रभुजी ने जलपान किया तो वह जल बहुत ही ठंडा और मीठा लगा। मुक्त कंठ से सभी लोग प्रशंसा करने लगे और जल के इतना मधुर होने का कारण श्री प्रभुजी से ही पूछा। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि जिस समय यह मुलखराज जल लेने गया था इसके मन में उस समय बागमती जल की धारणा थी सो इसके एकाग्र मन के संकल्प से ही इस जल में इन गुणों का प्रकाश हुआ है।

पिशाच की निवृत्ति

सत्संग का प्रवाह बराबर इसी प्रकार चलता रहा एक रोज सत्संग में एक देवी रोती और चीखती चिल्लाती हुई आई। श्री प्रभुजी ने उससे कारण पूछा तो उसने बतलाया कि प्रभो ! कई महीने से मेरे पतिदेव को कोई अधोगत आत्मा लगा है वह उसको वड़ा दुःख देता है। मेरे पतिदेव हमेशा पागल की तरह से रहते हैं। उनका काफी उपचार कराया है किन्तु कोई शांति नहीं होती। श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी की ओर इशारा करते हुए कहा – बेटा तुम अपने गले की कमीज उतार कर के इसको दे दो यह जाकर अपने पति को पहना देगी तो उसकी सब व्याधि शांत हो जायेगी। और फिर इसको यह पिशाच नहीं सतायेगा। श्री मुलखराज जी ने अपने गले की कमीज उतार कर के उस देवी को दे दी। वह उसको साथ लेकर और जाकर के वह कमीज अपने पति के शरीर पर डाल दी। कमीज के सिर पर डालते ही उसका पति बेहोश होकर गिर पड़ा।

लगभग एक घन्टे के बाद दुबारा होश आया तो वह बिल्कुल स्वस्थ था। उसको किसी प्रकार की कोई तकलीफ न रही थी। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार श्री मुलखराज जी की वह उतीरण कमीज उस देवी ने अपने पति को पहनाये ही रक्खी जिससे उसके पति की सभी प्रकार की व्याधा कट गई। दूसरे दिन श्री प्रभुजी के चरणों में जाकर के उस देवी ने प्रार्थनाकी कि प्रभो ! मेरा पति अब बिल्कुल ठीक है आपकी कृपा से उसके अब सब संकट दूर हो गये हैं।

मंत्रोपचार करने वाले ब्राह्मण पर विपरीत प्रभाव

श्री मुलखराज जी के मन में तीव्र वैराग्य प्रवाह हर समय चलता ही रहता था। वह यह चाहते थे कि किसी निर्जन वन में जाकर एकांत वास करें। उनके मन के यह भाव उनके घरवालों पर भी प्रगट हो गये थे। श्री मुलखराज जी के इन भावों से घर वाले हर समय चिंतित रहते थे और वह यह चाहते थे 'येन् केनो' पायेन श्री मुलखराज जी बन न जायें और घर में रह कर ही अपना व्यवसाय कार्य करते रहें। इसी कारण को मध्य नजर रखकर श्री मुलखराज जी का छोटा भाई किसी उपचारक ब्राह्मण से जाकर मिला और प्रार्थना की कि महाराज आप कोई ऐसा उपाय कर दीजिये जिससे मेरे बड़े भाई वन में जाने का विचार छोड़ दें।

ब्राह्मण ने कहा अच्छा यदि ऐसा विचार है तो अपने भाई का कोई वस्त्र ले आओ उसमें हम गाँठें लगा देंगे। गाँठे लगाने पर उस वस्त्र को तुम जहाँ जाकर रक्खोगे उसके पास ही तुम्हारे भाई आकर बैठ जायेंगे तब तुम अपने भाई से प्रतिज्ञा करा लेना कि वह वन को न जायें। उस वस्त्र के पास बैठकर प्रतिज्ञा कर देने के बाद वह बन को नहीं जा सकेंगे। श्री मुलखराज जी के छोटे भाई ने यही सब कार्य किया वस्त्र को गाँठें लगवा कर उसे अपने घर में जाकर रख दिया। किन्तु श्री मुलखराज जी पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। वह वस्त्र ज्यों का त्यों ही रक्खा रहा। दूसरे दिन श्री मुलखराज जी का भाई पुनः उस ब्राह्मण के पास गया तो जाकर क्या देखा कि वह ब्राह्मण दुःख

के मारे बिलबिला रहा है। जिस समय मुलखराज जी के भाई ने उस ब्राह्मण से पूछा कि भाई क्या बात है तो उस ब्राह्मण ने जबाव दिया कि कल जो वस्त्र गाँठें लगाकर तुम ले गये थे उसे जल्दी से जाकर ले आओ। उस वस्त्र के द्वारा जिस पर तुमने उपचार कराया है उस पर तो किसी पूर्ण शक्तिवान का हाथ है। उस पर कोई जादू मन्त्र नहीं चल सकते जब तक मैं अपने हाथों उन गाँठों को नहीं खोल दूँगा तब तक मेरी यही दुर्दशा रहेगी और मृत्यु भी हो सकती है।

इसलिये जल्दी लाकर वह वस्त्र मुझे दे दो ताकि मैं मौत से बचजाऊँ या जल्दी से जाकर तुम्हीं उसकी गाँठें खोल दो तभी मेरा यह कष्ट दूर होगा। श्री मुलखराज जी के भाई ने ब्राह्मण पर दया करते हुए जल्दी जल्दी जाकर उस वस्त्र की गाँठें खोल दीं परिणामस्वरूप जब दुबारा जाकर देखा तो वह ब्राह्मण बिल्कुल ठीक था। दुबारा जाने पर ब्राह्मण ने श्री मुलखराज के भाई से कहा कि तुम अपने भाई पर किसी से कोई उपचार आदि बिल्कुल न कराना अन्यथा करने वालों की यही दशा होगी जो इस समय हमारी हुई थी।

श्री प्रभुजी की काश्मीर यात्रा

श्री प्रभुजी ने भ्रमणार्थ एक बार काश्मीर जाने का विचार किया और सकल्प बनते ही दो एक दिन वाद ही काश्मीर यात्रा पर चल पड़े। इस यात्रा में श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को भी अपने साथ ले लिया था। काश्मीर यात्रा को जाते हुए श्री प्रभुजी कुछ दिन शहर रावलपिंडी में ठहरे वहाँ पर बहुत से जिज्ञासु लोग अपनी भावनाओं को लेकर श्री प्रभुजी के चरणों में आये लोगों ने अनेक प्रकार से लौकिक और पारलौकिक लाभ उठाये। कुछ दिन रावलपिंडी रहने के बाद भी प्रभुजी श्रीनगर चले गये। श्रीनगर में भी स्वभावतः ही सत्संग चालू रहा।

श्री प्रभुजी साध्यासाध्य रोगों की कष्ट निवृति के लिये प्रातः काल १० बजे से १२-१ बजे तक योग साधन के द्वारा कार्य करते थे और बाद दुपहर सत्संग आदि का कार्य चलता था। कुछ दिन सत्संग चलने के बाद उस शहर का एक जेल दरोगा बाबू करमचन्द नाम के सत्संग में आने लगे। धीरे-धीरे इनके मन में प्रेम की वृद्धि हुई। सत्संग में आने से ये नित्य श्री प्रभुजी की चमत्कारिक घटनाएँ सुनते रहते थे किन्तु वृत्ति बहिर्मुखी रहने के कारण इनकी पूरी पूरी आस्था नहीं बन पाती थी।

इसलिये वह यह चाहते थे कि किसी ध्यानाभ्यासी सत्संगी बालक से बातचीत करें। इसीलिये एक रोज वह अपने तांगे में एक बैंक के क्लर्क को अपने साथ ले गये जो श्री प्रभुजी के

चरणारविन्द में काफी दिनों से दीक्षित था और ध्यान स्थिति अच्छी चल रही थी ताँगे में साथ ले जाकर उससे ध्यान सम्बन्धी बातचीत करते रहे अपने संशय निवृत होने के बाद उन्होंने उसको ताँगे से बाहर उतार दिया और कह दिया कि अब आप बड़ी खुशी से अपने स्थान पर जा सकते हैं। ऐसा करने में उस ध्यानी भक्त क्लर्क के मन में कुछ क्षोभ पैदा हुआ और दरोगा के प्रति अशुभ भावनाएँ मन में गुजरने लगी। यदि उन भावनाओं पर कन्ट्रोल न किया जाता तो एक भयंकर झंझावात पैदा हो जाता। ऐसा करने से बहुत लोगों को हानि थी इसलिए श्री प्रभुजी ने उस ध्यानी भक्त की बढ़ी हुई मानस ताकत को कम कर दिया जिससे कि किसी को कोई हानि न हो सके किन्तु उसको यह अच्छा नहीं लगा। और भी पास में बैठने वाले सत्संगी यह सोच रहे थे कि इसकी बड़ी हुई स्थिति आज कमजोर दिखलाई दे रही हैं इसलिये यह उदासीन व

द्वारा निकल भी जाती है। इसलिये संभल कर अपना विकास करो। श्री आनन्द कंद प्रभुजी के पूर्ण कृपा भाव को देखकर के जेल दरोगा करमचन्द के मन में पूर्ण श्रद्धा पैदा हुई और श्री प्रभुजी से प्रार्थना करके उसने भी योग दीक्षा ग्रहण करली। इसी प्रकार बराबर सत्संग चलता रहा।

समय-समय पर सत्संगी लोग भ्रमणार्थ बाहर चलने के लिये प्रार्थना किया करते थे। एक रोज जेल दरोगा करमचन्द ने भी यह प्रार्थना की कि प्रभो! आप कश्मीर आये हैं कहीं भ्रमण करने के लिए चला करें यदि आप मेरे साथ चलें तो मैं यहाँ की जेलें दिखाऊँ और जेलियों के हाथ का बना हुआ सामान दिखलाऊँ। श्री प्रभुजी ने कहा कि हम तुम्हारे साथ जेल देखने चल सकते हैं यदि तुम हमारे कथनानुसार जिनको हम कहें उनको छोड़ दो। दरोगा कर्मचन्द ने प्रार्थना की प्रभो! छोड़ना तो मेरे आधीन नहीं है किन्तु उनको सब प्रकार की सुविधा दी जा सकती है। कुछ भी हो प्रार्थना करने पर भी श्री प्रभुजी उन लोगों के साथ नहीं गये और श्री मुलखराज जी को उनके साथ भेज दिया। श्री मुलखराज जी नित्य ध्याना-वस्था में देखते थे कि श्री प्रभुजी एक मुसलमान पीर को सूक्ष्म शरीर से उसी दिन से अपनी गोद में रख रहे थे जिस दिन से वह श्रीनगर आये थे। श्री मुलखराजजी करमचन्द दरोगा के साथ भ्रमण करने चल पड़े उन्होंने पहले अपनी जेलें दिखाईं, जेलियों के बने हुए सामान दिखाये। जेल के सब भाग देख कर के जिस समय वह जेल के चौक में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि एक मुसलमान पीर उल्टा मुँह किये हुए पड़ा है।

रखे हुए थे । श्री मुलखराज जी ने उस फकीर को जगाया और जब वह जगा तो उससे पूछा—क्यों श्री प्रभुजी के चरण कमलों से लिपटे हो । उसने कहा हाँ वह परवर दिगार एक बार यहाँ आये थ और दुबारा आने का वचन दे गये थे अब फिर आये हैं और मुझे गोद उठा लिया है । कुछ और भी पड़े हैं और उनकी राह देख रहे हैं । श्री मुलखराज जी उस फकीर के वचनों को सुनकर बड़े आल्हादित हुए व लौटकर श्री प्रभुजी के चरणों में निवेदन किया । प्रभुजी ने कहा—हाँ बेटा वह पीर फकीर हैं उसका कुछ काम शेष था वह इन दिनों में कर दिया गया है । अब वह यहाँ नहीं रहेगा आगे चला जायेगा । श्री प्रभु जी ने उसको सूक्ष्म में हुक्म दिया—फकीर तुम यहाँ से आगे चले जाओ ।" सभी लोगों ने आश्चर्य देखा कि वह मुसलमान फकीर फिर वहाँ आगे नहीं दिखलाई दिया ।

उन्मत्तों की तरह पड़े हुए योगी को आदेश

दूसरे दिन श्री प्रभुजी ने स्वयं आदेश दिया कि आज हम भ्रमण करने चलेंगे। श्री प्रभुजी का आदेश पाते ही सब तैयार हो गये और भ्रमण करने के लिये तैयार हो गये। थोड़ी दूर चलने पर श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराजजी को आज्ञा दी कि बेटा तुम हमसे कुछ आगे चलो और देखते चलो जो कोई छिपे हुए लिबास में तेजस्वी साधु दिखाई दे उसको तुम पहले से हमारे आने की सूचना दे देना। श्री प्रभुजी का आदेश को पाकर के श्री मुलखराज जी ने उसका उसी प्रकार पालन किया व स्वयं आगे-आगे चलने लगे। थोड़ी दूर आगे चलने पर गंदे नाले के किनारे पर मलिन वेश में पड़े हुए एक तेजस्वी महात्मा को देखा जो तेज से झिलमिला रहा था। उसको इतना महान तेजस्वी देखकर सूक्ष्म शरीर से मन ही मन कहा ऐ ! तेजस्वी महात्मा श्री प्रभुजी आ रहे हैं।

यह ज्ञात हो गया था कि अब यह शरीर छोड़ रही हैं किन्तु मर्यादावश रुके रहे। जिस समय घर वालों की ओर से उनको यह सूचना मिली तो देवी के पाश्चात्य कर्म करने के लिये श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को अपने से पहले अमृतसर भेज दिया।

श्री मुलखराज जी ने अमृतसर जाकर के देहावसान के बाद के सब कर्म कराये व हर वक्त हर समय ध्यानस्थ रहने लगे। उनकी धर्म पत्नी की जो सद्गति हुई वह पीछे की कथा में विशद वर्णन के साथ लिख दी गई है। कुछ दिन के काश्मीर भ्रमण के बाद श्री प्रभुजी अमृतसर चले आये। श्री प्रभुजी के अमृतसर लौट आने के बाद श्री मुलखराज जी ने फिर से अपनी साधना को दृढ़ता पूर्वक करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय ये इसी प्रकार की साधना करते रहे फिर कुछ समय के बाद लगभग सन् १९३० के शुरू में श्री प्रभुजी ने इनको प्रचार कार्य में उतार दिया और श्री प्रभुजी के आदेशानुसार यह प्रचार कार्य करने लगे।

श्री मुलखराज जी व श्री गोपालानन्द जी को लाहौर में योग प्रचारार्थ भेजना

लगभग सन् १६२६ में श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को आज्ञा प्रदान की—बेटा अब तुम लोक हित के लिये अपनी आँखें खोलो। तुम और गोपालानन्द दोनों भाई जाकर के लाहौर में योग प्रचार आरम्भ कर दो।

लाहौर में योग प्रचार

श्री प्रभुजी के आदेश को पाकर श्री मुलखराज जी महाराज व भाई श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी ने लाहौर जाकर योग प्रचार शुरू कर दिया। इन दोनों ने पहले पहले श्री सत्यनारायण जी के मन्दिर में जाकरके योग प्रचार आरम्भ कर दिया। श्री सत्यनारायण के मन्दिर में जाकर इन्होंने तीन प्रकार के कार्यक्रम बनाये। प्रातःकाल सात बजे से लेकर ग्यारह बजे तक साध्य असाध्य सभी प्रकार के रोगों की साधनों द्वारा बड़ी सरलता से चिकित्सा करनी शुरू की। बहुत थोड़े समय में ही काफी मात्रा में प्रचार बढ़ गया। प्रातः काल चिकित्सा कार्य होता था और सायंकाल श्री हरिनाम संकीर्तन योग के ढंग से करना आरम्भ कराया गया। और बाद दुपहर के कार्य क्रम में तीन से पाँच बजे तक भाषणों का कार्य आरम्भ हुआ। धीरे धीरे वह काफी बढ़ता गया और आश्रम में कई सौ आदमियों का यातायात बना रहने लग गया। कुछ समय बाद लाहौर में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी को छोड़ करके श्री मुलखराज जी महाराज अमृतसर चले आये।

राज जी महाराज यू० पी० में चाँदपुर नामक शहर में जि० बिजनौर में गये और उनके वहाँ जाने पर कई प्रकार की विलक्षण घटनाएँ घटीं। जो बहन भाई योग से निराश होकर मन को पीछे हटा चुके थे उनको पुनः शक्ति पात करके उनकी शक्ति का उत्थान किया। और कितनों ही को भावावेश समाधियें महीनों तक पहुँचीं। कितनों की असाध्य बीमारियाँ उनके मन के संकल्प से दूर हो गई। कितने ही सद्गृहस्थ उनके मुख से वरदान पाकर के सन्तान वाले बन गये। आज भी चाँदपुर वासियों के मन में उनका योग प्रभाव कूट कूट कर भरा हुआ है। लाला हरस्वरूप चण्डी प्रसाद व रघुनन्दन प्रसाद आदि पवित्र अग्रवाल जैन घराने उनकी कृपाओं को भली प्रकार जानते हैं। सन् १९४५ में मेरे छोटे गुरुभाई योगिराज नृसिंह मूर्तिजी श्री मुलखराजजी को पूर्ण आग्रह के साथ दक्षिण ले गये और वहाँ पर मद्रास प्रांत के प्रमुख शहरों में उनके भाषण कराये। कई कई सौ व्यक्तियों को एक एक साथ शक्ति पात दीक्षाएँ दिलाईं। फलस्वरूप उन लोगों ने भी श्री मुलखराज जी महाराज के बहुत बड़े अनुग्रह को प्राप्त किया। कितने ही जीवन निराश रोगी उनके प्रसाद भाग देने से ठीक हो गये। उस प्रांत की रानी सरस्वती आदि अब भी उनके परम् भक्तों में से हैं जो उनके गुणों का हर समय चिन्तन करते रहते हैं।

श्री मुलखराज जी के जीवन में बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि वह सारा जीवन कर्त्तव्य परायण रहे और फल में आसक्ति रहित रहे। यह उन्होंने कभी भी विचार नहीं किया कि इसका परिणाम क्या रहेगा। उनके जीवन में सबसे बड़ी बात महत्व की यही रही कि सभी काम उन्होंने कर्त्तव्य बुद्धि से

किये और मन को हर समय श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में समर्पित रक्खा। ५ नवम्बर सन् १९६० में योगाभ्यास आश्रम कनखल में अपने अशाश्वत नश्वर देह का त्याग करके विदेह हो गये और मनुष्य जीवन के परम् लक्ष्य को प्राप्त किया। श्री मुलखराजजी महाराज के नक्शे कदम पर चलने वाला हर व्यक्ति अवश्य ही अपने आपको कृत कृत्य कर सकता है। श्री आनंद कंद प्रभुजी की परम् करुणा से श्री मुलखराज जी महाराज के जीवन की पवित्र घटनाओं का जितना मुझे स्मरण था और जो भी उन्हीं के द्वारा प्राप्त की हुई कथाओं से उपलब्ध हो सका उसको इस छोटी सी पुस्तिका में लिखने का प्रयत्न किया है जिससे उनकी पवित्र योग कथाएँ जन साधारण को योग मार्ग की ओर अग्रसर कर सकें।

श्री सिद्ध गुफा का परिचय

श्री सिद्ध गुफा योग योगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का सबसे पुराना आश्रम है। नैपाल हिमालय को जाने से पूर्व श्री प्रभु जी ने कुछ समय यहाँ निवास किया था। श्री सिद्ध गुफा उनकी ऐतिहासिक पुण्य स्मृति है। इस गुफा की मिट्टी में श्री प्रभु जी का वरदान है, जो गुफा की पवित्र रज को श्रद्धा पूर्वक चाटते हैं वो सभी आधि व्याधियों से छूट जाते हैं। यह स्थान आगरा शहर से १५ मील की दूरी पर परगना ऐत्मादपुर से लगभग १ मील पश्चिम में सवांई गाँव के निकट है। रेलवे स्टेशन टूण्डला जकंशन से सवांई गाँव ३ मील है। ऐत्मादपुर होकर आना होता है। सवांई गाँव के निवासी लोगों ने श्री प्रभुजी के यहाँ के निवास काल में उनकी अनेकों चमत्कारिक लीलायें देखीं। उनकी अद्भुत चमत्कृतियों के देखने वाले बहुत से लोग अब भी काफी संख्या में जीवित हैं।

श्री प्रभु जी का यह स्थान सबसे पुराना सिद्ध स्थान है।

पता—श्री सिद्ध गुफा, गुरु का बाग
मु० पो०—सवांई
जिला—आगरा
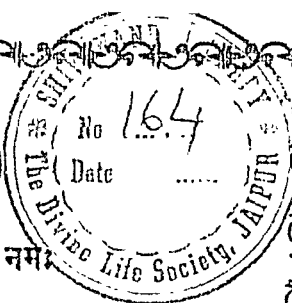
श्री विश्वेश्वराय नमः

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द

व

उनके ध्यानानुभव

लेखक

योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्रकाशक

श्री सिद्ध गुफा, गुरु का बाग

सवांई (ऐत्मादपुर)

जिला—आगरा

श्री विश्वेश्वराय नमः

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द

व

उनके ध्यानानुभव

लेखक
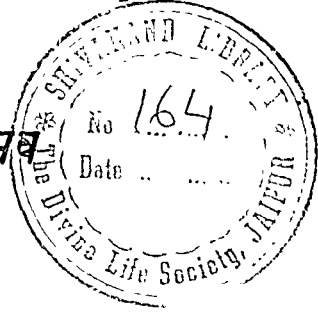
योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

प्रकाशक

श्री सिद्ध गुफा, गुरु का बाग

सवांई (ऐतमादपुर)

जिला—आगरा

द्वितीयवार १०००] १९६४ [मूल्य १)

विषय-सूची

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी

आदरणीय ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के जीवन का आनन्द कन्द योग योगेश्वर सत्यगुरुदेव श्री रामलाल जी की लीलाओं में एक विशिष्ट स्थान है। परम करुणार्णव श्री प्रभुजी ने हिमालय (नैपाल) से उतर कर जनसाधारण पर जो अनुकम्पाएँ कीं उन सबका पूर्णरूप से वर्णन करना तो अत्यन्त कठिन है; यद्यपि उस दिव्य विभूति के चरण कमलों की ओर आकर्षित प्राणी के मन में उनका लीलामृत पान करने की अभिलाषा रहती है। ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी आनन्द कन्द श्री प्रभु जी के अत्यन्त कृपा पात्र थे। उनके जीवन की झाँकी में श्री प्रभु जी की अपार करुणा की झाँकी मिल जाती है। इसी भावना से श्री प्रभु जी से सम्बन्धित उनके चरित्र का रेखाङ्कन किया जा रहा है।

जन्म और बाल्यकाल

ब्रह्मचारी जी का जन्म सम्वत् १९५६ विक्रमी में हलद्वानी जिला नैनीताल के एक अग्रवाल वैश्य परिवार में हुआ था। उनका बचपन का नाम रामगोपाल था। उनके पिता लाला गोविन्दराम कट्टर आर्यसमाजी विचार के थे। यह आजकल भी समाचार पत्रों के एक पुराने विक्रेता हैं। उनकी बड़ी बहिन रुक्मिणी देवी से पता चला है कि गर्भवास के समय उनके माता-पिता हलद्वानी में एक अच्छे महात्मा की सेवा किया करते थे। उन्हीं के आशीर्वादस्वरूप ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी का जन्म हुआ। किसी आर्य-विद्वान ने नामकरण के समय

पर उनकी जिह्वा पर 'ॐ' लिखा था। आर्यसमाज के प्रभाव से बचपन में ही उनकी दिनचर्या में नैत्यिक अग्निहोत्र और संध्योपासना ने स्थान जमा लिया था। बचपन में ही उन्होंने प्रतिभा का परिचय दिया और १२ वर्ष की अवस्था में ही आयुर्वेद में अच्छी योग्यता प्राप्त की। १६-१७ वर्ष की आयु में उन पर महात्मा गाँधी जी का प्रभाव पड़ा। वह हाथ के कते-बुने कपड़े का प्रयोग करने लगे। कुछ काल तक उन्होंने आयुर्वेदिक कालेज लाहौर और कुछ समय तक कलकत्ते में रहकर आयुर्वेद की शिक्षा पूर्ण की अल्पकाल में ही एक अच्छे वैद्य बनकर वह अपने गाँव हलद्वानी में ही चिकित्सा कार्य करने लगे। यहाँ उन्हें चिकित्सा कार्य में काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई।

हठयोगी के दर्शन व सत्संग से लाभ

श्री ब्रह्मचारी जी के मन में यौगिक शिक्षण प्राप्त करने की धुन बचपन से ही लगी रहा करती थी। और वह आर्यसमाज की शिक्षा के प्रभाव से ब्रह्मचर्य पालन करना व योग विद्या को शुष्ठु प्रकारेण प्राप्त करना उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। उनके मन में यह लगन रहती थी कि योग विद्या पूर्णवेत्ता कोई सत्गुरु प्राप्त हों और वे इस विद्या को पूर्णतया सीख सकें। वे जहाँ भी किसी महात्मा का नाम सुनते तो उनके दर्शन के लिये जाते व उनसे योग सम्बन्धी प्रश्न किया करते थे। उन्होंने हलद्वानी के इस अपने अल्पकालीन चिकित्सा काल में ही कई अनेक महात्माओं के दर्शन प्राप्त किये। उन्हीं में से एक विशिष्ट महात्मा के दर्शन की कथा उल्लेखनीय है। जिन्होंने श्री ब्रह्मचारी जी को अपने अनुभव के आधार पर श्री आनन्द कन्द परम करुणार्णव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल

परिपूर्ण गुरू की प्राप्ति होगी। उनका गौर वर्ण है, पञ्जाबी शरीर है। दीन जनों के उपकार के लिए वे हिमालय से उतर कर आयेंगे। उन्हीं के द्वारा तुम्हारा पूर्ण कल्याण होगा।" महात्मा जी की भविष्यवाणी ने ब्रह्मचारी जी के मनमें और भी अधिकाधिक उत्कण्ठा पैदा कर दी। और वे इस उज्वल भविष्य की प्रतीक्षा में रहने लगे। इस समय तक ब्रह्मचारी जी हलद्वानी निवासियों के मन में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। परन्तु फिर भी अपने बहनोई डा० चन्डी प्रसाद के परामर्श से मुरादाबाद रहने लगे। उन्होंने वहाँ भी अपना चिकित्सा का कार्य आरम्भ कर दिया। मुरादाबाद में रहते हुये ब्रह्मचारी जी को एक और महात्मा का सत्संग लाभ हुआ। महात्मा एक अच्छे शक्ति सम्पन्न व्यक्ति थे। किन्तु उनका स्वभाव कुछ कटु था। ब्रह्मचारी जी उनसे भयभीत रहते थे। वह किसी करुणार्णव योगिराज की तलाश में थे।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमैवैषवृणुते तेनैव लभ्य,
तस्यैष आत्मा विवृणुते ।
तनूँ स्वाम ।

अर्थात् प्रभु के स्वरूप को पहचान लेना मनुष्य के अपने पुरुषार्थ से परे है। जिस पर वह कृपा स्वयं करते हैं वही जान पाते हैं।

सो जाने जिन देहु जनाई

श्री प्रभु जी से मिश्री की डेली का वह प्रसाद पाकर डा० राम गोपाल धन्य हो उठे। उन्हें सम्प्रज्ञात समाधि के अतुल प्रकाश का अनुभव हुआ। श्रुति वाक्य का यह प्रकाश उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गया।

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्र तारकं ।
नेमा विद्युतोभाति कुतोऽयमग्निः ॥
तमेव भान्त मनु भाति सर्वं ।
तस्या भासा सर्वमिदं विभाति ॥

अर्थात् उस प्रकाश स्वरूप प्रभु के अतुल प्रकाश के सामने न सूर्य चमक सकता है, न चन्द्रमा, न तारागण अग्नि की तो बात ही क्या ? उसी के प्रकाश से यह सारा विश्व प्रकाशित हो

औषधियों को इकट्ठा बाँधकर आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ अमृतसर पहुँच गये ।

डा० रामगोपाल को परम विरक्त भाव से आया हुआ देखकर श्री प्रभु जी ने उन पर अपनी अहैतुकी करुणा की वर्षा की। प्रसन्न होकर कहा : "बेटा, अब तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण होगा । तुम लाखों दुःखी जीवों के कल्याण का कारण बनोगे ।" ठीक उसी समय रामगोपाल जी ने देखा कि उनके पिता आये हुए हैं और वे रोष मुद्रा में खड़े कह रहे हैं कि मेरा एक ही बच्चा है, वह साधु हो जायगा तो हमारा वंशोच्छेद हो जावेगा। उसे ग्रहस्थ बनकर लोक जीवन का पालन करना चाहिये। उन्होंने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की : "प्रभो ! यह क्या हो रहा है ?" श्री प्रभु जी ने कहा : "यह तेरे कल्याण के लिये है, इससे तेरा परम कल्याण होगा ।" धीरे धीरे डाक्टर के पिता गोविन्द राम का मनोभाव बदलने लगा। पुत्र की तीव्र वैराग्य और परोपकार की भावना से पिघलकर उन्होंने उन्हें ब्रह्मचर्य धारण करने की आज्ञा दे दी। उनके लिए स्वयं वस्त्र खरीदकर उसे अपने हाथों से रंग कर श्री प्रभु जी से उन्हें दीक्षा देने का स्वयं आग्रह किया ।

ब्रह्मचारी गोपालानन्द

अब डा० रामगोपाल ब्रह्मचारी गोपालानन्द बन गये। उन्हें ध्यानावस्था में हिमालय के बड़े-बड़े सिद्धों और ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उनके परोपकार की तीव्र भावना, गुरु-भक्ति और ईश्वर भक्ति के उमड़ते हुए प्रभाव को देखकर श्री प्रभु जी ने आशीर्वाद दिया : "बेटा, अब तुम संसार के लाखों जीवों के कल्याण का कारण बनोगे। तुम्हारे रोम-रोम में भगवान

चिन्ता मत करो। गोपालानन्द जिन्दा है। पाँच दिनमें वह समाधि से उठ जावेगा। उसके शरीर को किसी हवादार कमरे में डाल दो। पाँच दिन के बाद जब वह उठे तुम उसको दूध पिला देना।" श्री प्रभु जी के कथनानुसार वैसा ही हुआ। और पाँच रोज के बाद श्री ब्रह्मचारी जी समाधि से उठ बैठे। मुरादाबाद वासी सब सत्सङ्गियों को अतिशय आश्चर्य हुआ। और उन्होंने श्री प्रभु जी की अनुपम कृपा को समझा। कुछ समय बाद ब्रम्हचारी जी मुरादाबाद से जाकर श्री प्रभु जी के चरण विन्दों में पहुँच गये।

सेवा कार्य

कुछ समय पश्चात् श्री प्रभु जी ने श्रद्धेय स्वामी मुलखराज तथा श्री ब्रम्हचारी जी को योग प्रचार के लिए लाहौर भेज दिया लाहौर में इनका प्रचार कार्य खूब बढ़ा। इनके प्रचार कार्य के तीन भाग थे :—

(१) साध्य और असाध्य सभी प्रकार के रोगियों की योग साधनों द्वारा चिकित्सा करना।

(२) आने वाले जिज्ञासु समुदाय को परम कल्याणमय योग मार्ग का उपदेश देना व सभी प्रकार के योग-साधनों की

समय उनके लाहौर के योगसाधनाश्रम में प्रतिदिन रात्रि के सत्संग में लगभग दो सौ व्यक्ति भाग लेते थे। जो प्रायः सभी नाम संकीर्तन करते हुये बेहोश हो जाते थे। इस अद्भुत संकीर्त्तन के प्रभाव से लाहौर शहर में लगभग सौ संकीर्त्तन मंडलियाँ कायम हुईं। शनैः शनैः यह संकीर्त्तन आगे बढ़ता गया, और अमृतसर लुधियाना, जालधर तथा इसी प्रकार यू० पी०, सी० पी०, बिहार आदि में भी इसका प्रचार हो गया। श्री ब्रम्हचारी जी के मुखारविन्द से निकली हुईः—

गोविन्द जै जै, गोपाल जै जै, राधारमण हरि गोविन्द जै जै।

तथा —

राधेश्याम, राधेश्याम श्याम श्याम, राधे राधे।
राधाकृष्ण, राधाकृष्ण, कृष्ण कृष्ण, राधे राधे॥

की ध्वनियाँ आज भारत के कोने-कोने में व्यापक हो चुकी हैं। लगभग दो साल तक श्री ब्रम्हचारी जी के संकीर्तनका प्रभाव लाहौर में चलता रहा। समय का परिवर्तन हुआ और आनन्द कन्द श्री प्रभु भी जी ने किन्हीं कारणोंसे श्रीब्रम्हचारीजी का लाहौर में रहना उचित नहीं समझा। उन्होंने, उनको एक सांकेतिक आज्ञा दी कि जिस समय तुम्हें मेरा कोरा कागज का लिफाफा मिल जाय, तुम लाहौर छोड़कर मुरादाबाद चले जाना। ऋषिकेश से दीनबन्धु श्री प्रभु जी का कोरे कागज का लिफाफा शीघ्र ही श्री ब्रम्हचारी को मिल गया। वे लाहौर छोड़कर मुरादाबाद चले आये।

बजे से १२ बजे तक ५ घंटे का अनवर्त्त सत्संग और संकीर्त्तन उनका नैत्यिक कार्यक्रम था। इतने पर भी तिमंजले मकान के ऊपर माघ मास के प्रवल शीत में शेष रात्रि तपश्चर्या में ही व्यतीत करते थे। दो मास के इस कठिन तपश्चर्या के बाद उनका वह समय आ गया, जिसका संकेत वह श्री प्रभु जी के द्वारा लाहौर में पा चुके थे। एक मास पूर्व ही वह इसका संकेत कर रहे थे। आज उनका मुखमन्डल और दिनों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न और तेजोमय था। दिन का सम्पूर्ण कार्यक्रम बाकायदा चालू रहा। रात्रि के सत्सङ्ग में उन्होंने यह सूचना दी कि आज इस शरीर का वह कार्य पूर्ण होगा, जो अब तक नहीं हुआ। सत्संग में आने वाले भक्त उनका आशय समझ नहीं सके उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि आज वह कोई अलौकिक शक्ति प्राप्त करेंगे। सत्सङ्गी खुशी-खुशी प्रसाद लेकर घर चले गये। श्री ब्रम्हचारी जी ने खूब प्रसन्नता से सबको प्रसाद और विदाई दी। सबके चले जाने के बाद वहाँ से निवृत्त होकर ध्यानावस्थित हो गए थोड़ी देर में श्वास की ऊर्द्धगति हुई और उनकी आत्मा ने नश्वर देह का त्याग कर दिया। प्रातःकाल जब नगर में उनकी मृत्यु का समाचार फैला तो लोगों को उनके संकेत का अर्थ समझ में आया।

आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की कृपा से श्री ब्रम्हचारी जी का सम्पूर्ण जीवन तपोमय व्यतीत हुआ। उनके शरीर का रोम-रोम श्रीकृष्ण के प्रेम में विभोर रहा। अन्तिम समय में वे कृष्णमय होकर देव लोक वासी हुये।

किन्तु ये उन स्वामी जी के शाप-ताप से मुझको मुक्तकर सकते हैं या नहीं। यह निश्चय कर लेने की आवश्यकता है।

उसी दिन शाम को पूर्व गुरु स्वामी जी के पास जाकर मैंने कहा कि एक महात्मा आया है। उनका मस्तक एक गोल गुम्ब-दाकार है। नेत्र करुणारस से पूर्ण है। हास्य छवि, मृदु-मुस्कान राम के चरित्र की याद दिलाती है। उनकी वाणी में क्रोध की छटा किञ्चित भी नहीं है। आनन्दरस प्रत्येक शब्द से टपकता है। स्वामी ने कहा कि कौन साधन का योगी है और किसका वह शिष्य है ? मैंने कहा कि यह तो मैंने नहीं पूछा कि वे किसके शिष्य हैं, किन्तु वे श्रुत योग के अतिरिक्त भी योग के सभी साधनों के ज्ञाता हैं। स्वामी जी ने कहा जो अनेक मार्गों में फँसता है, वह योगी तथा मालिक का सच्चा भक्त नहीं हो सकता। उन्होंने फिर यह पूछा कि कौन वर्ण है। मैंने कहा कि ब्राह्मण है, इस पर स्वामी जी ने कहा यदि ब्राह्मण है तो निश्चय ही वह पाखण्डी है। ब्राह्मण का पुत्र इस समय कभी भी मालिक का भक्त नहीं हो सकता है और तू उसके पास अब न जाना। यदि गया तो इसका दण्ड पायगा। मैं चुप हो गया। इन स्वामी जी की वृत्ति क्रोधमय रहती थी। इस कारण मेरा भाव इन पर नहीं रहता था। मैं ऐसे योगी की खोज में ही था कि अचानक इस प्रकार देव-प्रेरणा से श्री प्रभु के दर्शन हुये और उनके करुणा नेत्र हृदय में गड़ गए, मैंने मनमें निश्चय कर लिया कि इनकी ही शरण में जाऊँगा। एक रोज मैं विचार में रहा और श्री प्रभू जी के पास नहीं गया। फिर मेरे मित्र हरिश्चन्द्र जी आये। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या विचार है ? मैंने कहा कि यदि प्रभू उन स्वामी जी के शाप-ताप से मुझको निवारण कर सकते हों तो मैं इनकी शरण में आने को तैयार हूँ। दूसरे दिन हरिश्चन्द्र जी ने उत्तर दिया कि वे कहते हैं कि अब तक तो हमारे मनमें

टालने की थी, किन्तु अब मैं तुमसे कहता हूँ कि उन्हें कल ही लिवा लाओ। मैं दूसरे दिन कुछ पुरुष लेकर गया, श्री प्रभू जी ने मेरे सिर पर हाथ फेरा और कहा कि जिस साधन में तुम लगे हो उसी में लगे रहना चाहते हो या और किसी योग में लगना चाहते हो। मैंने श्री प्रभू जी से प्रार्थना की कि मैं इसी में लगे रहना चाहता हूँ। श्री प्रभू जी ने एक मिट्टी की कंकड़ी उठा कर दी कि जिस समय भजन में बैठो उस समय मुख में डाल लेना। मैंने ऐसा ही किया। कंकड़ी मुख में डालते ही मुझे सूर्य के समान प्रकाश-मय स्वरूप में श्री प्रभू जी के दर्शन भी होते रहे। मैंने कहा कि प्रभू जी यह क्या माया है? इतना कहना था कि श्री प्रभू जी की छवि ऊँची हो गई। फिर स्वामी जी की मूर्ति भी ऊँची हो गई। इसके पश्चात् प्रकाश न रहा। फिर जो प्रकाश हुआ उसमें दीप्तिमान स्वरूप में श्री प्रभू जी ही विराजमान थे।

दिन मैं रात्रि को सो रहा था कि स्वप्न हुआ। स्वप्न में मुझे एक स्वरूपवती यौवन पूर्ण कन्या सोलह वर्ष की दिखाई दी और वह मेरे समीप नृत्य करती हुई आने लगी। जब वह आने लगी तो शरीर में काम-देव तेजस्वी होकर उपस्थ-इन्द्रिय दृढ़ हो गई। जब कन्या समीप लेटने को हुई तो एक दम श्री प्रभु जी के दर्शन हुए और वह कन्या न रही। सामने श्री प्रभु जी विराजमान थे। मुझे आश्चर्य हुआ साथ ही लज्जा ने दबा लिया। श्री प्रभु जी मुझे धीरज देकर ध्यान वृत्ति को स्थिर करने लगे। थोड़ी देर में वह कन्या सामने फिर से दीखने लगी।

श्री प्रभुजी ने उससे कहा कि अब यह मेरा पुत्र हो चुका है। तुझको इस पर अपना प्रभाव न रखना चाहिये। उसने कहा कि इसमें हमारी वासना है, क्यों नहीं हम भोगें। श्री प्रभु जी ने ओजस्वी वाणी से कहा कि मुझको तू भूल गई, मेरा हाथ जिस पर होता है उस पर तुझे दृष्टि डालना उचित नहीं है। इतना जो श्री प्रभु जी ने कहा तो वह अन्तर्ध्यान हो गई। अन्तर्ध्यान होते ही श्री प्रभु जी फिर मुझे आश्वासन देने लगे। कुछ ही क्षण बाद वह कन्या नवीन रूप शृङ्गार से सज्जित होकर फिर आने लगी। श्री प्रभु जी ने कहा कि खबरदार इधर बढ़ी, किन्तु वह कब सुनने वाली थी। मैंने प्रार्थना की कि प्रभो! यह तो आई ही जाती है। श्री प्रभु जी ने कहा कि घबराओ मत, यह कह आकाश की ओर तीन बार ताली बजाई, फिर क्या था, आकाश से अगणित सूर्यों के प्रकाश के समान चमकता हुआ सुदर्शनचक्र घूमता हुआ आया व आते ही श्री प्रभु जी ने मुझे गोद में रखकर तर्जनी उँगली से घुमाकर उस कन्या को मारा। उसके लगते ही उसका सिर कट गया व उसके शरीर से तीन सिर वाला राक्षस प्रगट हुआ। मैं उसको देखकर आश्चर्य में डूब गया और वह राक्षस आकाशगामी हो गया। श्री प्रभु जी

ने मुझसे कहा कि अब यह काम-चेष्टा तुझको नहीं सता सकती उसके बाद मैंने यह आश्चर्य देखा कि मेरे प्रयत्न करने पर भी मेरे मनमें काम-वासना का उदय बिलकुल नहीं होता था। मुझे उस दिन से पूर्ण विश्वास श्री प्रभु जी पर हो गया और रात्रि दिन यह चिन्ता होने लगी कि मैं किसी प्रकार श्री प्रभु जी के साक्षात् दर्शन करके कृतकृत्य होऊंगा। कुछ दिन बाद (पूर्व गुरु) स्वामी जी नुकुड़ से आते। उनके आने से एक दिन पहले मेरे सब रोगी बिगड़ने लगे। वही औषधि, वही रोगी. वही रोग, फिर पहले तो उनको लाभ था अब उन्हीं औषधियों से उनका रोग बढ़ गया। शहर में अपयश फैलने लगी। साथ ही भजन में (ध्यान में) स्वामी जी क्रोधावेश में आकर कहने लगे कि तूने दूसरों के कहने में आकर हमारे मार्ग को त्यागा है। और ब्राह्मण का अनुगामी हुआ है। जा सब तेरे रोगी बिगड़ जायेंगे और तू दारिद्रय जीवन व्यतीत करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होगा ऐसा प्रभाव जब प्रगट में मैंने देखा तब मेरा दिल दहल गया। श्री प्रभु जी का स्मरण करते-करते मुझे धीरज हुआ। और जब स्वामी जी अगले दिन आये तो स्वामी जी मुझसे प्रत्यक्ष में कहते हैं कि हरिश्चन्द्र को अपने पास मत आने दे। और इधर उधर न भटक, अन्यथा इसका परिणाम बुरा होगा। खैर यह बात सुनकर तथा जो शाप दिया उसका अनुमान करके मैंने निश्चय किया कि, अवश्य ही श्री प्रभु जी को लिखूँगा। उसी समय एक पत्र श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में लिख दिया। उसका उत्तर श्री प्रभुजी के चरण-कमलों से इस प्रकार मिला— चिरञ्जीव! जो कैलाश छोड़कर व गणपति गौरा को त्याग कर हर समय तुम्हारे साथ रहते हैं, इतने पर भी तुम शाप का चिन्तन करते हो। जब तुम्हारे पास हमारा यह पत्र पहुँचेगा तब उसी समय से औषधियों में चौगुनी शक्ति हो जायेगी। और रोगी

सब सम्भल जायेंगे, उस पत्र का फल वैसा ही हुआ। रोगी फिर लौटकर आने लगे तथा सब व्यवस्था पहले से भी अच्छी हो गई। इधर श्री प्रभु जी ने कहा कि घबरा मत! मैं तुझको शीघ्र ही अपनी गोद में साक्षात् स्वरूप से रखूंगा। इस वाक्य का व्यवहार रूप में अर्थ न समझ सका और श्री प्रभुजी को उत्तर यथावत् दे दिया। कुछ दिन बाद श्री प्रभु जी ने मुझे एक रोगी के इलाज के लिए अमृतसर बुलवा लिया। तथा श्री चरणों में पहुँचते ही वह प्रेम का हाथ शिर पर रखा कि मेरी सब चिन्ताएं ऐसी उड़ गईं जैसे कि अग्नि से कपूर उड़ जाता है।

चित्त-वृत्ति को लय करती हैं ? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि यह कौन सी बड़ी बात है जो उससे पूछने गया। जब मैं तेरे पास हर समय रहता हूं तो कोई बात किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। अब ध्यान देकर सुन। सोते समय प्रणव मन्त्र को हृदय पर ध्यान देकर सुनो प्रभु का ध्यान भी वहीं करो। ध्यान के स्थिर होने पर हृदय-कमल संकुचित नहीं होगा, हृदय-कमल के संकुचित होने पर निद्रा आती है। ऐसा करने से निद्रा नहीं आयेगी। यही ध्यान कुलवन्ती करती है। फिर ऐसा करने से उसी दिन से निद्रा का उपद्रव बिलकुल शांत हो गया।

भैरवसिद्ध महात्मा को दण्ड व वैरागी महात्मा बालकृष्णदास का मिलन

श्री ब्रह्मचारी जी के मनमें भगवद्भक्ति के साथ-साथ गुरु भक्ति भी परिपूर्ण थी। उनके मनमें सद्गुरु व ईश्वर एक ही तत्व के दो भिन्न-भिन्न नाम थे। परमकल्याण धन श्री प्रभु जी ने उनको प्रेम परिपूर्ण बना दिया था, वह सद्गुरुदेव योग योगेश्वर श्री प्रभु जी के कृपामय चरण-कमलों पर न्योछावर रहते थे। गुरुनिन्दा सुनना उनके लिए परम असह्य था एक बार हिमालय से लौटकर आने के बाद श्री प्रभुजी अमृतसर में निवास कर रहे थे। सत्सङ्ग में आने वाले नरनारियों की भीड़ हर समय बनी रहती थी जो ईर्ष्यालु लोगों के लिए असह्य थी। वे लोग इस प्रतीक्षा में रहते थे कि कोई ऊँचे सिद्ध महात्मा कहीं से आयें व वे लोग उनके द्वारा श्री प्रभु जी को नीचा दिखला सकें। अमृतसर बहुत पुराना नगर है। प्रायः विचरते हुये सन्त महात्मा आते जाते रहते हैं कुछ समय बाद अकस्मात् कोई महात्मा वहाँ आ निकले, जिन्होंने बड़े प्रयत्न के साथ श्री भैरव जी को

सिद्ध किया था। उनकी चमत्कृतियों को सुनकर उपरोक्त ईर्ष्यालु लोगों को बड़ा उत्साह हुआ व वे लोग उस भैरव सिद्ध महात्मा को साथ लेकर श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में आये। उन लोगों ने महात्मा को काफी प्रलोभन में फंसा दिया था, बेचारे महात्मा नहीं सोच सके कि होनहार क्या है व मैं कहाँ जा रहा हूं? सहसा श्री प्रभु जी के चरण कमलों में पहुँच कर वह कटु भाषण करने लगे व कहा कि यदि तुम योगिराज हो तो कोई चमत्कार दिखलाओ - अन्यथा यह आडम्बर क्यों रचाया है?

श्री प्रभु जी बड़ी गम्भीरता से उसकी बातों को सुनते रहे। वह करुणार्णव यह सोचते थे कि कुछ काल में यह स्वयं चुप हो जायगा किन्तु श्री ब्रह्मचारी जी से यह सहन न हुआ। श्री ब्रह्मचारी जी उस समय श्री प्रभु जी की चरण सेवा में वहाँ उपस्थित थे। श्री ब्रह्मचारी जी ने पास में बैठी हुई एक अष्टवर्षीया बालिका की ओर सङ्केत करते हुए उस अभिमानी महात्मा से कहा कि अरे उद्दण्ड महात्मा! उन कृपानिधि से तू क्या देखेगा! इस बालिका की ओर देख यह आदि शक्ति तुम्हें सब कुछ दिखायगी व तेरे अनर्गल भाषण का फल देगी। अकस्मात् श्री ब्रह्मचारीजी की ओजस्वी वाणी को सुनकर महात्मा ने विस्मित होकर उस बालिका की ओर देखा, वह अष्टभुजी आदि महाशक्ति दुर्गा दिखलाई दी। महात्मा का बड़े प्रयत्नों से सिद्ध किया हुआ भैरव उसको छोड़ अपनी माता की गोद में जा बैठा व माता से आज्ञा पाकर त्रिशूल उठाकर उसी महात्मा को दण्डित करने को दौड़ पड़ा। महात्मा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने आर्त-स्वर से श्री प्रभु जी की विनती व बार-बार क्षमा याचना की। श्री प्रभु जी ने उसकी दीनता को देखकर उसे क्षमा कर दिया, उसका इष्ट भैरव उसको दे दिया व अमृतसर से बाहर जाकर कहीं एकान्त में जाकर तप करने की आज्ञा देकर उसे भेज दिया।

उसके साथ में आने वाले ईर्ष्यालु लोग भी अपना सा मुँह लेकर चले गये। इसके पश्चात् श्री प्रभु जी ने श्री ब्रह्मचारी जी को भी मौन रहकर कुछ एकान्त भ्रमण की आज्ञा दी। श्री ब्रह्मचारी जी श्री प्रभु जी के कृपामय चरण कमलों को छोड़ कर कहीं एकान्त में जाना पसन्द नहीं करते थे, किन्तु श्री प्रभु जी ने उनको एक विशेष कारण समझाते हुये कहा—बेटा इस समय तुम मौन होकर वहीं एकान्त में चले जाओ, कोई उज्ज्वल आत्मा आना चाहता है व वह तुम्हारे द्वारा आयेगा। तुम मौन होकर चले जाओ, इस स्थिति में जाते हुए जो तुम्हें बुलायेगा व भोजन आदि आदरपूर्वक करायेगा वह हमारा परम भक्त होगा। श्री प्रभु जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर श्री ब्रह्मचारी जी चले गये व ज्योंही वह अमृतसर से बाहर निकले तो देखा कि विरक्त वैष्णव महात्माओं की जमायत पड़ी है। श्री ब्रह्मचारी जी आगे बढ़े। विरक्त महात्मा बालकृष्ण दास ने इनको देखा व आदरपूर्वक अपने पास बुलाकर बैठाया, भोजन आदि कराया व पूछा कि तुम किसके शिष्य हो। हर समय मग्न रहते हो, यह क्या शक्ति है? श्री ब्रह्मचारी जी ने आनन्दकन्द परम करुणार्णव योग योगेश्वर श्री प्रभु जी का परिचय दिया।

मन में यह भी उत्कंठा बनी रहती थी उन्हें जगदम्बा कालिका के स्थूल दर्शन हों और अपनी अभीष्ट सिद्धि का कोई आशीर्वाद प्राप्त करें। किन्तु १८ दिन की कठिन तपश्चर्या और कठिन व्रत के बाद भी जगदम्बा के दर्शन उन्हें प्राप्त नहीं हुये। उन्होंने मन में विचारा कि यह सब भ्रान्ति की ही बातें हैं। इस प्रकार दर्शन किसको कहाँ होता है। किन्तु समय आया जब ब्रह्मचारी जी ने श्री प्रभुजी के चरण-कमलों का प्रसाद प्राप्त किया। और कलकत्ते में १८ दिन घोर अनशन व्रत के बाद भी जिनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, आज वही महामाया कालिका अनायास प्रगट हुई। वह ब्रह्मचारी जी के सामने आकर खड़ी हो गईं। उस समय श्री ब्रह्मचारी जी ऋषिकेश से ९ मील ऊपर ब्रह्मपुरी के जङ्गल में समाधिस्थ थे। समाधि से उनकी आँखें खुलीं और अकस्मात् सिंहवाहिनी जगदम्बा को सामने खड़ी देखा। उन्होंने अत्यन्त विनय से जगत-जननी को प्रणाम किया, जगदम्बा ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। श्री ब्रह्मचारी जी ने हाथ जोड़कर विनय की कि हे जगदम्बे! वर माँगने से पूर्व मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस समय घोर अनशन व्रत करके भी मुझे आपके दर्शन प्राप्त क्यों नहीं हुए और आज जबकि मेरे मन में कोई विचार भी नहीं था आपके दर्शन प्राप्त कर रहा हूं।

कृपा मेरे ऊपर सदैव बनी रहे और जीवन का उत्थान होता जाय। माता ने प्रसन्न होकर कहा—बेटा यह वस्तु तो उनकी कृपा से ही तुम्हें प्राप्त होगी, कोई और वर माँगो। घर, पुत्र, स्त्री, दुनिया में मान सम्मान जो भी तुम चाहते हो मैं तुम्हें दे दूँगी। ब्रह्मचारी जी ने कहा—माता, आपकी कृपा बनी रहे। जगदम्बा तथास्तु कहकर बड़ी तेजी के साथ चली गईं। ब्रह्मचारी जी ध्यान से उठकर कृपामय श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में आ गये और सम्पूर्ण घटना श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में निवेदन कर दी।

गुरु नानक देव के दर्शन और बलाकर्षक साधन की प्राप्ति

जी से कहा—इस साधन को तुम अपने गुरुदेवजी की आज्ञा से ही करना अन्यथा सफल नहीं हो सकोगे। गुरुनानक देव जी से उपदेश प्राप्त कर ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और आनन्दकन्द परम कल्याणघन श्री प्रभु जी के बिना पूछे ही बलाकर्षक प्राणायाम कर डाला। उस साधन के करने से उनके शरीर में अद्भुत बल का संचार हुआ, किन्तु वह उसको संभाल न सके। उनका शरीर फटने लगा। ब्रह्मचारी जी के मन में बड़ा दुःख हुआ और वह ठीक करने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु जब वह अपने प्रयत्न में सफल न हो सके तो फिर ध्यान मग्न होकर गुरुनानक देव की शरण ली और रक्षा की प्रार्थना की। गुरु नानक देव ने कहा—हमने तुमसे पहले ही कह दिया था कि श्री प्रभु जी की आज्ञा प्राप्त किये बिना यह साधन मत करना। परन्तु तुमने अनाधिकार चेष्टा की है, अब उन्हीं कृपानिधि की शरण में जाकर प्रार्थना करो, उन्हीं की कृपा से यह ठीक हो सकता है। गुरुनानक देव के कथनानुसार श्री ब्रह्मचारी जी समाधि से उठे और श्री करुणार्णव प्रभुजी की शरण में आकर प्रार्थना की व अपनी भूल पर पश्चाताप किया तब श्री कृपानाथ जी ने कृपाकर ब्रह्मचारी जी के शरीर पर मक्खन तथा कपूर मिलाकर मालिश कराई। इसके फलस्वरूप उनके शरीर में जो वायु कुपित हो गया था वह शान्त हो गया। इस उपद्रव के शान्त हो जाने पर ब्रह्मचारी जी ने अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा की अब कभी भी श्री प्रभु जी की आज्ञा के बिना कोई साधन नहीं करूँगा।

हुये थे। श्री वृन्दावन के सभी प्रधान मन्दिरों के दर्शन कर व कुञ्ज निकुञ्जों में घूम कर वे रात्रि के समय श्री यमुना जी की पावन बालुका में आकर सो जाया करते थे। रात्रि जागरण की महामहिमा कहीं-कहीं हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी ऊँचे शब्दों में वर्णित है। जन्माष्टमी व शिवरात्रि को तो प्रातः सारे भारतवर्ष में रात्रि जागरण की प्रथा चालू ही है। इसके अतिरिक्त श्री वृन्दावन, ऋषिकेश, हरिद्वार आदि में वास करने वाले प्रायः सभी भजनानन्दी महात्मा रात्रि में जगकर भजन ध्यान आदि का अभ्यास करना अधिकाधिक श्रेयस्कर समझते हैं व उन सबका अपना कार्यक्रम रात्रि स्मरण का ही अधिकतर रहता भी है। श्री ब्रह्मचारी जी श्रीकृष्ण प्रेम में विभोर रहा करते थे किन्तु रात्रि जागरण का कोई विशेष ध्यान नहीं था। वह समझते थे वो घटघटवासी जो प्रेरणा करेंगे वह सब स्वतः होती ही रहेगा। वही हुआ। एक दिन जब कि वे यमुना जी की पवित्र बालुका में सो रहे थे, स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने उनको जगाकर कहा कि तू यहाँ आकर भी रात को सोता है, यहाँ आकर रात को नहीं सोना चाहिये। अपने जीवन सर्वस्व की आज्ञा पाकर श्री ब्रह्मचारी जाग उठे व कुछ समय टहल कर ध्यानस्थ हो गये। उसी दिन भगवान श्रीकृष्ण ने उनको ध्यानावस्था में रात्रि जागरण का विशेष महात्म्य बतलाया। उसी दिन से श्री ब्रह्मचारी जी श्री वृन्दावन वास करते हुए नित्य-नियम से रात्रि जागरण करने लगे। श्री वृन्दावन में रहकर रात्रि जागरण करने से उनको बड़े-बड़े दिव्य अनुभव हुए व उसी दिन से रात्रि जागरण करना उनके जीवन का अङ्ग बन गया। श्री ब्रह्मचारी जी दिन में भगवन्नाम संकीर्तन करते रहते व रात्रि में ध्यान मग्न रहा करते थे, उन्होंने निद्रा पर पूरा-पूरा अधिकार पा लिया था। उनकी निद्रा योग निद्रा बन गई थी।

परिचय ज्ञान और साधनों की प्राप्ति

श्री ब्रह्मचारी जी की समाधि की निर्मलता दिन प्रति दिन बढ़ती गई और उनको परिचित ज्ञान की बहुत बड़ी योग्यता प्राप्त हो गई। उनका स्वभाव था कि वह जिस वन या प्रदेश में जाते वहाँ समाधि संयम के द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया करते कि इस प्रदेश में कहाँ कौन सा किस कोटि का महात्मा है इसके साथ वह यह भी जान लिया करते कि इसमें कौन सी विशेष शक्ति है। यह जान लेने के पश्चात् उससे शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते थे। किसी भी व्यक्ति के चित्त के भावों को जान लेने के लिए हमें दो उपाय करने पड़ते हैं। उनमें प्रथम—साधारण स्थिति में जिस समय व्यक्ति समाधिस्थ हो तो दूसरे के चित्त के भावों को अपने इष्ट देव से पूछ ले। दूसरा - यदि हमारा संयम परिपक्व हो चुका हो तो दूसरे के चित्त में संयम करने से उनके चित्त का ज्ञान हो जाया करता है। श्री ब्रह्मचारी जी ने इसी उपाय से अन्यान्य योगियों से साधन ग्रहण किए। उन्होंने एक बार भगवान की परम भक्ता भिलनी से आकर्षक प्राणायाम सीखा था। वह आकर्षक प्राणायाम गुरु और ईश्वर के प्रति भी किया जा सकता है। एक बार ब्रह्मचारी जी ऋषिकेश की झाड़ियों में ध्यान में बैठे और उन्होंने अपनी ध्यान स्थिति में देखा, उन दिनों ऋषिकेश की

हुई व अपने स्वभाव के अनुसार पहले उन्होंने समाधि द्वारा उनके चित्त को जानने का प्रयत्न किया। किन्तु महात्मा श्री केशवानन्द अवधूत की शक्ति उत्कृष्ट थी। उन्होंने उनको अपने चित्त में प्रवेश नहीं करने दिया। ब्रह्मचारी जी अपने साधन में विफल रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल श्री ब्रम्हचारी जी पुनः अवधूत के पास गए और उनसे वह मन्त्र पूछा। अवधूत जी ने वह मंत्र तो बतला दिया किन्तु विमन भाव से कहा—इतने ऊँचे योगीराज योगेश्वर की शरण जाने पर भी तुम इधर-उधर भटकते हो, उनसे अधिक तुम्हें कोई क्या देगा, ऐसे सिद्ध योगिराज तो कभी भी हिमालय को नहीं छोड़ते। तुम्हें अनायास उनके चरण-कमल प्राप्त हो गए हैं फिर भी तुम भटक रहे हो। इस प्रकार उपदेश देकर अवधूत जी ने ब्रम्हचारी जी को श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में भेज दिया।

देहावसान के समय मछली के तेल में लगा रहा था उसी भावना के कारण इसका जन्म मछियारे के घर में हुआ। ब्रम्हचारी जी ने समाधि अवस्था में ही अपनी माता की सद्गति के लिए श्री प्रभु जी से प्रार्थना की और उनको सद्गति दिखलाई। ध्यान उठने के बाद ब्रम्हचारी जीने अपनी बड़ी सहोदरीबहन रुक्मिणी देवी से पूछा उनकी माता की मृत्यु कैसे हुई थी तो उन्होंने बताया कि माता जी के पेट में अफाश (पेट फूला) था। बहुत उपचार कराये थे किन्तु किसी से उनके पेट को आराम नहीं हुआ। उनके इस रोग को ठीक करने के लिए किसी डाक्टर ने मछली के तेल का उपयोग बतलाया था। किन्तु उस समय वह उपलब्ध नहीं हो सका व उनका देहावसान हो गया। अपनी माता जी की यह गति देख व कारण का ज्ञान होने पर श्री ब्रम्हचारी जी को गीता का यह श्लोक स्मरण हो आया—

मुख पर डाल ले। यह कह श्री प्रभु जी ने अपने दाहिने पग के अँगूठे से पृथ्वी को दबाया। अंगूठे से दबाते ही पृथ्वी फटी और पत्थर निकलने लगे। श्री प्रभु जी अन्दर बैठने लगे। साथ ही मैं भी अन्दर धँसने लगा। इसके बाद पुनः दलदल का स्थान आया किन्तु श्री प्रभु जी का पग पड़ते ही वह गन्तव्य स्थान खाली हो गया। दलदल निकलने के बाद पुनः जलते हुये कोयले निकले। किन्तु मुझको कुछ भी गर्मी उस वस्त्र के कारण प्रतीत नहीं हुई। इसके पश्चात् रक्तकी अगम नदी आई। उस नदी के मध्य अनेक मनुष्य तड़प रहे थे। पक्षी उनको नोंच-नोच कर खा रहे थे इसके पश्चात् पीप और राध की नदी बहती नजर आई। उस नदी में भी अनेक मनुष्य उसी प्रकार से तड़प रहे थे। इसके पश्चात् दन्त और नख धारी राक्षस पापियों को दंड दे रहे थे, और इस स्थान में अग्नि जल रही थी। लाल संतप्त लोहे के दन्ड धारण करके पापी मनुष्यों को वे लोग दन्डित कर रहे थे। इसके पश्चात

ध्यान से रोगी का निदान

एक दिन मेरे पास एक रोगी आया उसका निदान मुझसे नहीं लगा। मैंने ध्यान में बैठकर श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि प्रभो बतलाइए यह क्या रोग है। श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि इसका जन्म वर्षा ऋतु के श्रावण मास में प्रातःकाल हुआ था। तब दाई नहीं थी और यह करवट से ठन्डी जमीन में गिर गया था। उसी समय का यह शीत है, इसी से इसको यह दर्द हो जाता है और इसको सुजाक के कारण यह सब दुर्बलता हो रोगी से यह सब बृत्त कहा तो वह अतिविस्मित हुआ।

दया और न्याय

एक दिन मैं महाभारत की कथा कह रह था कि एक भक्त ने पूँछा कि युधिष्ठिर ने जो यह प्रश्न मार्कण्डेय ऋषि से पूछा कि ईश्वर में न्यायकारी और दयालु ये दोनों गुण कैसे रहते हैं? यदि दया करता है तो न्याय नहीं कर सकता और यदि न्याय करता है तो दया नहीं हो सकती, इसलिए उन्होंने जो उत्तर दिया है वह मेरी समझ में नहीं आया, आप इसका उत्तर दीजिए। तो मैं भी उस समय इसका उत्तर नहीं दे सका। मैं इसी विचार में था कि एक दिन श्री प्रभु जी के ध्यान में दर्शन हुये तो प्रभु जी कहते हैं कि लोक परलोक हितकारी पुस्तक में जो एक तपस्वी महात्मा का दृष्टांत आया है, उसमें इस प्रश्न का उत्तर आ गया है। यह आज्ञा पाकर वह दृष्टांत इस प्रकार से मैंने कह सुनाया कि एक महात्मा ने एक पर्वत की शिला पर बैठकर एक हजार वर्ष तक तपस्या की। तपश्चर्या के बाद आकाशवाणी हुई कि बोल तू दया चाहता है या न्याय? महात्मा ने कहा कि मैं न्याय चाहता हूँ। इस पर आकाशवाणी हुई कि

यदि न्याय चाहता है तो जिस पर्वत की शिला पर बैठकर हजार वर्ष तक तूने तप किया है, अब उसको सिर पर रख कर एक हजार वर्ष तक फिर तप करो। तब इसके फल का अधिकारी होगा। इतना सुनकर महात्मा त्राहि माँ त्राहि माँ करने लगा। फिर उसे भगवान ने स्वधाम में बुला लिया। इतना सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो गए व ईश्वर का दयालु न्यायकारी स्वरूप समझ में आ गया।

परम गुरु सदा शिव के दर्शन

एक दिन ध्यान में मैंने श्री प्रभुजी से पूछा कि प्रभो ! कृपाकर अपने गुरु महाराज के दर्शन कराइए। बस फिर क्या था सहसा नैपाल वासी महाप्रभु सदाशिव के दर्शन होने लगे। कोटि सूर्य समान महान् प्रकाश था। दृष्टि स्थिर होनी मुश्किल हो गई। शरीर में कम्प होने लगा। तब मैंने प्रार्थना की कि हे दीनबन्धु ! मैं आपके तेज को कैसे सहन कर सकता हूँ। जब ब्रह्मा विष्णु और महेश आपकी स्तुति करते हैं। तब श्री प्रभु जी के हृदय में वही प्रकाशमय स्वरूप दीखने लगा। सूर्य की किरणों के समान चक्षुओं के परम पटल (अर्थात् भवें) दीखने लगे। पुनः वाणी हुई कि मेरी शक्ति इसके द्वारा संसार में जिज्ञासु समुदाय को ज्ञानमार्ग में प्रवृत्त करायेगी जो कि योग द्वारा प्राप्त होता है। तथा आस्तिक, नास्तिक सभी के कल्याण का कारण बनेगी।

तो ऐसा नहीं मालूम होता। श्रीप्रभुजी ने कहा कि जो तुम तख्त खरीदना चाहते हो वह तख्त उसी का है और वह दूसरे का नाम रख तुमसे अधिक दाम वसूल करना चाहता है। मैंने कहा प्रभो यदि वह ऐसा करना चाहता है तो कैसे परीक्षा करूँ ? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि यह कौन सी बड़ी बात है ? जब इसका पिता तुम्हारे पास दवाई लेने को आये तब तुम उससे कहना कि जो तख्त सेठ जयनारायण के यहाँ रखा हुआ है और जिसमें बीच के तख्ते में छेद है, क्या वह तुम्हारा है ? तब वह कहेगा कि हाँ वह हमारा है। तब तुम कहना कि तख्त का दाम क्या है ? तब वह कहेगा कि तख्त की बाबत हरिश्चन्द्र से ही पूछना मैंने कहा कि यदि यह वार्ता सत्य हुई तो मैं भी उसको वैद्य तथा ... से छल करने का वह परिणाम दिखाऊँगा, जो वह जन्म याद रखे और पश्चाताप करे। प्रभु जी ने मेरे इन विचारों को जानकर कहा कि, तुम्हारा यह कर्तव्य कदापि नहीं है तुमको संत-वृत्ति धारण करनी चाहिये। तुम पर अत्यन्त कठोर प्रहार भी करे तो भी तुमको उस पर दया ही करनी चाहिये। पुत्र तीन बार, मित्र दो बार, और शिष्य अनेक बार क्षम्य होता है। उसको उसका दोष दिखलाकर क्षमा करना ही तुम्हारी शोभा है। जिससे पुनः ऐसा न करे, और उसको कपूर २ रत्ती तक खिलाओ। इससे उसका शुक्र दोष शान्त हो जायगा। मैं इसके बाद में ध्यान से उठ बैठा व दुकान पर जाकर बैठा ही था कि हरिश्चन्द्र का पिता दवाई लेने आया व मैंने तख्त के बारे में श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार पूछा तो श्री प्रभु जी के कथनानुसार ही उसने उत्तर दिया। तब मेरे मन को निश्चय हो गया कि अवश्य हरिश्चन्द्र ने छल किया है। क्रोध तो उसके प्रति बहुत आया, किन्तु श्री प्रभु जी की आज्ञा नहीं थी। पुनः हरिश्चन्द्र के दुकान पर आने पर मैंने अपनी अनुमति बतलाई तो उसने भी स्वीकार

तेजोहीन कर रहा था। उनके दक्षिण पार्श्व में चार गौर वर्ण बालक पीताम्बर धारण किये बैठे थे। उनका तेज चन्द्रमा के समान शान्तिदायी था। श्री प्रभु जी ने करुणामय नेत्रों से ऊपर को देखा। बस नाना प्रकार के शब्द आने लगे। तरह-तरह के नाद और वाद्य सुनाई देने लगे। अप्सरा गन्धर्व नृत्य गान करते हुये दिखाई पड़े। श्री प्रभु जी अपनी प्रेम दृष्टि से सबको पुलकित कर रहे थे। श्री प्रभु जी ने सामने दृष्टि डाली तो वीणा बजाते-बजाते चतुर्विध भक्ति के अधिकारी नारद जी दिखाई पड़े। श्री नारद जी आनन्द मग्न अवस्था में थे। समीप आने पर उन्होंने श्री प्रभु जी के चरण कमलों में दण्डवत की। श्री प्रभु जी ने कहा : कहो नारद इस समय कैसे आना हुआ। नारद जी कहने लगे, प्रभो! एक शंका उत्पन्न हुई है। कहो नारद! मुझे तुम्हारी शंका बहुत प्यारी लगती है। नारद ने कहा : भगवन आपने अनेक कथाओं में अनेक भक्ति रहस्य भरे हैं। फिर भी यह संदेह हो रहा है कि आपके श्री चरण कमलों का रस प्राप्त करके जिनका संसार से सम्बन्ध छूट जाता है, वे पुरुष कैसे होते

दर्शन मात्र से मेरे स्वरूप का आभास करने लगते हैं उनको सायुज्य मोक्ष पद प्राप्त होता है। जो श्री गुरु चरणों में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को लीन कर देता है वह मेरे स्वरूप को धारण करके केवल पद का अधिकारी होता है। यह सुनकर नारद जी ने कृतकृत्य होकर प्रणाम किया।

मानसरोवर दर्शन

श्री प्रभुजी कुछ मुस्कराकर मुझसे कहने लगे यदि नहाना चाहते हो तो स्नान कर आओ। मैंने स्नान-इच्छा प्रकट की। तो श्री प्रभु जी ने द्वारपालों को इशारा किया। (फिर उन दोनों के साथ मैं जाने लगा।) इधर-उधर वो दोनों जा रहे थे। मैं भी खूब तेजी से चल रहा था। किन्तु आश्चर्य यह था कि पैरों से भूमि स्पर्श करती मालूम नहीं पड़ती थी। चलते चलते सामने एक रास्ता आया। उन दोनों द्वारपालों में से एक बोला—इसने कौन सा ऐसा पुण्य किया है जो यहाँ आया है ? दूसरा बोला : पूछ लो। पहले ने पूछा तुमने कौन से पुण्य कर्म किये जो यहाँ आये हो। मैंने कहा—भाई, मैं पाप-पुण्य नहीं जानता। दूसरा बोला : यह पागल है, जो पाप-पुण्य दोनों कहता है। पुण्य तो यहाँ आने का कारण हो सकता है, किन्तु पाप कैसे हो सकता है ? पहला बोला : नहीं, पागल नहीं है। यह कोई गुप्त धर्मात्मा है, जो यहाँ आया है। दूसरा बोला : इससे अब ज्यादा कुछ न कहो। कुछ दूर चलने के बाद एक तालाब दिखने लगा। जिसके घाट मणि जटित थे। मणियां

होते थे। वे दोनों द्वारपाल कहने लगे : तुम तालाब के समीप न जाओ। वहाँ देव कन्यायें स्नान करने आयेंगीं। मैंने ध्यान करके श्री प्रभुजी से पूछा : भगवन्! यह मुझको मना करते हैं। और मेरा चित्त हँस क्रीड़ा देखना चाहता है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि जितना कुछ देख सके देख, इनका डर मत कर। फिर मैंने उनकी बातें न सुनी। उनमें से एक बोला : इससे ज्यादा न कहो। यह कहीं वहाँ जाकर न कह दे। तब वे चुप हो गये। देव कन्या स्नान करने आयीं और अपने पैरों से जल भर-भर अपने ऊपर डालकर स्नान करने लगीं। उनका शरीर दिव्य आभूषणों से देदीप्यमान हो रहा था। उनको देखकर मैंने मन ही मन प्रणाम किया। थोड़ी देर बाद ही हंस भी मोती खाकर तृप्त हो गये वे सब एक स्वर से शब्द करने लगे। उनका शब्द दीर्घनादक था। वह 'ओ३म' की ध्वनि से पूर्ण था। [illegible]स [illegible]ब्द को सुनकर मन की चंचलता तथा संकल्प-विकल्प दूर हो गये। फिर मैं स्नान करने के लिये फव्वारे के नीचे खड़ा हो गया। जो उस मानसरोवर में से छूट रहा था। स्नान करने के बाद शरीर हल्का हो गया और वहाँ की सृष्टि दिखने लगी। चारों ओर अति रमणीक बाग थे। उन बागों के पुष्प अत्यन्त सुगन्धित स्वर्ण की आभा से युक्त थे। उस तालाब में हँस क्रीड़ा

बजने लगे। गन्धर्व-अप्सरा गायन और नृत्य करते हुये परिक्रमा करने लगे। मैं उस आश्चर्य को देख रहा था। आरती होने के बाद सब देवता विसर्जित हुये श्री प्रभुजी कहने लगे : इन दोनों ने तुमको कुछ कहा तो नहीं ? वह दोनों मेरी ओर दीन भाव से देखने लगे। मैंने कहा : नहीं प्रभो, मुझसे ऐसा कोई शब्द नहीं कहा, जिससे कि कष्ट पहुँचे। तब श्री प्रभु जी ने कहा : तुम यहाँ रहना चाहते हो या जाना चाहते हो। मन्द बुद्धि के कारण मेरे मुख से निकला, जाना चाहता हूँ। हम लोग चल दिये। रास्ते में मैंने कहा : हे प्रभो ! आपने कहा था कि लौटते समय गन्धर्वों और सिद्धों का स्थान दिखलायेंगे। श्री प्रभुजी ने कहा : चलो पहले गन्धर्वों का स्थान देखो। गन्धर्व और गन्धर्विणी मिलकर स्नान कर रहे थे। मैं उनकी क्रीड़ा देखने लगा। श्री प्रभुजी गुप्त हो गये। ध्यान किया तो ध्यान में श्री प्रभुजी ने कहा : या तो नाच ही देख ले या मुझे ही देख ले। मैंने कहा : चलिए, मैं नाच नहीं देखना चाहता। पुनः अलकापुरी का किला दिखाया। उसमें वह स्वच्छोद सरोवर दिखलाया, जिसमें से एक धार भागीरथ जी ले गये। जिसको भागीरथी कहते हैं। दूसरी धार केदारनाथ जी को गई थी, जिसे मन्दाकिनी कहते हैं। तीसरी धार अलकापुरी से निकलकर बदरीनारायण को

छोड़ कर भय तथा क्रोध से भाग गया। तेरी स्त्री अपनी माता के घर चली गई। और हाथ की तकलीफ से उसकी मृत्यु हो गई। इसके दंड स्वरूप हाथ को कट कर तुझे मृत्यु को प्राप्त होना था। उसी का फल तुझे इतने में भुगता दिया। क्योंकि इस समय तू प्रभु की शरण में है व विवेक ख्याति की ओर बढ़ रहा है। श्री प्रभजी की परम कृपा का अनुभव कर मैं ध्यान से उठ गया व उन कृपामय चरण कमलों से लिपट गया।

भगवान श्री कृष्ण के दर्शन व आकर्षण विद्या का ज्ञान

एक दिन श्री प्रभुजी ने बातों-बातों में कहा कि भगवान का कृष्ण नाम कृष्ण इसलिये पड़ा कि उसमें आकर्षण शक्ति अधिक थी। इसलिये इस विद्या को भगवन कृष्ण से ही क्यों न पूछा जाय? ऐसा संकल्प मन में हो गया। इसके पश्चात् कुछ देर बाद अनायास ही श्री प्रभुजी ने मुझे अन्तमुंख करके ध्यान मग्न कर दिया। मन में भगवान श्री कृष्ण के दर्शन का संकल्प फिर आया: संकल्प उदय होते ही भगवान श्री कृष्ण के दर्शन हुए। उन्होंने प्रसन्नता से कहा, कहो पुत्र क्या शंका है? मैंने कहा प्रभो आप आकर्षण विद्या के ज्ञाता हैं। अतः कृपा कर आकर्षण विद्या बतलाइये। उन्होंने कहा सुनो: हर प्राणी के नासिका रन्ध्रों से श्वास धारा के साथ तेजोमय परमाणु निकलते हैं। ये परमाणु जिसका जितना आत्मोत्थान हो चुका हो, उतने ही अधिक चमकीले व बलिष्ठ होते हैं। व केवल मात्र दिव्य दृष्टि (ध्यान दृष्टि) से ही देखे जा सकते हैं। ध्यानावस्था में अपने दिव्य तेजस्वी परमाणुओं से जिस किसी के भी दुर्बल परमाणुओं को खैंच कर आकर्षित किया जा सकता है, परन्तु अपने से तेजस्वी पर यह आकर्षण नहीं चलता।

शिवरी के दर्शन व मूर्च्छा कुम्भक का ज्ञान

एक बार अन्तर्मुख हुआ तो श्री प्रभुजी का दर्शन हुआ। श्री प्रभुजी ने पूछा क्या देखना चाहता है ? मैंने प्रार्थना की प्रभो ! कर्म और प्रारब्ध में कौन बलवान है ? श्री प्रभुजी ने कहा कि उद्धव जी इसका उत्तर दिलवाते हैं। इतने में ही उद्धव जी भी आ गये। उन्होंने कहा : यह प्रश्न शिव भगवान से करना चाहिए। इतने में ही भगवान शङ्कर के दर्शन हुए। इसी बीच में, मैं अपने प्रश्न को भूल गया व शबरी के प्रेम के स्वरूप को देखने की इच्छा मन में हुई व मैं शबरी के आश्रम में पहुँच गया। वहाँ शबरी एक झोपड़ी में ध्यान मग्न बैठी थी। प्रभु जी ने मुझसे कहा : इसके नेत्रों पर लक्ष्य करो। मैं उसकी ओर देखने लगा। थोड़ी देर बाद वह डाली उठा कर बाग की ओर चल दी। पेड़ों पर मीठे बेर लगे थे। वह हर एक पर टकटकी लगा कर देखती थी। किन्तु सब बेर सुन्दर व पके दीखते थे। मैंने श्री प्रभुजी से पूछा : प्रभो यह क्या देखती है ? श्री प्रभुजी ने कहा : चलो इसके हृदय के अन्दर चलें। यह कहते ही मैं व श्री प्रभुजी उसके हृदय पट पर जाकर उसकी आकांक्षा को देखने लगे। वह जिस बेर पर नजर डालती थी उस पर यदि राम के दर्शन होते थे तो उसको चख कर देखती थी। जिसमें श्री राम के दर्शन नहीं होते थे उसको नहीं तोड़ती थी कुछ ही देर में वह बेरों का संग्रह करके कुटिया में आकर ध्यान मग्न हो गई व एक लम्बा श्वास खींचा। मैंने श्री प्रभुजी से पूछा कि इसने यह क्या किया ? श्री प्रभु जी ने मुझे बतलाया कि इसी को मूर्च्छा कुम्भक कहते हैं। यह आकर्षण गुरु व ईश्वर पर भी किया जा सकता है। इतने में ही देखा कि शबरी के श्वास प्रश्वासों में हृदय व रोम-रोम में

गुरु भक्तों की गति

एक दिन श्री प्रभु जी ने मुझे ध्यान में बैठाया तो श्री प्रभु जी कृष्ण स्वरूप में सामने प्रकट हुये; चक्राकार श्री प्रभु जी का प्रकाश फैल रहा था। मैंने श्री प्रभुजी से प्रश्न किया कि जो व्यक्ति इस मार्ग के साधन सम्पन्न होते हैं उनकी मृत्यु किस प्रकार होती है ? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि ऐसे भक्तों की तीन श्रेणी होती हैं। प्रथम, वह जो गुरु को अपना आधार समझते है तथा उनमें ही विश्वास होता है। उनमें न ध्यान व योग की सामर्थ्य होती है और न किसी प्रकार का विचार होता है। द्वितीय, वह जो गुरु को अपना कर्त्ता-धर्त्ता समझते हैं तथा पुण्य फल के दाता व सब प्रकार के रक्षक, हर समय संग रहने वाले समझते हुये धारणा करते हैं तथा योग भ्रष्ट हो जाते हैं। तृतीय, वह जो अपने तन मन व धन को अपना समझते ही नहीं हैं। सब कुछ गुरु के अर्पण कर देते हैं। उन्हें संसार के किसी भी पदार्थ से सुख दुःख नहीं होता। वह योग में पूर्ण होते हैं। जो प्रथम अवस्था के विश्वासी धारणा किये हुये हैं उनका मृत्यु अवस्था का स्वरूप देख। इतना कहकर ध्यान अवस्था में ही काशी में एक मकान देखने में आया। वहाँ पर एक व्यक्ति मरणासन्न दिखाई पड़ा। श्री प्रभुजी ने कहा: इसके अन्दर प्रवेश करो। अन्दर प्रवेश करके देखा कि नाभि से प्राण उठकर हृदय में आये। हृदय से कण्ठ में व कण्ठ से नेत्रों द्वारा बाहर निकल गये। तब श्री प्रभुजी ने कहा कि यह भगवान बुद्ध का शिष्य था। अब इसके सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करके देखो। जब मैंने उसके सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया तो उसके सूक्ष्म शरीर के सामने बुद्ध भगवान का स्वरूप था और उस स्वरूप के ऊपर उसकी दृष्टि

दो। उस स्त्री ने राजा को मार दिया। राजकुमार को एक गुप्त चर ने सब हाल सुना दिया। राजकुमार ने अपने ननिहाल में रह कर समय बिताया। बड़ा हो जाने पर उसने निश्चय किया कि पहले अपराधी की जाँच की जाय। राजकुमार के मन्त्री ने सलाह दी कि एक ऐसा नाटक खेला जाय कि उसमें यही घटना पूर्ण रूप से दिखाई जाय तथा इस घटना को वजीर तथा रानी देखें। तब तुमको ऐसा निश्चय हो जायेगा। वजीर की सलाह के अनुसार उक्त नाटक उसी नगर में खेला गया; और वजीर व रानी ने भी उस नाटक को देखा। जिस समय नाटक की पात्री रानी ने विष का प्याला राजा को दिया तब भय और संकोच की छाया रानी पर पड़ी। उस समय सभा में बैठी हुई रानी के चेहरे पर भी भय व संकोच की छाया दौड़ गई। इसको देखकर राजा कुमार ने निश्चय किया कि रानी ही अपराधिनी है। श्री प्रभु जी ने कहा कि इसी प्रकार हमारी शक्ति जमे हुये व दबे हुये बीज रूप सस्कारों को उखाड़ कर पश्चात्ताप रूपी अग्नि से जलाकर नाश कर देती है।

: प्रकाशक :
योग प्रशिक्षण केन्द्र
श्री सिद्ध गुफा
म० पो० सवांई, आगरा ।

मूल्य : एक रु० पचपत्तर पैसे

: मुद्रक :
कल्याण प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

विषय सूची

भूमिका

श्री सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज के पवित्र चरणारविन्दों में आने के पश्चात् ज्यों-ज्यों योग-विद्या की महत्ता का ज्ञान मुझे हुआ, तब से ही संसार में योग-प्रचार करने के भाव मेरे मन में विद्यमान रहा करते थे। परम कृपानिधि जी के असीम अनुग्रह से मेरी यह इच्छा अब पूर्ण हो ही रही है। जिन लोगों ने उन योगयोगेश्वर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरण-कमलों का सान्निध्य प्राप्त किया है, वे सब परम पुण्यशाली हैं। परन्तु जो प्राणी उस महान शक्ति के केन्द्र परम प्रभु के स्थूल दर्शनों से वंचित रहे हैं तथा उनके लीला-काल के वसर पर उपस्थित नहीं थे, उन लोगों को भी किसी प्रकार उन श्रीप्रभुजी की दिव्य एवं चमत्कारिक लीलाओं का परिचय मिल सके—ऐसी तीव्र लगन भी मेरे मन में रहा करती है। श्रीप्रभुजी के लोक-कल्याण कारक पावन चरित्रों को, जिन्हें मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है, लेखनी बद्ध करके लोक के सम्मुख लाने का मेरा यह तृतीय प्रयास है। इस प्रयास का प्रथम पुष्प 'ब्रह्मचारी गोपालानन्द के ध्यानानुभव'' और द्वितीय पुष्प ''सवांई के चमत्कारिक चरित्र'' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इन प्रयासों का उद्देश्य है कि जनसाधारण उन पावन चरित्रों को पढ़कर पवित्र योग-मार्ग की ओर प्रवृत्त हो सके एवं योगियों की अद्भुत शक्तियों का कुछ परिचय पा सके। प्रस्तुत पुस्तक में

भुजी की पूर्ण कृपा के प्रतीक आठ सन्तों की सत्य एं
यथार्थ कथाएं लेखनी-बद्ध की गई हैं । यह कथाएं इतर्न
अद्भुत हैं कि पाठकों को आश्चर्य होना असम्भव नहीं । पाठकं
तो यहाँ तक शंका हो सकती है कि इस घोर कलिकाल मे
ऐसा होना सम्भव ही नहीं हो सकता । किन्तु निस्सन्देह यह
कथाएं काल्पनिक नहीं अपितु मेरी नेत्रों की स्वयंदृष्ट घटनाएं हैं।
सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर आनन्दकन्द श्रीप्रभुजी महाराज के
सच्चे जीवन-इतिहास का यह एक अंश है । इस प्रकार के अनेकों
प्राणी उनके असीम अनुग्रह से कृतकृत्य हो गए हैं और हो रहे
हैं; जिनके विषय में कई बार पता भी नहीं चल पाता है और
वे परम विरक्त-भाव से हिमालय की कन्दराओं में बैठे रहते
हैं ।

इन कथाओं को पढ़ने से पूर्व पाठकों को योग-सिद्धान्तों का
परिचय प्राप्त करके अपने मन में इन सिद्धान्तों की सत्यता एवं
अकाट्यता को ले आना परमावश्यक है। तब ऐसी अद्भुत
लीलाओं का वर्णन उनके मन को शंकित नहीं कर सकेगा।
योग विद्या के अभ्यास के द्वारा हम कितनी बड़ी-बड़ी शक्तियों
को प्राप्त कर सकते हैं और एक पूर्ण योगी की कितनी बड़ी
सामर्थ्य हो सकती है—इन सबका परिचय इन कथाओं को पढ़
कर साधारण पाठक भी प्राप्त कर सकेगा ।

पाठकों को शंका हो सकती है कि ऐसे सामर्थ्यवान् सिद्ध
योगिराज किस प्रकार भू-मंडल पर अवतरित हो गए ? जगदात्मा
भगवान् श्री कृष्ण जी ने गीता में स्वयं अपने मुखारविन्द से
संसार में अपने अवतार धारण करने के तीन प्रयोजन बताए
हैं। पहिला "परित्राणाय साधूनाम्" दूसरा "विनाशाय च
दुष्कृताम्" और तीसरा प्रयोजन "धर्म संस्थापनार्थाय" है।

हिमालय में रहने वाले परम योगाचार्यगण सर्व समर्थ परन्तु अनन्त दयानिधान एवं प्राणिमात्र का सदैव हित चाहने वाले महासिद्ध होते हैं। उन्हें संसार में जन्म-धारण करने की कोई बाध्यता नहीं होती, संसार से कुछ लेने का भी प्रयोजन नहीं होता और न कर्म करने या न करने का ही कोई बन्धन होता है। किन्तु धर्म की स्थापना हेतु उन्हीं महापुरुषों में से कोई-कोई बिरले सन्त जगत्-कल्याण-तरु बन कर आ ही जाया करते हैं और उनकी वरद शीतल छाया में अनेकों प्राणी तीनों तापों से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाते हैं।

हमारे सद्गुरुदेव आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सिद्धाश्रम में वास करने वाले हिमालय के सिद्धों में से एक हैं। जिन्होंने सुख-दुख, जीवन-मरण के द्वन्दों में फँस कर कुलबुलाते हुए प्राणियों को देखा और परम करुणार्णव रूप बनाकर उनके दुःखों की निवृत्ति के लिए इस भूतल को कुछ काल के लिए सुशोभित किया था। यहाँ आकर लुप्त प्रायः योग विद्या का उच्चतम प्रचार करना ही जिनका उद्देश्य था। उन ही जन-हित-रत दीन बन्धु जी के यह पावन चरित्र हैं। आशा है इस पुस्तक के सभी पाठक अपने को योग-निष्ठ बनाने का प्रयत्न करेंगे। जिन्होंने परम पवित्र योग-मार्ग का अवलम्बन ले लिया है, समझना चाहिए कि उन्होंने कल्याण के अमृत-स्त्रोत को पा लिया है। योग मार्ग से बढ़ कर श्रेष्ठतम मार्ग अन्य नहीं हैं। विश्वात्मा भगवान् श्री कृष्ण जी ने भी "जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्माति वर्तते" कह कर योग की सर्वोत्कृष्टता को पूर्णरूपेण सिद्ध कर दिया है। अर्थात् जो योग के सच्चे जिज्ञासु भी बनेंगे, उन सब की स्थिति अन्य सभी कर्मकाण्ड करने वाले भक्तों से उच्च रहेगी। अतः परम श्रेयस को प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्यों को

योग-मार्ग की ओर प्रवृत्त होना ही चाहिए। इन कथाओं का पठन करने वाले भक्तों के मन में आनन्द कन्द श्री प्रभुजी के चरण कमलों के प्रति निष्ठा और भी दृढ़ होगी और वे सब प्रकार से कल्याण को प्राप्त करेंगे।

आत्मसाक्षात्कार करना। हमारे पूर्व आचार्यों ने योग-विद्या की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए यह शब्द कहे हैं—

यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति।

अर्थात् जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना जाता है। इस महती विद्या के सकल ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए योगाचार्यों ने दो मार्गों का वर्णन किया है। उनमें से एक मार्ग औपनिषदिक सिद्धान्त का है जिसका वर्णन भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में इस प्रकार कहा है—

इन्द्रियाणि पराण्याहु इन्द्रियेभ्यो परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ श्री०भ०गी० अ० ३।४२

अर्थात् योगी पहिले अपनी इन्द्रियों का साक्षात्कार करे, फिर मन का करे, उसके बाद बुद्धि का साक्षात्कार और तदनन्तर आत्मसाक्षात्कार करे। किन्तु इस मार्ग में थोड़ी सी कठिनता है क्योंकि इन्द्रियों के सूक्ष्म धर्मों को समझना कठिन है। उससे भी बढ़कर मन और बुद्धि को समझना तो और भी कठिन है। और आत्म-साक्षात्कार तो उससे भी बहुत आगे की वस्तु है। दूसरा मार्ग सर्वसाधारण के कल्याणार्थ हमारे आचार्यों ने वह बताया जिस पर चलने से हर व्यक्ति अपना कल्याण कर ही सकता है। इस मार्ग का संकेत योगाचार्य भगवान् पांतजलि महाराज ने ,'वीतराग विषयं वा चित्तम्" कह कर किया है। अर्थात् वीतराग पुरुषों को हम अपना ध्येय बनाकर उनके मन में अपना मन, उनके चित्त में अपना चित्त, उनकी बुद्धि में अपनी बुद्धि और उनके अहंकार में अपना अहंकार विलीन कर दें तो थोड़े समय में ही समाधि-लाभ कर सकते हैं। उस स्थिति में उनकी उपार्जित सिद्धियाँ हमारी अपनी होंगी और कालान्तर

में उनके स्वरूप में लय होकर हम कैवल्य-भाव को भी अवश्य प्राप्त हो जायेंगे ।

अवधूत श्री कृपालानन्द जी इस दूसरे मार्ग के ही अनुयायी थे । उनके ध्येय थे भगवान् सदाशिव, अतः वह शिवलीन रहा करते थे । उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार अवधूत श्री कृपालानन्द जी अपने मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार को भगवान सदाशिव के मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार में विलीन किये रहा करते थे । भगवान शिव में लीनता के कारण अवधूत कृपालानन्द जी को भगवान सदाशिव की शक्तियाँ हर समय प्राप्त थीं । युक्त योगी होने के कारण उस वन में रहने वाले अन्य सभी महात्मा उनका अत्यन्त सम्मान करते थे । वह परम विरक्त-भाव से अवधूत वृत्ति में विचरा करते थे ।

उन्हीं दिनों मसूरी के वनों में घूमते हुए एक अंग्रेज दम्पत्ति आए । वहाँ एक साधना-लीन महात्मा के दर्शन होने से उस अंग्रेज स्त्री के हृदय में भी वैसी साधना कर ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा जागृत हो गयी । उस स्त्री ने महात्मा जी के चरण पकड़ कर उस मार्ग का उपदेश करने की प्रार्थना की । महात्मा जी योगबल से समझ गए कि इसका संस्कार महात्मा कृपालानन्द जी से है । अतः उन्होने उस अंग्रेज महिला को ब्रह्मपुरी के वन में जाने की आज्ञा देते हुए कहा—योगिराज कृपालानन्द जी के द्वारा ही

में विचरण करते उधर ही आ निकले । देखते ही उस देवी ने अवधूत जी के चरण कमलों को पकड़ लिया । पहिले तो उन्होंने उसे हतोत्साहित करने का प्रयास किया । अन्त में उसकी दृढ़ लगन देखकर उसे योगाभ्यास की विधि बताई और वहीं पर कुटी बना कर रहने की आज्ञा दे दी । वह देवी अपने गुरुदेव की आज्ञा का अक्षरशः पालन करती और कन्दमूल खाकर अपनी साधना में तत्पर रहती । परिणामतः उसमें कई चमत्कारिक शक्तियों का प्राकट्य हुआ ।

जिन दिनों आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज वहाँ पहुँचे थे, तब यह देवी भी वहाँ निवास किया करती थी । इसके अतिरिक्त हीरागिरि नाम के एक अन्य महात्मा से भी उनका परिचय हुआ । परिचय बढ़ने पर श्री प्रभुजी और वह महात्मा साथ साथ गंगा-स्नान करके कन्दमूल खोद लाते और साथ ही बना लिया करते थे । कभी कभी कृपालानन्द जी भी उस ओर आ जाते थे । महात्मा हीरागिरि अवधूत कृपालानन्द जी के प्रति कुछ उपेक्षा का भाव रक्खा करता था । अवधूत उसके मनोभाव समझ गए और उन्होंने उसे शिक्षा देने का विचार किया ।

अवधूत श्री कृपालानन्द जी प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही पवित्र गंगा की धारा में स्नान करके गंगा-तट पर ही समाधिस्थ होकर बैठ जाया करते थे । दोपहर बाद लगभग दो बजे के उपरान्त वह समाधि से उठते थे । उठने के पश्चात् उस वन में जो कोई भी साधु कन्दमूल बनाकर तैयार किया हुआ दिव्य-दृष्टि से दिखाई देता उसके पास मनोजविता से तत्काल जा पहुँचते और उससे आधा भोजन लेकर खा लिया करते थे । वह स्वयं कन्दमूल न बनाकर नित्य इसी प्रकार किया करते थे । ब्रह्मपुरी

के वन में रहने वाला कोई भी महात्मा उनके इस नैत्यिक कार्यक्रम के कारण कृपालानन्द जी से रुष्ट नहीं होता था क्योंकि सभी को उनकी दिव्य-स्थिति का ज्ञान था। सब जानते थे कि यह सब प्रकार से परिपूर्ण भगवान सदाशिव के रूप ही हैं। अतः जिसके यहाँ जाकर भी वह भोजन करते वही अपना अहोभाग्य समझता और उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा किया करता। परन्तु महात्मा हीरागिरि उनके इस व्यवहार से बहुत ही चिढ़ता था, इसी कारण उनके प्रति उपेक्षाभाव रखते हुए कहता-ठीक है, कृपालानन्द जी युक्त योगी हैं और हम सब युंजन योगी हैं। लेकिन कालान्तर में हम भी युक्तता को प्राप्त होंगे ही। कृपालानन्द भी हमारे बराबर का भाई ही तो है।

माँ बाप खोदकर और बनाकर इसके लिये ही रख जाते हों। हीरागिरि ने अगले दिन इस मुसीबत से बचने के लिये भोजन के समय से बहुत ही पहले कन्दमूल बना डाले और श्री प्रभुजी से बोला—उस दुष्ट कृपालानन्द के आने से पूर्व ही खा लेते हैं। फिर अवधूत आकर खाली पात्र देखकर स्वयं ही लौट जायगा। अभी उसने भोजन परोसा ही था कि सामने से मुस्कराते हुये कृपालानन्द जी आते दिखाई पड़े। आते ही बोले—भाई हीरागिरि, बड़ा अच्छा किया जो तुमने जल्दी ही कन्दमूल तैयार कर लिये। आज तो जल्दी ही भूख लग आई है। विवश महात्मा हीरागिरि को नित्य की भाँति तीन भाग करने पड़े, और कृपालानन्द जी तृप्त होकर चल दिये।

महात्मा हीरागिरि बड़ी उलझन में था—कैसे इस अवधूत से पिंड छूटे ? उसे एक उपाय सूझा और अगले दिन उसने भोजन समय तक कन्दमूल खोदे ही नहीं। उसका विचार था भोजन के समय अवधूत आएगा तो कह दूँगा-भाई, यदि तुझे कन्दमूल खाने हों; तो खोद ला और बना कर खा ले। मुझे तो खाना नहीं था, इसीलिए बनाया भी नहीं है। परन्तु आश्चर्य की बात कि उस दिन भोजन के समय योगी कृपालानन्द आए ही नहीं। जब भोजन का समय निकले दो घंटे हो चुके, तब हीरागिरि वन में जाकर कन्दमूल खोद लाया और बनाने लगा। मन में वह प्रसन्न था और नित्य ही इसी उपाय से कृपालानन्द जी से बचने की बात सोच चुका था। कंदमूल बन कर तैयार हुआ ही था कि कृपालानंद जी आ पहुँचे और हँसकर बोले —भाई हीरागिरि तू हमारा बड़ा ख्याल रखता है। तुझे कैसे पता चल गया कि आज हमें भूख नहीं लगी है इसलिए हम देरी से खायेंगे। वैसे तो आज बिना खाये ही रहना पड़ता, लेकिन

जब तूने इस समय बना ही रक्खा है; तो ला—थोड़ा सा खा लेते हैं। मन ही मन हीरागिरि को बेहद क्रोध आया और बोला —तुम कुछ समाधि-असमाधि नहीं लगाते। केवल भोजन की समाधि लगाते हो। इस समय कहाँ कन्दमूल मिलेगा—बस यही देखा करते हो। इसके बाद हीरागिरि नित्य स्थान-परिवर्तन कर करके कन्दमूल तैयार करने लगा। किन्तु श्री कृपालानन्द जी की दिव्य-दृष्टि से कोई भी स्थान बच न सका और वह अपनी मनोजविता से प्रत्येक स्थान पर पहुँच कर हीरागिरि के यहाँ ही नित्य भोजन करते थे।

महात्मा हीरागिरि के हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो गई और उसने एक दिन चुपचाप धतूरे के सेर भर पत्तों का साग बना डाला और मन में कहने लगा—आज महात्मा को इस प्रकार आने का मजा मिल जायगा। उधर श्री प्रभुजी ने भी अपने कन्दमूल भून कर तैयार किए हुये थे। ठीक समय पर कृपालानन्द जी आए। श्री प्रभुजी ने अपने कन्दमूलों के तीन भाग करके एक भाग कृपालानन्द जी के सम्मुख रक्खा। हीरागिरि ने धतूरे का सारा साग कृपालानन्द जी के सम्मुख रख दिया। तब अवधूत बोले—क्यों रे हीरागिरि मरने को हम ही रहे हैं क्या ? हम तुम दोनों ही क्यों न मरें ? इस साग को तू भी खा और हम भी खाते हैं। श्री प्रभुजी इस रहस्य से अनभिज्ञ थे, अतः आश्चर्य में भरकर कहने लगे—महाराज, क्या हुआ ? ऐसे वचन क्यों बोल रहे हैं ? तब कृपालानन्द बोले—आज यह हमें मारने के लिए धतूरे के पत्तों का साग बना कर लाया है। श्री प्रभुजी ने कहा—आप उसे मत खाइये, बस केवल मेरे वाले कन्दमूल ग्रहण कीजिए। परन्तु अवधूत कहने लगे—बेचारे ने बड़े प्रेम से बनाया है। हम इसे अवश्य खायेंगे। ऐसा कहकर उस साग के तीन भाग करके एक प्रभुजी के सामने भी रख दिया

और कहा—तुम इसे निश्शंक खाओ, हम भी खाते हैं। परन्तु फल यह दुष्ट हीरागिरि ही भोगेगा। तीनों ने वह साग खाया किन्तु श्री प्रभु जी और कृपालानन्द पर धतूरे के विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ। परन्तु थोड़ा सा साग खाते ही हीरागिरि की दशा बिगड़ने लगी और थोड़ी सी देर में विष के प्रभाव से वह मूर्च्छित हो गया। श्री प्रभुजी से कृपालानन्द जी ने कहा—तीन दिन तक यह अपने किये का आनन्द भोगेगा। तीन दिन बाद होश में आते ही हीरागिरि बोला—हम अब इस दुष्ट कृपालानन्द को अपने योगबल से खबर लेगें। और चुपचाप नित्य की भांति कन्दमूल बना कर तैयार किये। मध्यान्ह होने पर अवधूत श्री कृपालानन्द जी आये और हँस कर बोले—कहो हीरागिरि अभी कुछ और मन में है। श्री प्रभुजी हँस पड़े तो अवधूत कहने लगे —अब यह योगबल से हमें बदला देगा। हम उस समय भी इसकी खबर लेंगे। तत्पश्चात् कन्दमूल का भोजन करके तीनों व्यक्ति बैठ कर चर्चा करने लगे।

उस समय हीरागिरि अपना अपमान समझकर बहुत ही क्रोध में था। उसी दशा में उसने विचार किया—आज जब यह अवधूत ध्यानस्थ होगा, उसी समय जाकर इसका मुख कालिख से काला करूँगा। कृपालानन्द जी पूर्ण योगी थे, तत्काल उसके मन का विचार जान गए और वहीं समाधि लगा कर बैठ गए। दोनों हाथों को कालिमा से काला करके जैसे ही वह उनकी ओर बढ़ा—उनके आसन के नीचे से ततैयें निकल कर हीरागिरि के मुख को चिपट गईं। उनसे बचने के लिए अनजाने ही उसने अपने दोनों काले हाथों को अपने मुख पर ही लगा लिया। फलतः कृपालानन्द जी के बजाय उसका स्वयं का ही मुख काला हो गया। श्री कृपालानन्द जी की इन चमत्कारिक

योगी श्री हरिहरानन्द जी

इस छोटी सी पुस्तिका को लिखते समय सहसा मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मैं अपने बड़े गुरुभाई श्री हरिहरानन्द जी का कुछ वर्णन करूँ। हरिहरानन्द जी बलिया जिले के किसी ग्राम के निवासी हैं। पवित्र ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। इनके माता-पिता ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार इनका यथायोग्य पालन-पोषण एवं शिक्षा-व्यवस्था की। तत्पश्चात यह अपने ग्राम में ही रह कर साधारण कृषि-कर्म कराते रहे। भाई हरिहरानन्द जी पूर्ण सदाचारी और संयमी थे। भाई हरिहरानन्द जी का प्रारम्भिक नाम हरिराम शर्मा था। इन्होंने युवावस्था प्राप्त करके सभी श्रेष्ठ कार्य किए वे परहितचिन्तन और साधु-सेवा की इनको बड़ी लगन थी। न तो इनकी स्वयं कुकर्म करने की वृत्ति थी और न दूसरे को कुकर्म करते देख सकते थे। स्वभाव से यह बड़े ही साहसी एवं निर्भय थे अर्थात् अत्याचार का विरोध करने में किसी से डरते नहीं थे। यह जिस ग्राम में निवास करते थे वहाँ पर पुलिस-थाना भी था संयोग से वहाँ कुछ इस प्रकार के अधिकारी लोग आ गए जो बड़े दुस्साहसी थे। गाँव वालों पर अनेक अत्याचार करते थे। भाई श्री हरिहरानन्द जी को यह सब सहन नहीं था। अतः इन्होंने बड़ी निर्भयता से उनके इन कार्यों का विरोध किया। फलस्वरूप वह अधिकारी भी अब मनमाना व्यवहार नहीं कर पाते थे। इनकी यह प्रबल इच्छा रहती थी कि इनके गाँव में किसी भी प्रकार का दुष्कर्म न होने पाए। इसके लिए यह यथा सम्भव प्रयत्न करते रहते थे।

श्री सद्‌गुरु महाराज जी की दर्शन प्राप्ति

भाई श्री हरिहरानन्द जी के पड़ोस में एक दुश्चरित्रा स्त्री रहती थी, जिसका प्रभाव गाँव के युवक और युवतियों पर बड़ा बुरा पड़ रहा था। पहिले तो भाई जी ने उसे समझा-बुझा-कर सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। परन्तु उसका कुकर्म करने का स्वभाव बन चुका था। अतः उस स्त्री को समझ नहीं आई और वह अधिकाधिक कुकर्म में प्रवृत्त होती गई। हरिहरानन्द जी ने जब यह देखा कि इसमें सद्भाव उत्पन्न नहीं हो रहा है तो उन्हें कड़ा उपाय अपनाने का विचार करना पड़ा। फलतः एक दिन उन्होंने उस स्त्री को कड़े ढंग से ताड़ना देनी प्रारम्भ की, तब वह स्त्री जोर जोर से रोने और चिल्लाने लगी। उन दिनों आनन्दकन्द योग योगेश्वर सद्‌गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज उसी गाँव में विराजमान थे। उस स्त्री को पिटते हुए देखकर करुणा सागर श्री प्रभुजी को बड़ी दया आई। अपने पास आने वाले सत्संगियों से उन्होंने पूछा—यह लड़का कौन है? वह इस स्त्री को क्यों पीट रहा है? सत्संगियों में से एक ने विनयपूर्वक कहा—प्रभो, यह ब्राह्मण बालक है और बड़ा चरित्रवान् है। यह पिटने वाली स्त्री बहुत ही दुश्चरित्रा है। यह इस प्रकार की ताड़ना के योग्य ही है। इस प्रकार के शब्द सुनकर उस ब्राह्मण नवयुवक के प्रति श्री प्रभुजी का हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ और उन्होंने एक सत्सगी को आज्ञा दी इस बच्चे को हमारे पास बुलाकर लाओ। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार एक व्यक्ति वहाँ से उठकर गया और हरिहरानन्द जी को श्री प्रभुजी के चरण कमलों के समीप ले आया। उनके वहाँ आने पर श्री प्रभुजी ने उनकी पीठ ठोकते हुए कहा—बेटा, तुम किसके बालक

हो ? भाई हरिहरानन्द जी श्री प्रभुजी के सम्मुख हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक कहा—मैं इसी गाँव का रहने वाला एक ब्राह्मण बालक हूँ। तब मुस्कराते हुए श्री प्रभुजी ने कहा—बेटा, ब्राह्मण तो बड़े दानी होते हैं ब्राह्मणों के कर्म वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना दान देना और लेना होते हैं। तुम यह बतलाओ कि तुमने केवल लेना ही सीखा है या कुछ देना भी जानते हो। भाई हरिहरानन्द जी ने उत्तर दिया—प्रभो ! मैं ब्राह्मण हूँ। आपकी कृपा से मुझे दान देना भी आता है। तब श्री प्रभुजी ने कहा—यदि तू दान दे सकता है तो तू हमें अपना सिर दे दे। श्री प्रभुजी के मुख से निकले इन वचनों को सुन कर हरिहरानन्द जी ने प्रसन्न मुख होकर कहा—अवश्य, आपकी इच्छानुसार ही दान दूँगा। परन्तु मुझे तीन दिन का समय दे दीजिए जिससे मैं घर के सारे कार्य निपटा कर तैयार होकर आ जाऊँ। फिर आप बड़ी प्रसन्नता से मेरा सिर उतार लीजिएगा। श्री प्रभुजी ने प्रसन्न मन से उसे आज्ञा दे दी। तीन दिन का अवकाश प्राप्त कर हरिहरानन्द जी अपने घर गए और अपना लेना देना निपटा कर अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान कर दिया। फिर तलवार हाथ में लेकर तीसरे दिन नियत समय पर श्री प्रभुजी के चरण कमलों में आकर उपस्थित हो गए और विनम्रता पूर्वक बोले—महाराज ! सेवक उपस्थित है। आप बड़ी प्रसन्नता से अब मेरा सिर ले लें। किन्तु यदि आप मेरा सिर यहीं जन-समुदाय के सम्मुख उतारेंगे तो इन लोगों को बड़ी भ्रान्ति हो सकती है। सम्भवतया आपको व्यर्थ कुछ कष्ट देने लगें। अतः आप नदी किनारे किसी वन में जाकर मेरा सिर उतार लें।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का हृदय उनके इन भावपूर्ण वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। श्री प्रभुजी हरिहरानंदजी को साथ लेकर वन के एक सघन कुंज में पहुँचे और बोले—यदि

तुम्हारे सिर को हम उतारेंगे तो हमें ब्राह्मण-वध का पाप लगेगा। अतः तुम स्वयं ही अपना सिर काट कर हमें दे दो। श्री प्रभुजी की ऐसी आज्ञा पाकर भाई हरिहरानन्दजी ने तलवार उठाकर अपने सिर को काट देने का प्रयास किया। किन्तु ज्यों ही तलवार उनकी गर्दन पर लगने वाली थी, त्यों ही एकदम श्री प्रभुजी ने उनका हाथ पकड़ कर तलवार छीन ली और उसके दो टुकड़े करके फेंक दी। फिर भाई हरिहरानंद जी को अपने कण्ठ से लगाकर श्री प्रभुजी ने कहा—बेटा, तेरी भक्ति की दृढ़ता से हमारा हृदय अत्यन्त प्रसन्न है। बेटा, तू तत्व-विजयी महासिद्ध होगा। योग योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री प्रभुजी से हार्द-दीक्षा पाकर भाई जी कृतार्थ हो गए और उनका जीवन धन्य हो गया। उसी समय से उनके हृदय में दिव्य महाशक्ति का स्फुरण हुआ और वह बड़े बड़े दिव्य दृश्यों को देखने लगे। भाई जी की ध्यानस्थिति का विकास बड़ी तीव्रता से हुआ। उन्होंने दिव्य-दृष्टि पाकर अपने असम्प्रज्ञात योग की प्रथम श्रेणी में ही बहुत कुछ देख डाला। अतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल आदि नीचे के और भू, भुवः, स्वः महः, जनः, तपः, सत्यम् आदि ऊर्ध्व लोकों का पूर्णतया साक्षात्कार कर लिया। इनका चित्त यकायक ही समाहित हो गया। हरिहरानंद जी का वह नवयुवावस्था का समय था, अतः समाहित स्थिति को पाकर जो सिद्धियाँ उनके सम्मुख उपस्थित हुई—उनका उन्होंने कई जगह उपयोग किया। कई व्यक्तियों

प्रभुजी की चरण-सेवा में लगे रहते थे। वह श्री प्रभुजी की सेवा ध्यान-दृष्टि से देख कर किया करते थे, यह उनका नियम था। अर्थात् जिस वस्तु की जिस समय श्री प्रभुजी को आवश्यकता होती थी, उसे ध्यान-दृष्टि से देखकर तत्काल उपस्थित कर दिया करते थे। जिस समय वह देखते कि श्री प्रभुजी को भूख लगने लगी है, तो पहिले से ही भोजन तैयार करके रख लिया करते थे प्यास लगने पर पहिले से जल ले आकर उपस्थित हो जाते थे। सारांश यह कि श्री प्रभुजी को मुख से कहने की आवश्यकता ही न पड़ती थी और भाई जी पहिले से ही वह वस्तु लेकर उपस्थित हो जाते थे। इस प्रकार भाई श्री हरिहरानंद जी श्री प्रभुजी की सेवा में निरंतर तत्पर रहा करते थे। श्री प्रभुजी का हृदय उनके इस सेवा-भाव से अत्यंत प्रसन्न रहता था। फलस्वरूप उन्होंने अनेकों अलौकिक शक्तियों को सहज ही प्राप्त कर लिया था! भाई श्री हरिहरानंद जी के जीवन में अनेकों अलौकिक एवं चमत्कारिक घटनाएं घटीं – जो उनकी अद्भुत शक्ति की परिचायक थीं। उनमें से तीन घटनाओं की चर्चा यहाँ की जाती है।

वट वृक्ष

एक बार श्री प्रभुजी नर्मदा के वनों की यात्रा कर रहे थे। उनके साथ भाई हरिहरानंद जी भी थे। अकस्मात् घूमते-घामते नर्मदा के तट पर बसे एक गाँव में जा पहुँचे। उस गाँव से थोड़ी दूर वन में एक विशाल वट-वृक्ष था। वट के नीचे एक सुरम्य चबूतरा बना हुआ था। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि कोई भी यात्री वहाँ रात्रि-वास नहीं कर पाता था। उस गाँव के लोगों का विश्वास था उस जंगल में वट वृक्ष के नीचे

जो भी साधु महात्मा रात्रि वास करेंगे वह अवश्य ही मर जायगें। श्री प्रभुजी जब उसी वट वृक्ष के नीचे रात्रि वास करने का विचार करने लगे तो गाँव वालों ने कहा—महाराज, यह वन बड़ा भयानक है। जो भी उस वट वृक्ष के नीचे रात्रि वास करता है, वह अवश्य ही मारा जाता है। कौन मार देता है—यह तो हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। किन्तु सुनते हैं वहाँ बड़ी भारी प्रेत-व्याधा है। अतः गाँव का कोई भी व्यक्ति वहाँ जाने का साहस ही नहीं करता। आप साधु महात्मा हैं, यदि आपके साथ ऐसा कुछ हो गया तो हमारे गाँव पर बहुत बड़ा भार पड़ेगा। इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप वहाँ न जाकर हमारे गाँव में ही किसी स्थान पर ठहर जायँ किन्तु श्री प्रभुजी हँसकर कहने लगे—हमें तो ठहरने के लिए वही स्थान पसंद आया है। तुमने वहाँ की प्रेत व्याधा की बात बता कर हमें सचेत करके अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया है। अब यदि हमें

पर कोई आपत्ति न आ सके। सब कार्यों से निपट कर सब लो
शयन करने लगे। रात्रि में घटना विपरीत ढंग से घटी। उ
वट वृक्ष के नीचे तो कोई उपद्रव नहीं हुआ बल्कि आधी रा
के समय वे सभी साधु रोने और चिल्लाने लगे—हाय रे ! हा
मारे गए। कैसी आपत्ति में पड़ गए ? अब हम क्या करें ? उ
साधुओं को दीखा कि भयंकर प्रेत-समूह उन सबों को पी
रहा है।

साधुओं के उस आर्तनाद को सुनकर श्री प्रभुजी को बड़ी
दया आई और उन्होंने भाई हरिहरानंद जी से कहा—बेटा,
जाओ। इन साधुओं के बीच में जाकर खड़े हो जाओ। जिससे
यह बेचारे इन प्रेतों की आपत्ति से बच सकें। श्री प्रभुजी की
आज्ञा को पाकर तत्काल ही भाई हरिहरानंद जी उस सब
साधुओं के बीच में जाकर खड़े हो गए। उनके वहाँ पहुँचते ही
वहाँ की सब व्याधाएं शांत हो गईं। सभी साधुओं ने श्री
हरिहरानंद जी के चरणों को पकड़ लिया और हाथ जोड़ कर
कहने लगे—महाराज ! आज आपने हम सबों को बड़ी आपत्ति
से बचा दिया, अन्यथा हम सब साधु मारे जाते। महाराज
आपके हम बड़े आभारी हैं।

अगले दिन प्रातःकाल गाँव वाले वट-वृक्ष के नीचे रा
वास करने वालों का समाचार जानने आए और श्री प्रभुजी
को पूर्णरूपेण सकुशल देखकर आश्चर्य में पड़ गए। उस साधु
मंडली द्वारा इस घटना का प्रचार सारे गाँव में हो गया। सभी
लोग श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ आने लगे—बड़ा भारी मेला सा लग
गया। तब करुणासागर श्री प्रभुजी ने अपने मुखारविंद से उन
सभी गाँव वालों को आश्वस्त करते हुए कहा—अब से यहाँ कोई
भय नहीं रहेगा। अब यह स्थान प्रेत-व्याधा से सर्वथा मुक्त है।

गया है। अब जो भी साधु-महात्मा चाहेंगे यहाँ निश्चिन्तता से ठहर सकेंगे। इन वचनों को सुनकर सब गाँव वालों का हृदय अत्यंत प्रसन्न हुआ और उन सबने मिलकर वहाँ एक बड़े भण्डारे का आयोजन किया। आस-पास के गाँवों के ब्राह्मणों और साधु-महात्माओं को निमन्त्रण भेज दिया गया। दो तीन कढ़ाव खीर बनी एवं पूरी और साग बन कर तैयार हो गया। आमन्त्रित अतिथियों के आ जाने पर ज्यों ही भण्डारे की पहिली पंगत बैठाई जाने लगी त्यों ही कहीं से एक उद्दण्ड प्रकृति के महात्मा निकल आए। उन महात्मा ने बड़ी साधना से भैरव जी को सिद्ध किया था। वह महात्मा प्रायः भण्डारों में जाकर भैरव जी की शक्ति से भण्डारे तुड़वा दिया करते थे। यही उनकी विशेष करामात थी। भण्डारे की सूचना पाकर वह वहाँ भी आ पहुँचे थे।

आते ही उन महात्मा जी ने गालीगलौज करना प्रारम्भ कर दिया। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी तो उस समय अपने डेरे में विश्राम कर रहे थे। अतः भाई श्री हरिहरानन्द जी पर ही उससे निबटने का भार आन पड़ा। भाई जी ने उस महात्मा को काफी समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया और उससे कहा—भाई तुम साधु हो। तुम्हें ऐसा अनर्थ नहीं करना चाहिए जिससे दूसरे लोगों को हानि पहुँचे। परन्तु जितना ही भाई जी समझाते थे उतना ही उस महात्मा का अहंकार पुष्ट होता चला गया। उसने अपना खप्पर फैला कर कहा—मैं कुछ नहीं जानता पहिले मेरा खप्पर भर दो फिर अपना भण्डारा करते रहना। अन्यथा मैं वह कार्य करूँगा जिससे तुमको लेने के देने पड़ जायगें। अभी तुम सबों का भण्डारा करना सिखला दूँगा। उसके इन कटु शब्दों को सुन कर "अच्छा, अभी तेरा खप्पर भर देता हूँ" ऐसा कहकर भाई हरिहरानन्द जी ने एक छोटी सी लुटिया उठा ली और उसमें खीर

भर कर उसके खप्पर में डालनी प्रारम्भ कर दी। सब लोग बड़े आश्चर्य में थे कि न तो वह खप्पर ही भरता था और न उस लुटिया की खीर ही समाप्त होती थी। ऐसा होते हुए घंटे पर घंटे बीतने लगे परन्तु कोई परिणाम सामने न आया। अन्त में भाई हरिहरानन्द जी ने अपनी योग शक्ति से उसकी शक्ति को छीन लिया। ऐसा होते ही उसका खप्पर तत्काल भर गया और उस छोटी लुटिया से अन्य सभी पात्र भी खीर से भर गए। सभी लोगों को बड़ा भारी आश्चय हुआ। वह महात्मा अपनी शक्ति को गया जान कर रो रोकर कहने लगा—महाराज! मेरी शक्ति वापिस कर दो। अब आपके सम्मुख कभी नहीं आऊँगा। कृपा करके इस बार क्षमा कर दें। इस भारी कोलाहल को सुनकर श्री प्रभुजी जाग उठे और वहाँ आकर सबको शान्त कर दिया। उस महात्मा को यथोचित शक्ति यह कहकर दिला दी कि आज से आगे तुम कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकोगे जिससे लोगों का कोई अनिष्ट हो। उसके बाद भण्डारा खब धूमधाम से सम्पन्न हुआ और सभी ने प्रसन्न-मुद्रा से भोजन किया। इस भण्डारे के उपरांत श्री प्रभुजी वहाँ से चल पड़े और नर्मदा के तट पर आगे बढ़े।

भैरवसिद्ध महात्मा पर अनुग्रह

वहाँ से दो-चार मील आगे चलकर श्री प्रभुजी ने फिर अपना डेरा डाल दिया। वहाँ से थोड़ी दूर पर दो गाँवों के मध्य एक भैरव सिद्ध महात्मा रहते थे। वह बड़े क्रूर स्वभाव के थे। आस-पास के रहने वाले सभी लोगों को उन्होंने अपनी शक्ति से तंग कर रक्खा था। भाई हरिहरानंद जी ने उस महात्मा के विषय में थोड़ी बहुत बातें लोगों से सुन रक्खी थीं कि यह जनसाधारण को बहुत दुःख देता है। नर्मदा-तट पर डेरा डाल

देने पर श्री प्रभुजी ने हरिहरानंद जी को आग लाने की आज्ञा दी। हरिहरानंद जी अनजाने में आग लेने उसी महात्मा के स्थान पर जा पहुँचे। भाई जी उस महात्मा की धूनी में से आग लेकर जब चलने लगे तब उस महात्मा के शिष्य ने कहा—अरे ब्रह्मचारी ! यह तुमने क्या किया ? मेरे-गुरू की धूनी में से आग ले ली। अब तुम अपनी खैर मत समझो। मेरे गुरुदेव अभी स्नान करके आते ही होंगे। देखना, वे तुम्हें कैसा घोर दण्ड देकर भेजते हैं ? इतनी देर में वह महात्मा सामने से आते हुये दिखाई दिए। उनके एक हाथ में जल का लोटा था। भाई जी के हाथ में अग्नि देखते ही वह कोप में भरकर उनकी ओर बढ़े। भाई जी ने उन्हें क्रोधित देखकर उस महात्मा के हाथ में से जल का लोटा छीन लिया और उनके साथ ही साथ उसकी शाप देने की शक्ति भी छीन ली और तत्काल भागते हुये श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में चले आए। पीछे-पीछे वह महात्मा जी भी रोते हुये पहुँचे। श्री प्रभुजी के चरणाविन्दों में पहुँच कर वह महात्मा बहुत गिड़गिड़ाये—आपके इस ब्रह्मचारी ने मेरी वह सारी शक्ति छीन ली है जिसे मैंने वर्षों की साधना से प्राप्त किया था। वह मेरी जीवन-भर की कमाई है। यदि आसपास के लोगों को इस घटना का पता भी चल गया तो वे सब के सब आकर मुझे मार ही डालेंगे। अतः कृपाकर मेरी शक्ति मुझे लौटा दीजिये ताकि मैं जीवित रह सकूँ। महात्मा अभी इस प्रकार से कह ही रहे थे कि आस-पास के बहुत से लोग वहाँ एकत्रित हो गये और श्री प्रभुजी से कहने लगे—महाराज ! इस दुष्ट महात्मा ने लोगों को बड़ी हानियाँ पहुँचाई हैं। किसी की लड़की को अन्धा कर दिया. किसी की पत्नी को मार दिया, किसी का वंशोच्छेद ही कर दिया—इस प्रकार महान् दुःख दिए हैं। अतः कृपा करके इस महात्मा की शक्ति वापिस मत

से बाहर कर दीजिये ताकि आज हम इसके ठीक-ठीक दर्शन करलें। ज्यों-ज्यों लोग इस प्रकार की बातें कहते थे त्यों-त्यों वह महात्मा भय के कारण कम्पित होता जाता था और बारम्बार हाथ जोड़ कर श्री प्रभुजी से विनय करता था— करुणासिन्धो ! यदि आप मुझ अशरण को शरण नहीं देंगे तो यह लोग मुझे मार ही डालेंगे।

श्री प्रभुजी ने दोनों पक्षों की बात सुनी और गाँव वालों को इस प्रकार सान्त्वना दी—भाई, होनहार जो कुछ थी वह हो चुकी। अब तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी। साधु को मारना नहीं चाहिए, अतः तुम लोग इसे छोड़ दो। उधर उस महात्मा को इस प्रकार समझाया—महात्मन्, तुम्हारा स्वभाव कठोर है और तुम अपनी शक्ति का अहितचिन्तन में दुरुपयोग करते थे। अतः तुम सिद्धि के पात्र नहीं हो। अब तुम निर्जन वन में चले जाओ और अपने पापों का प्रायश्चित करो। परमार्थ-लाभ के लिए तप करो। श्री प्रभुजी के इस प्रकार समझाने पर वह ह [illegible] श्री प्रभुजी को प्रणाम करके वन में चले गये और गाँव वाले भी आश्वस्त होकर श्री प्रभुजी का जय-जय कार करते हुए अपने-अपने घरों को लौट गए। इस प्रकार श्री हरिहरानन्द जी श्री प्रभुजी के चरणकमलों में रहते हुये वनों में विचरण करते रहे।

अवधूतानी कालिका से भेंट

एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने भक्त-समुदाय के साथ नासिक कुम्भ-पर्व पर स्नानार्थ गये श्री प्रभुजी के भक्तों में योगी सुन्दरगिरि और भाई हरिहरानन्दजी भी थे। साधु-समाज में योगीजी सुन्दरगिरि वखाड़िया के नाम से प्रसिद्ध थे। वह

योगी तो थे परन्तु उनकी प्रकृति कुछ कठोर थी । उपयुक्त स्थान पर श्री प्रभुजी ने अपने डेरे डलवा दिए और निवास करने लगे। थोड़े दिनों बाद इनके डेरे के बिल्कुल समीप ही एक अवधूतानी ने भी अपना डेरा डाल दिया । वह अवधूतानी वास्तव में स्वयं महाशक्ति कालिका थीं किन्तु वेश बदल कर आई थीं । उनके साथ उनकी बहुत सी शिष्याएं भी थीं । योगी सुन्दरगिरि को अवधूतानी का डेरा वहाँ लगाया जाना पसन्द नहीं आया । अतः उन्होंने अवधूतानी कालिका से कहा—तुम अपना डेरा यहाँ से उखाड़ कर परे ले जाओ। किन्तु वह थी परम योगिनी कालिका-अतः उसने योगी सुन्दरगिरि की बातों की कोई परवाह नहीं की ।

परिणाम यह हुआ कि योगी सुन्दरगिरि बहुत क्रोधित हो गए और उन्होंने कालिका पर अपनी शक्तियाँ चलानी प्रारम्भ कर दीं । कालिका ने भी शक्ति का उत्तर शक्ति से देकर योगी सुन्दरगिरि को बेहोश कर दिया । योगी सुन्दरगिरि भाई श्री हरिहरानन्दजी के परम मित्र थे । उनके बेहोश हो जाने से भाई हरिहरानन्द जी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने भी कालिका पर अपनी अर्जित शक्तियों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया । कालिका ने भी उत्तर दिया। फलस्वरूप कुछ समय बाद भाई श्री हरिहरानन्द जी भी बेहोश हो गए । भाई जी को बेहोशी आई देख श्री प्रभुजी ने विचार किया—कालिका ने अपने शक्ति-प्रयोग से हमारे बालकों को बेहोश कर अच्छा कार्य नहीं किया । कालिका का अभिमान काफी बढ़ चुका था । इसलिए जिस समय श्री प्रभुजी इस प्रकार विचार कर रहे थे, कालिका ने उन पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया । श्री प्रभुजी एक दम खड़े होकर शक्ति का जवाब देने का विचार करने लगे । उसी समय नेपाल वाले

भगवान् महाप्रभु सदाशिव, जो वृद्ध ऋषि के रूप में हिमालय पर विराजमान रहते हैं, बीच में आकर प्रकट हो गए और कहा—कालिके ! क्या तू नहीं देखती कि यह कौन हैं ? देख तो, किनके साथ तू लड़ रही है ? कालिका ने उत्तर दिया—महाराज ! मैं जानती हूँ कि यह सब मेरे भाई हैं। परन्तु पहला आघात इन्हीं की ओर से हुआ था। महाप्रभु सदाशिव ने आज्ञा दी—कालिके, अब तू पाताल को चली जा। यह लोग भी अपने-अपने स्थानों को चले जायगें। महाप्रभु जी की आज्ञा पाकर कालिका तत्काल वहाँ से चली गई। योगी सुन्दरगिरि और भाई श्री हरिहरानन्दजी को भी तत्काल चेत हो गया। और अब सभी लोग यथापूर्व अपने अपने कार्यों में लग गए।

भाई हरिहरानन्द जी आज भी भगवान् सदाशिव के नित्यधाम कैलास पर्वत के समीप शीशागिरि पहाड़ी पर विद्यमान हैं। वे तीन महीने में एक बार अपनी समाधि से उठते हैं। वह स्थान अगम्य है-वहाँ पर विषैली हवाएं चला [illegible]ते हैं। वहाँ पर हर कोई व्यक्ति नहीं पहुँच सकता है। योगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की करुणा-कृपा से वह कृतार्थ हो गए हैं। वह तत्वविजयी पूर्ण सिद्ध हैं। लोक लोकान्तरों में स्थूल रूप से गमन करने की उनमें पूर्ण शक्ति है। वह सब प्रकार से पूर्ण योगी हैं एवं सर्वसमर्थ हैं।

अवधूत योगी अगड़धत्ता जी

बाल्यकाल से मेरी प्रवृत्ति श्री वृन्दावनधाम के दर्शनों की अधिकाधिक रहा करती थी। अतः अपने अध्ययन-काल में भी यथासंभव अवकाश मिलने पर मैं प्रायः श्री वृन्दावन जाता ही रहता था। अपने अध्ययन-काल में अमृतसर में रहते हुए भी मैंने एक बार एकान्त-वास किया था। उस एकांत-वास के समय मैंने अपनी दिनचर्या कुछ इस प्रकार बनाई थी—कुछ घंटे मंत्र-जप किया करता था और उसके बाद थोड़ी देर ध्यानाभ्यास किया करता था। ततपश्चात् पुनः मन्त्र-जप और फिर ध्यानाभ्यास। अपने अध्ययन-काल में मैंने उपनिषद् में एक श्लोक पढ़ा था—

स्वाध्यायाद्योगमासीत्,
योगात् स्वाध्यायः मामनेत्।
स्वाध्याययोग-सम्पत्या,
परमात्मा प्रकाशते॥

इसके अर्थ पर मैंने अपने मन में मनन किया और इसी निष्कर्ष पर पहुँचा था। इसी के फलस्वरूप मत्रजप को स्वाध्याय और ध्यानाभ्यास को योग समझकर इस प्रकार का कार्यक्रम बनाकर निरन्तर अभ्यास करता रहा। स्वाध्याय और योग के फलस्वरूप मुझे आनन्दकन्द योगयोगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन ऋषिकेश में प्राप्त हुए। श्री प्रभुजी के दर्शनान्तर मेरे मन में विरक्ति के भाव कुछ अधिक मात्रा में विद्यमान रहने लगे। फलतः श्री वृन्दावनधाम

उनके शरीर पर दिखलाई नहीं देता था। उनका मुख-मंडल अत्यन्त तेजस्वी और देदीप्यमान था। सिर की जटाएं काफी श्वेत थीं। सारे तन पर तीन कम्बल वह लपेटे रहते थे। एक कटि-प्रदेश में अर्थात धोती के समान लपेटते थे। दूसरा स्कन्ध प्रदेश में और तीसरा कम्बल सिर पर ताज की आकृति बना कर ओढ़े रहते थे। किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत नहीं किया करते थे। हर समय स्वयं में ही विचार-मग्न से कहीं भी बैठे रहते थे। मेरा इनका प्रथम सम्पर्क बरसाने के गह्वर वन में हुआ था। हर समय इनके साथ रहा, परन्तु कभी भी इनको कुछ खाते नहीं देखा। कदाचित् इनके देदीप्यमान मुखमंडल को देखकर कोई गृहस्थ इनसे खाने-पीने का अनुरोध भी करता, तो प्रथम तो कोई उत्तार ही नहीं देते थे। यदि बोले भी तो खाने-पीने का निमन्त्रण अस्वीकार कर देते थे। फिर भी यदि दुराग्रह करने का कोई साहस करता तो बड़े कड़े शब्दों में ताड़ना देते थे—क्यों रे! तुझे यह क्या सूझी है? क्या तू हमें मारेगा?

उसके बाद श्री वृन्दावन-धाम में अनेकों बार इनके साथ रहने का अवसर हुआ। उनके मुख से निकले उपर्युक्त शब्द मैंने कई बार सुने। एक दिन अवसर पाकर मैंने पूछा—महात्मा जी आप का यह क्या कहा करते हैं? किसी व्यक्ति के द्वारा खिलाने-पिलाने आग्रह किए जाने पर आप कह देते हैं—क्यों रे, तू हमें मारेगा? तो क्या खाने से ही मनुष्य मर जाया करता है? हमारी जिज्ञासा शान्त करने के लिए उन्होंने हमें समझा कर बतलाया था—हाँ भाई, संसार में दो ही प्रकार के व्यक्ति मरते हैं। जो खाता है वह मरता है और जो सोता है वह मरता है। जो

संसार में आकर खाना-पीना और सोना त्याग देता है वह काल से परे हो जाता है। अर्थात् वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करके अमर हो जाता है। उस समय उनकी यह बातें मेरी समझ में नहीं आती थीं परन्तु कालान्तर में ज्यों ज्यों इस मार्ग में मेरा प्रवेश अधिक हुआ तब उन बातों की सार्थकता को मैंने समझा। वस्तुत: तत्व-विजयी ही महापुरुष हैं। जो खेचरी और भूचरी आदि मुद्राओं के ज्ञाता होते हैं वे लोग तम की वृत्ति निद्रा और स्थूल रूप से खाए जाने वाले आहार का बिल्कुल परित्याग करते हैं और कालान्तर में अमरत्व को प्राप्त करते हैं। हिमालय में आज भी अनेकों ऐसे तत्व-विजयी सिद्ध महात्मा सहस्त्रों वर्षों से बैठे हुए हैं, जो न तो कुछ खाते-पीते हैं और न सोते हैं और न ही मल-मूत्र का परित्याग करते हैं। इसी प्रकार के महापुरुषों की श्रेणी में हमारे यह अवधूत योगी अगड़धत्ता जी भी कहे जा सकते हैं।

इनके साथ रहकर मैंने इन अवधूत के कई अलौकिक . देखे हैं। एक बार श्री वृन्दावन में श्री बांकेविहारी जी , मन्दिर के एक चबूरे पर श्री अगड़धत्ता जी और दूसरे पर हम लेटे हुए थे। श्री बिहारी जी का मन्दिर एकान्त-स्थल पर नहीं है, प्रत्युत उसके दोनों ओर बाजार है। मन्दिर से थोड़ी दूरी पर किसी दुकान पर कोई रोगी दारुण दुःख से चिल्ला रहा था। अवधूत योगी जी मुझसे कहने लगे "अरे ब्रह्मचारी! इसका रोना बन्द कर दो। यह तो हमारी एकाग्रता में बहुत विघ्न डाल रहा है"। हमने उनसे कहा, महात्माजी! आप ही उसका रोना क्यों नहीं बन्द कर देते? मेरे ऐसा कहने पर उन्होंने वहीं से फूँक मार दी। उनके मुख से फेंकी गई वह वायु बिजली के समान चमक कर उस रोगी पर लगी और

तत्काल ही वह शान्त होकर सो गया। उस मनुष्य को कोई कष्ट न रहा। प्रातः काल उस दूकानदार से पूछा गया कि उस रोगी को क्या कष्ट था ? उसने बतलाया–इसको बहुत तीव्र उदर-पीड़ा थी, जिस कारण यह चिल्लाता था। परन्तु पता नहीं कैसे रात्रि को लगभग बारह बजे यह स्वतः ही बिल्कुल ठीक हो गया और सो गया।

अवधूत योगी अगड़धत्ता जी विचित्र प्रकार के कार्य किया करते थे, जिनका रहस्य जल्दी समझ में नहीं आया करता था। एक बार उन्होंने श्री वृन्दावन के दुकानदारों से जल मांगना प्रारम्भ किया। वह प्रत्येक दुकानदार के पास जाकर कहते थे—क्यों रे ! तेरे पास ठंडा जल है ? यदि वह व्यक्ति 'हाँ' कहता तो थोड़ा सा जल वहाँ पीकर चल देते थे और फिर अगली दुकान पर जाकर इसी प्रकार जल माँगा करते। इस प्रकार श्री वृन्दावन की अनेकों दुकानों से लेकर उन्होंने जल पिया। हर दुकान पर जल पीने के बाद कहते—नहीं, यह जल ठीक नहीं है। इस प्रकार करते करते वे रेतिया बाजार में एक हलवाई की दुकान पर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही वह सदा की भाँति कहने लगे—क्यों रे, तेरी दूकान पर ठंडा जल है ? अन्य दुकानदारों की भाँति हलवाई ने महात्मा जी की आवभगत न करके बड़े रूखे एवं कड़े शब्दों में नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा—चल यहाँ से, तेरे जैसे बहुत देखे हैं। बड़ा आया कहीं से ठंडा जल पीने वाला। यह ताड़ना पाकर अवधूत उस हलवाई से बोले—सारे वृन्दावन की दुकानों से जल पीने का हमारा और कोई मतलब नहीं था। मैं तो तेरी ही दुकान का जल पीने आया था। तू कहता है कि हमारे जैसे बहुत देखे हैं, सो और कोई नहीं देखा होगा। आज बस हम ही देखे हैं। तेरी दुकान खब चलती है, तेरे पास पैसा भी काफी हो गया है। इसी कारण इतना अन्धा हो गया है

कि तुझे कोई साधु महात्मा दीखता ही नहीं है। आज से तेरी दुकान में मक्खी ही मक्खी हो जायगी। फिर तुझे साधु-महात्मा सब दीख उठेंगे। आज से तुम्हें सब दिखलाई पड़ा करेगा। यह कहकर तुरन्त ही महात्माजी वहाँ से चले गए।

उस दिन के बाद मैंने स्वयं उस हलवाई की दुकान पर उ वचनों का प्रत्यक्ष प्रभाव आश्चर्यजनक रूप में देखा। दुका में मक्खियों की ऐसी भरमार हो गई कि लगता था मा सारे वृन्दावन की सारी मक्खियें इसी स्थान पर एकत्रित क दी गई हों। महात्मा जी के इस कथन के बाद उस हलवाई क स्थिति बिल्कुल बिगड़ गई। लगभग एक या डेढ़ माह बाद ज हम वहाँ से निकल रहे थे तो वह हलवाई कहने लगा—महाराज जी, उस दिन आपके साथ जो महात्मा थे; वे मेरी दुकान में मक्खी ही मक्खी हो जाने का शाप दे गए थे। उसी दिन से यहाँ मक्खियाँ ही भिनक रही हैं। प्रथम तो मेरी दुकान से कोई कुछ खरीदता ही नहीं है। और यदि कदाचित् कोई खरीद भी लेता है तो सौदे में मक्खियाँ देखकर वापिस डाल जाता है। कृपा करके उनसे मुझे क्षमा दिलवाइए। मुझसे बड़ा अपराध गया जो क्रोध में आकर उनको अपशब्द कह दिए। श्रावण मास में हमेशा हजारों रुपए की आय इस दुकान से हो जाया करती थी, इस बार बिल्कुल खाली बैठे हैं। अन्य दुकानें धड़ाधड़ चल रही हैं, परन्तु महात्मा जी के शाप से हमारी यह दुर्दशा हो गई है, हमारे भाग्य फूट गए हैं। किसी प्रकार से कृपा करके उनसे क्षमा-प्रदान करा दीजिए। जो कुछ भी उनकी आज्ञा होगी, मैं वही करने को तैयार हूँ। हमें उस पर बड़ी दया आई और हमने उसकी प्रार्थना पर योगी अगड़धत्ता जी से कहा—अब उस बेचारे को क्षमा कर दीजिए। परन्तु उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इन्कार करते हुए कहा—उसको क्षमा नहीं

किया जा सकता। उसने अपने जीवन में बहुत से महात्माओं का अपमान किया है। उसके इस अपराध का दण्ड देने ही तो हम उसकी दूकान पर पहुँचे थे। दूकान-दूकान जल माँगने का हमारा प्रयोजन ही और क्या था?

कई मास और उसकी यही दुर्दशा रही। अन्त में एक बार वह अत्यन्त आर्त-भाव से अवधूत जी के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ा कर क्षमा-प्रार्थना करने लगा। उसके बहुत विनय करने पर उन्हें कुछ दया आ गई और कह दिया—जा, अब क्षमा कर देता हूँ। दुबारा किसी साधु का अपमान मत करना। इसी समय जाकर १००) गौ-शाला में दे आ। सुनते ही हलवाई में मानो जीवन आ गया। तत्काल दुकान पर पहुँच कर १००) गोशाला में दे आया। उसी दिन से उसकी दुकान में परिवर्तन आ गया। कहीं मक्खियों की भरमार न रही। एवं शनैः शनैः वह दुकान पूर्ववत् अपने विकास की स्थिति में पहुँच गई।

अवधूत योगी अगड़धत्ता जी कभी कभी कुछ अभिमान की बातें भी करते थे। उनके मन में धारणा थी कि सृष्टि में जो कुछ भी हम करना चाहें, कर सकते हैं। सृष्टि का सृजन, पालन एवं विनाश का क्रम हमारे द्वारा ही चल रहा है। अतः वह किसी भी महात्मा, साधु आदि की विशेष परवाह नहीं किया करते थे। मेरे सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज का कई बार उनके सामने वर्णन आता था। परन्तु वे बड़े उपेक्षित ढंग से उसे सुनकर चुप रह जाया करते थे। एक दिन उन्होंने बड़े ही अहंकार से कहा—भाई ब्रह्मचारी, हम चाहें तो तुम्हारे गुरुजी को भी अभी यहाँ खींच लें। सुनकर पहिले तो हम मौन रहे यह सोचकर कि बेचारे अवधूत जी हमारे प्रभुजी के स्वरूप को नहीं पहिचानते हैं। हम समझते थे कि यह केवल उनका

मिथ्या अहंकार ही है। परन्तु उनके बारम्बार उपर्युक्त शब्द दोहराने पर हमारे मन में भी कुछ तरंग सी आई। श्री प्रभुजी की सर्वसमर्थता का स्मरण कर मन उल्लास से भर गया और मैंने भी उनसे कह दिया—आप में यदि शक्ति है तो मेरे गुरुदेव को खींच कर दिखला ही दीजिए। उन्होंने कहा—बोलो, सूक्ष्म से या स्थूल से। निरक्षर से दीखने वाले अवधूत के मुख से ऐसे शुद्ध हिन्दी के शब्दों का सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य सा हुआ। अपने आश्चर्य को दबाकर उनकी उस अभिमान-भरी उक्ति के उत्तर में हमने कह दिया—सूक्ष्म से क्या खींचना ? स्थूल-रूप में ही खींच कर दिखाइए ; जिससे सबको आकाश-मार्ग से आते दीख जांय कि यह कोई किसी योगिराज की शक्ति से खिंचे चले आ रहे हैं। किन्तु स्थूल-रूप से खींचने को वे राजी ही नहीं हुए और सूक्ष्म-आकर्षण पर ही विशेष जोर देने लगे। "दुर्जनतोषो" न्यायानुसार मैंने उनकी बात को ही स्वीकार करके कह दिया—अच्छा, सूक्ष्म से ही सही। मेरा ऐसा कहने पर वह अवधूत जी सूक्ष्म–आकर्षण के लिए तैयार हो गए।

श्री वृन्दावन के कोसी-घाट के सामने श्री यमुनाजी की पवित्र बालुका में मैं और वह महात्मा दोनों ही ध्यानस्थ हो गए। वह प्रथम अवसर था जब कि उस गँवार जैसे दीखने वाले अवधूत को अपने सूक्ष्म-शरीर के चक्र बनाते मैंने देखा। योग-दर्शन में एक श्लोक आता है—

योगी अगड़धत्ता जी अपने निर्माणित चित्त के द्वारा ऋषिकेश चले। उनके साथ साथ मेरा भी एक निर्माणित चित्त था जो उनकी वृत्ति को देखता जाता था। ऋषिकेश आश्रम पहुँचने पर साक्षात् परब्रह्म आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के अखण्ड-मण्डलाकर सर्व-व्यापक तेज के दर्शन कर अवधूत जी को श्री प्रभुजी के सम्मुख जाना बहुत कठिन हो गया। फिर भी यथातथा कुछ साहस के साथ वह आगे बढ़ ही गए और फारसी-भाषा में कुछ प्रश्न पूछे। श्री प्रभुजी ने उनके सभी प्रश्नों के उत्तर भी फारसी-भाषा में ही दिए। अन्त में जगतनियन्ता प्रभुजी ने उनको ताड़ना दी—लगाओ इसके पांच जूते। यह हमें खींचने की इच्छा करता है। श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से निकले ऐसे शब्दों को सुनकर वह अवधूत योगी वहाँ क्षण भर भी न ठहर सका। तत्काल ही श्री वृन्दावन आ गये। हमारा निर्माणित चित्त भी उनके साथ साथ वृन्दावन आ गया।

चन्द्रमा की शीतल चाँदनी चारों ओर खिली हुई थी। श्री यमुना जी की पवित्र बालुका में ध्यानस्थ बैठे महात्मा जी अट्टहास करने लगे और यह कहते हुए ध्यान से उठे—"अरे भाई, मरवा डाले होते। "आज तो मरवा डाले होते"। मैं भी ध्यान से उठ चुका था और श्री प्रभुजी की परात्पर शक्ति एवं इस अलौकिक लीला से हृदय आल्हादित हो रहा था। उसी लहर में मैंने उनसे कहा—महात्माजी, आप तो कहते थे कि हम तुम्हारे गुरूजी को खींच लेंगे। किन्तु यह क्या हुआ जो तुम स्वयं ही खिच गए। हमारे मुख से ऐसे शब्द सुनते ही वह बहुत बिगड़ कर कहने लगे—हमने तुमसे यह कब कहा था कि हम महाप्रभुजी को खींच लेंगे। जो सारे विश्व को खींचते हैं उन्हें हम कैसे खींच सकते हैं? हमने तो समझा था कि होगा कोई सधुआ-अधुआ, उसे खींच ही लेंगे। तुम्हें पहिले ही बता

देना चाहिए था कि वह सर्वशक्तिमान् महाप्रभुजी हैं। क्यों, तुमने यह बात हमें पहिले ही क्यों नहीं बताई? इस प्रकार कह कर उल्टा हमें ही धमकाने लगे। उपर्युक्त घटना के पश्चात् उन महात्माजी की श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में अनन्य-भक्ति हो गई। कई बार नंगे पैरों वह ऋषिकेश श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ गए और अपने दुःसाहस की बार बार क्षमा याचना की। जब यह अवधूत जी श्री प्रभुजी के चरणों में पहुँचते थे, उस समय वीर-मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठ जाया करते थे। श्री प्रभुजी इनको देख थोड़ा सा मुस्करा जाया करते थे और तत्काल ही किसी आश्रमवासी भाई से कह कर प्रसाद दिला दिया करते थे। प्रसाद पाते ही अवधूतजी आश्रम से लौट आया करते थे।

प्रेरणा करके जो भोजन मँगाया करते हैं, उसके बजाय स्वयं उसके घर पहुँचकर ही प्रसाद क्यों नहीं पा लिया करते ? बात तो वही है। भोजन तो उसका ही करना है। तब इसका यह रहस्य उन्होंने बताया था—सांसारिक व्यक्तियों से कभी भी साधु को सम्पर्क स्थापित नहीं करना चाहिए। ये लोग तरह तरह की कामनाएं मन में रखकर ही साधुओं के दर्शन एवं उनकी किसी प्रकार की सेवाएं किया करते हैं। यह गृहस्थी लोग समझा करते हैं कि यदि महात्माजी ने उनकी कोई भी सेवा स्वीकार कर ली है तो अवश्य हमारी कामना पूरी कर देंगे। यह बात साधु महात्मा के लिए उचित नहीं है।

एक दिन दोपहर को हम और यह महात्माजी राधाकुण्ड की ओर जा रहे थे। चलते चलते दोपहर हो गई, लगभग एक बजने को हो गया। भोजन का समय प्रायः निकल चुका था। किन्तु वह अवधूत जी मुझ से पूछने लगे—क्यों ब्रह्मचारी जी, भूख लगी है ? हमने कहा—हाँ महात्माजी, भूख तो लगी ही है। उन्होंने तत्काल कहा—अच्छा, अभी प्रबन्ध करते हैं। इस गाँव के पटवारी को हम हुक्म करते हैं। वह मालपुए और पूरी तैयार करके रक्खेगा। किन्तु बात इससे भी नहीं करनी है। इनके ऐसा कहने के बाद जब हम थोड़ा और आगे बढ़े तो गाँव के ठीक किनारे सड़क पर वह पटवारी खड़ा मिला। हम दोनों को देखते ही हाथ जोड़ कर कहने लगा—महाराज, अभी थोड़ी देर पहिले मेरे मन में सहसा यह भावना आई कि आज कोई महात्मा मिल जाँय तो उनको अपने घर भोजन करा दूँ। बड़े भाग्य से आप दोनों मिल गए हैं। कृपा करके मेरे घर चलकर भोजन कीजिए। उसकी प्रार्थना पर जब हम उसके घर गए तो उसकी स्त्री छोटी कढ़ाई में मालपुए उतार रही थी और पूड़ी-सब्जी तैयार कर चुकी थी। मैंने जाकर

भोजन किया और थोड़ी देर में अगड़धत्ताजी भी आ गए। उन्होंने भी थोड़ा प्रसाद लिया। भोजनोपरान्त गाँव के बाहर एक वट-वृक्ष के नीचे विश्राम करके सायंकाल फिर राधाकुण्ड को चल दिए। हम इधर-उधर घूमते हुए रात को लगभग ग्यारह बजे वहाँ पहुँचे। शहर के सब लोग सो चुके थे, कोई कोई दुकान अब भी खुली हुई थी। योगी अगड़धत्ता जी पूछने लगे—ब्रह्मचारीजी, भूख तो लगी ही होगी। हमने कहा—हाँ भाई, भूख तो लगी ही है। तो महात्मा जी कहने लगे—देखो ब्रह्मचारी, यहाँ पर एक ब्राह्मण रहता है और वह हलवाई की दुकान करता है। आज तक उसने किसी साधु-महात्मा को कुछ नहीं खिलाया-पिलाया। हम अभी उसके सूक्ष्म को हुक्म करते हैं। थोड़ी ही देर में वह दो कुल्हड़ दूध लेकर आएगा। हम तो उससे बात करेंगे नहीं, तुम दूध ले लेना। थोड़ी देर में अवधूत के कथनानुसार ही घटना घटी। वह ब्राह्मण लगभग दो सेर दूध के दो कुल्हड़ लेकर राधाकुण्ड पर आया। उसने बहुत विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—महाराज, मैंने आज क किसी भी साधु-महात्मा को कुछ भी नहीं खिलाया पिलाया ह। आज अभी अभी अकस्मात् दुकान पर बैठे बैठे मेरे मन में यह भावना जागी—यदि कोई महात्मा मुझे मिल जांय, तो कम से कम आज उन्हें दूध तो पिला ही दूँ। बड़े भाग्य से आप दोनों मिल गए हैं। कृपा करके इस दूध को ही लीजिए। हमने उसके हाथों से दोनों कुल्हड़ दूध ले लिया। उस ब्राह्मण के चले जाने के उपरान्त हम दोनों ने वह दूध पी लिया। दूध पीने के पश्चात् अवधूत योगी जी कहने लगे—देखो, हम उपदेश देते हैं कि यह गृहस्थी प्राणी सांसारिक कामनाओं को लेकर आते हैं। अतः इनसे बात नहीं करनी चाहिए। हमने

स्वयं प्रेरणा करके इससे दूध मँगवाया था। अतः इसमें इस ब्राह्मण की कोई भावना या त्याग नहीं है।

इसी प्रकार हम दोनों भ्रमण करते हुए एक दिन मानसी गंगा की ओर बढ़े। बातचीत का प्रकरण चलते चलते परस्पर थोड़ा विमन-भाव हो गया। फलस्वरूप महात्मा जी खिन्न होकर दूसरे रास्ते से और हम दूसरे रास्ते से मानसी गंगा गए। मानसी-गंगा पहुँचने पर हम और महात्माजी एक चौबुर्जी पर बैठ गए। अवधूत ने पूछा—कहो ब्रह्मचारी भोजन किया। हमने कहा—अभी तो नहीं किया। उनको उस दिन हमारे प्रति मन में बड़ा क्रोध था। उसी क्रोध में अपनी मानस-शक्ति को प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए अपने हाथ की अंगुली के सकेत से एक बन्दर को अपनी ओर बुलाया। पास आने पर हमारी ओर संकेत करके बन्दर को ताड़नात्मक प्रेरणा की। उनकी प्रेरणा पाकर बन्दर बड़े वेग से हमारी ओर बढ़ा। मैंने तत्क्षण यह अनुभव किया कि योगयोगेश्वर महाप्रभु का तेज हमारे हृयद में विद्यमान है। हमने मन में दृढ़ संकल्प के साथ बन्दर को वहाँ ही रुक जाने का संकेत किया। परिणामस्वरूप बन्दर को वहीं रुक जाना पड़ा। ऐसा देखकर अवधूत को बड़ी चिढ़ हुई और तिलमिलाकर हमसे कहा—तुम्हें पता भी है, यह किसने भेजा था? मैंने कहा—नहीं। यह सुन कर महात्मा जी मनगढ़न्त बात कहने लगे—श्री प्रभुजी ने इसको ऋषिकेश से भेजा था। इसका कारण यह था कि तुमने मेरे मन को दुखाया है। श्री प्रभुजी को अपने बड़े बच्चे के मन का दुःखी होना उचित नहीं लगा। अतः तुम्हें ताड़ना देने के लिए इस बन्दर को भेजा था। किन्तु हमने अपनी मानस-शक्ति से उसे रोक दिया है अन्यथा तुम परेशान हो जाते। उसकी यह सारी बात बनावटी ही थी, सुनकर हमें मन में बड़ी हँसी आई। बन्दर को ताड़ना की प्रेरणा

तो उस ने स्वयं ही की थी। वह तो श्री प्रभुजी के आत्म-तेज के प्रभाव के कारण ही बन्दर को रुकना पड़ा था। अब वह हमसे अपने को अधिक शक्तिवाला सिद्ध करने के हेतु ही इन बातों का प्रपंच रच रहा था। मन में सब बात समझ कर भी हमने मौन रहना ही उचित समझा।

इस घटना के बाद तो अवधूत जी के मन में श्री प्रभुजी के कृपामय चरणारविन्दों के प्रति महती श्रद्धा का उदय हुआ। बारम्बार उनके चरणों की वन्दना व अर्चना करने लगे। ऊपरी तौर से चाहे वह कुछ भी शब्द कह देते थे, परन्तु वास्तविकता मन में समझते ही थे। उसके बाद कभी कभी प्रसंग आने पर वह महात्मा अपने मुख से कहा करते थे—भाई, आनन्दकन्द कृपानिधि श्री प्रभुजी तो शुद्ध ब्रह्म हैं। उनकी शक्तियों का पार कौन पा सकता है? वे तो परात्पर हैं। उनको वही जान सकेगा, जिसको वह स्वय अपना ज्ञान देना चाहेंगे। इस प्रकार स्तुति कर कर के वह महात्मा प्रायः गद्गद्-कण्ठ होकर भाव-विभोर हो उठते थे। कई बार ऋषिकेश जा जाकर इस महात्मा श्री प्रभुजी के दिव्य-दर्शन प्राप्त कर मानसिक-शान्ति प्राप्त की और कृतार्थ हुए।

सन्त-जनों के चरित्र को साधारण-जन समझ नहीं पाते हैं, एव उनकी विचित्र लीलाओं पर शंका करने लग जाते हैं। जैसे कि एक बार गोपियों को शंका हो गई थी। योगयोगेश्वर भगवान् कृष्णजी ने उनसे कहा था - यदि में बाल-ब्रह्मचारी हूं, तो यमुना जी तुम्हें पार जाने का मार्ग दे देंगी। उसी प्रकार महर्षि दुर्वासा को भोजन कराने के पश्चात् जब गोपियां वापिस चलने लगीं, तो दुर्वासा ने कहा था, यदि मैं जन्म का निराहारी हूँ, तो यमुना जी तुम्हें मार्ग दे देंगी। प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर गोपियों को दोनों ही वचन असत्य लगे थे, परन्तु यमुना जी

के मार्ग दे देने पर विवश होकर विश्वास करना पड़ा था। उसी प्रकार अवधूत योगी अगड़धत्ताजी के चरित्र में भी विरोधाभास प्रतीत होता है। पहिले वास्तव में कभी भी मैंने उन्हें कभी कुछ खाते-पीते नहीं देखा था, परन्तु बाद में भोजन करते, दूध पीते और वृक्षों के पत्ते खाते भी देखा था। यह उनकी क्या लीला थी, कहा नहीं जा सकता। कदाचित् वह मेरे सामने खाने-पीने का अभिनय करते हों, वास्तव में कुछ न खाते हों यह भी संभव हो सकता है। परन्तु यह निश्चय है कि वह पूर्ण विरक्त एवं योगानुभवी सन्त थे एवं तत्वों पर उनका पूर्ण अधिकार था।

योगी बालकृष्ण दास वैरागी

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी जब नेपाल हिमालय से लौट कर आए, तब यत्र तत्र भ्रमण करते कुम्भ के मेले पर हरिद्वार आए। उस मेले में आए हुए उनके कुटुम्बी-जनों ने उन्हें पहिचान लिया। देश में योग-प्रचार के निमित्त परिवार वालों के आग्रह को स्वीकार कर वह अपने घर लौटे। उसी समय से श्री प्रभुजी ने अपने विरक्त वेश को त्याग कर साधारण पंडित के वेश में रहना प्रारम्भ किया, ताकि कोई उनके वास्तविक स्वरूप एवं सामर्थ्य को पहिचान न सके। उस समय श्री आनन्दकन्द योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी महाराज अमृतसर में भाई के कटरे में निवास करते थे। उनके प्रखर तेज से आकर्षित होकर समय समय पर कितने ही अनुभवी श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ आया करते थे। जिन लोगों को श्री कृपानिधि जी की कृपा दिव्य अनुभूतियाँ होती थी, वे लोग श्री प्रभुजी का पूजन देव ईश्वरीय बुद्धि से करते थे एवं उनकी असीम शक्ति के अनुरूप ही अनेकों दिव्य स्तुतियाँ भी करते थे। इस प्रकार पण्डित वेश में छिपे होने पर भी अनेकों प्राणी उनकी शक्ति-सामर्थ्य से परिचित होते जाते थे; एवं उनके चरणकमलों की महिमा नगर भर में फैलती जाती थी।

संसार में दोनों प्रकार के ही मनुष्य हैं। एक ओर जहाँ श्री प्रभुजी के चरणानुरागियों की संख्या बढ रही थी, तो दूसरी ओर कुछ मन्द बुद्धि उन कृपानिकेतन के चरणकमलों के प्रति प्रतिस्पर्धा भी रखते थे। ऐसे ईर्ष्यालु लोगों के लिए उनका बढ़ता हुआ वैभव असह्य था। उन लोगों के विचार थे—यह

सब इस ब्राह्मण का पाखण्ड है, दम्भबाजी है। हममें और इनमें अन्तर ही क्या है ? जैसे हम साधारण गृहस्थ मनुष्य हैं वैसे ही यह भी गृहस्थ मनुष्य हैं। वे अज्ञानी उनके विशुद्ध आत्म-प्रकाश को न जानकर केवल आकृति-मात्र से साधारण व्यक्ति ही समझते थे। वे सोचने लगे यदि कोई करनी वाला साधु मिल जाय तो इनके इस सब प्रपंच का निराकरण कराएं। जिस प्राणी के अन्दर जिस प्रकार की तीव्र भावनाएं बन जाती हैं, समय आने पर उसी प्रकार का अवसर भी मिल जाया करता है।

अमृतसर में दुर्ग्याना नामक स्थान पर पक्के जलाशय से घिरा हुआ लक्ष्मीनारायणजी का एक विशाल मन्दिर है। श्री लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर के सामने दक्षिण भाग में एक प्राचीन भैरवजी का मन्दिर बना हुआ है, जहाँ पर भैरवजी की उपासना एवं सिद्धि के लिए साधु-महात्मा आया करते हैं। दीपावली के अवसर पर तो देश-विदेश के साधुओं का यातायात काफी सख्या में रहता है। श्री भैरवजी के मन्दिर में अनायास ही ऐसे महात्मा आए जिन्होंने बड़े प्रयास से भैरव सिद्ध किया था। वह महात्मा लोगों से मान प्राप्त करने के लोभ में अपने सिद्ध किए भैरवजी की शक्ति से लोगों के कई प्रकार के अच्छे और बुरे कार्य करते रहते थे। संयोग से श्री प्रभुजी से ईर्ष्या रखने वाले लोगों को भी उस महात्मा के दर्शन प्राप्त हुए। अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए उपयुक्त अवसर आया जान-कर उन लोगों ने अत्यन्त विनम्रता से उन महात्माजी से प्रार्थना की – यहाँ पर एक गृहस्थ ब्राह्मण ने बड़ा दम्भ रचाया हुआ है। उनके शिष्य उन्हें साक्षात् भगवान् सदाशिव, विष्णु आदि कहकर उनकी पूजा करते हैं। न जाने उन्हें कौन सी

सिद्धि है, जिसकी शक्ति से अपने पास आने वाले हर व्यक्ति को अपना बना लेते हैं। उनके सम्मोहन में बंधे सभी व्यक्ति उनकी सब प्रकार से उत्तम से उत्तम सेवा करते हैं। आप अपने योगशक्ति से उनसे इस प्रपंच को छिन्न-भिन्न करके जन साधारण का भला कीजिए। यदि इस पाखण्ड का निवारण हो गया तो हम सभी लोग अधिक से अधिक तन, मन, धन से आपकी सेवा करेंगे। महात्मा ने इन लोगों का दुराग्रह स्वीकार कर लिया एवं बड़े अहंकार में भर कर श्री प्रभुजी के दरबार में आ पहुँचे। महात्मा के मन में अपने भैरवजी की शक्ति का बड़ा ही अभिमान था। वह अपनी शक्ति के सामने किसी की गणना नहीं समझता था। इसी अभिमान के वशीभूत पहुँचते ही बड़े अपशब्दों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया—अरे ब्राह्मण! यह क्या पाखण्ड फैला रक्खा है ? तू स्वयं को ईश्वर कहकर पुजवाता है। यह पाखण्ड छोड़ कर शीघ्र ही यहाँ से दूर हो जा। अन्यथा हम अपनी योगशक्ति से तुम्हें सीधा कर देंगे। श्री लीलानिकेतन उसके अज्ञान पर मन में हँसे, परन्तु ऊपर से अनजान जैसा व्यवहार करते रहे। कटुवचनों से जरा भी क्षुब्ध हुए बिना धीर एवं संयत वाणी में बोले—अरे महात्मन्, हम तो साधारण ब्राह्मण हैं और आप बड़े महात्मा हैं। साधु तो स्वभाव से दयालु होते हैं, आपको ऐसे कटु शब्दों का प्रयोग करना शोभा नहीं देता। श्री प्रभुजी के इस प्रकार मान दिए जाने पर भी वह दुर्मन शान्त नहीं हुआ, न हीं वह उनके इन भाव-गम्भीर शब्दों का आशय ही समझा। वह पूर्ववत् कुछ कुछ कहता रहा, परन्तु श्री प्रभुजी शान्त ही रहे। सर्वान्तर्यामी श्री प्रभुजी की अभिलाषा उन महात्मा का अपमान करने की नहीं थी। वह जानते थे कि वह थोड़ी देर तक बकवास करके स्वयं ही शान्त हो जाएगा, और उसके भैरवजी की

शक्ति भी यहाँ व्यर्थ ही रहेगी। अतः साधु के इस प्रकार बड़बड़ाने का परिणाम ही क्या हो सकता है? अन्ततः उसे निराश लौटना ही पड़ेगा।

उस समय हमारे गुरुभाई ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी भी श्री प्रभुजी के चरण कमलों के समीप ही बैठे थे। गुरुदेव की भक्ति से ओत-प्रोत उनका हृदय अधिक न सह सका और आवेश में भरकर श्री करुणानिधान के आन्तरिक भावों का विचार किए बिना ही वह ताड़ना के स्वर में उस महात्मा से बोले—अरे नीच महात्मन्! मैं तुम्हें और तुम्हें यहाँ भेजने वालों को खूब जानता हूँ। उन करुणार्णव त्रिलोक-पावन की दिव्य शक्ति को तुम क्या समझ सकते हो? क्या देख सकते हो? तुम्हारे जैसों के ऐसे भाग्य कहाँ कि इनके दिव्य-स्वरूप के दर्शन प्राप्त कर सको। फिर सम्मुख बैठी एक आठ वर्ष की बालिका की ओर संकेत करते हुए ब्रह्मचारी जी ने कहा—अरे, तू उन सर्वशक्तिमान् की शक्ति को क्या देखेगा? यह बालिका ही तुझे सब कुछ दिखा देगी। आँख खोल कर देख—तेरे सामने यह कौन बैठी है? ब्रह्मचारी जी के ऐसा कहने के बाद ज्योंही उस महात्मा ने आँख उठा कर देखा तो बड़े आश्चर्य में पड़ गया। अब सम्मुख बालिका नहीं अपितु साक्षात् अष्टभुजी महामाया भगवती दुर्गा एक दिव्य सिंहासन पर बैठी दिखाई दी। तीव्र तप उपासना के बाद सिद्ध किया हुआ भैरव उस महात्मा का संग छोड़कर अपनी माँ दुर्गा की गोद में बैठ गया। भैरव ने भगवती से करबद्ध प्रार्थना की—माँ, क्या आज्ञा है? क्या सेवा करूँ? भगवती ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी—बेटा भैरव, इस दुर्मन महात्मा को तीव्र ताड़ना देकर यहाँ से भगा दो। इसने नित्य-चेतन परब्रह्म का अपमान करने का प्रयत्न किया है, यह इसकी परम दुर्मति है। माँ भगवती दुर्गा का आदेश पाते ही भैरव ने

उस महात्मा का त्रिशूल उठाकर उसे पीटना प्रारम्भ किया ताड़ना से भयाकुल होकर महात्मा ने श्री प्रभुजी की ओ रक्षा के अभिप्राय से देखा तो उसे उनका सदाशिव स्वरू दिखाई दिया। यह अलौकिक दृश्य देखकर उसे बोध हुआ और उन अगाध कृपासागर के चरण कमलों में विनम्र करबद्ध प्रार्थना करने लगा—हे प्रभुजी, आप के इस योगैश्वर्य क नहीं जानता था। अतः अज्ञान में कहे गए कटु शब्दों के लिए बारम्बार क्षमाप्रार्थी हूँ। कृपा करके मेरी रक्षा कीजिए। हे दयानिधे, भैरवजी की कृपा से ही मेरा संसार में मान है। मेरे सारे काम बन रहे हैं। अत: भैरवजी को लौटाने की कृपा करें। अकारण दयालु श्री प्रभुजी उसकी करुण-पुकार से द्रवित हो गए। उसका भैरव लौटा दिया और महात्मा जी को एकदम अमृतसर छोड़ कर चले जाने की आज्ञा दी। महात्मा जी श्री प्रभुजी का आदेश शिरोधार्य कर तत्काल अमृतसर से कहीं प्रस्थान कर गए और उनको बहका कर लाने वाला दुर्जन समुदाय भी निराश होकर लौट गया। परन्तु साथ ही इन लोगों के मन में भी यह धारणा बन गई श्री रामलाल जी महाराज कोई साधारण ब्राह्मण नहीं है। कोई सर्व समर्थ पूर्ण पुरुष अपने को इस वेश में छिपाए हुए हैं, जिनकी महिमा प्रत्येक व्यक्ति नहीं जान सकता।

इस प्रसंग में ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी ने जो कार्य किया था, वह श्री प्रभुजी को प्रिय नहीं था। उस महात्मा के चले जाने के बाद श्री प्रभुजी ने ब्रह्मचारी जी को आज्ञा दी—तुमने हमारे सामने हमारी इच्छा के विरुद्ध अपनी शक्ति का परिचय दिया है। अतः तुम हमारे पास से चले जाओ। श्री प्रभुजी का यह कठोर आदेश सुनकर श्री ब्रह्मचारी जी ने विह्वल होकर उन कृपामय के चरण कमलों में बारम्बार विनय पूर्वक प्रार्थना

की—प्रभो आप सर्वसमर्थ हैं। आप अपने चरण कमलों से छुड़ाकर मुझे कहाँ भेज रहे हैं? आपके चरण कमलों के अतिरिक्त मेरे लिये और कौन सा स्थान है? दीन बन्धुजी, कृपा करके बताइए कि मैं कहाँ चला जाऊँ? ब्रह्मचारीजी के करुणापूर्ण वचनों को सुनकर दयासागर जी को दया आ गई। बोले—बेटा, अब मेरे मुख से वचन निकल गया है। एक बार तुम्हें जाना ही है परन्तु शीघ्र ही लौटकर आजाओगे। तुम मौन होकर कहीं भी चले जाना। जो भी प्रथम व्यक्ति तुम्हें बुलाएगा और भोजन कराएगा—तुम उसी के साथ यहाँ वापिस आ जाना। वह व्यक्ति हमारा भक्त होगा और उसका यहाँ से सब प्रकार से भला होगा।

रहे हैं ! यह महती कृपा तुम्हें कहाँ से उपलब्ध हुई है ? तुम किसके शिष्य हो ? इस समय ध्यान में तुम किसे देख रहे हो ? महात्मा के इस प्रकार के वचनों को सुनकर ब्रह्मचारीजी ने उत्तर दिया—महाराज, जीवों पर परम अनुग्रह करने वाले योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज का मैं शिष्य हूँ। और उन्हीं सर्वशक्तिमान् की परम कृपा से मुझे हर समय दिव्यानुभव होते रहते हैं। यह सुनकर महन्त बालकृष्णदास ने अत्यन्त आदरपूर्वक ब्रह्मचारीजी को अपने पास बैठाकर भोजन कराया। भोजनोपरान्त बालकृष्णदास ने अपनी लालसा प्रकट करते हुए ब्रह्मचारी जी से कहा—भाई, अपने उन सर्व-समर्थ सदगुरुदेवजी के चरणों में मुझे भी ले चलिए, जिससे उनकी परम कृपा को प्राप्त कर मैं भी कृतार्थ हो सकूँ। श्री प्रभुजी के वचनों का स्मरण करके ब्रह्मचारी जी उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उनको श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में लिवा लाए।

वैरागी बालकृष्णदासजी के मन में अपने विरक्त वेश का अभिमान तो था ही, फलतः श्री प्रभुजी के चरणकमलों में प्रणाम आदि नहीं किया। प्रत्युत दोनों हाथ उठाकर 'महाराज, आपकी जय हो' शब्द उच्चारण करके एक प्रकार से आशीर्वाद सा देने का ही प्रयास किया। अन्तर्यामी श्री प्रभुजी उस महन्त के अन्तर्गत भावों को पहिचान गए और उसको आदरपूर्वक एक आसन पर बैठा दिया। थोड़ी देर बाद प्रसंग चलने पर महन्त जी ने जिज्ञासा की—प्रभो, क्या इस कलिकाल में भगवान् श्री रामचन्द्र जी के दर्शन हो सकते हैं ? उत्तर में श्री प्रभु जी ने प्रेमपूर्वक कहा—हाँ, दर्शन हो सकते हैं। तो उन्होंने प्रार्थना की—कृपा करके मुझे दर्शन कराइए। श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी—यदि तुम दर्शन के इच्छुक हो, तो जो भजन तुम किया करते हो उसे ही हमारे सामने बैठ कर करो। श्री प्रभुजी

गई थी। बालकृष्णदास प्रसन्न मन से तत्काल रुपये लेकर चल पड़े
मन में सोचते जाते थे-अच्छा हुआ, प्रभुजी को याद आ गया
अन्यथा अनर्थ हो जाता। मल्लाह रुपये पाकर प्रसन्न हो जाएगा
वास्तव में बालकृष्णदासजी मल्लाह के अन्तर्गत भावों से
अनभिज्ञ थे, अतः अपने ही दृष्टिकोण से विचार कर रहे थे।
उधर मैंडू मल्लाह अपनी ध्यानावस्था से सब कुछ जान रहा था
उसे लग रहा था कि वैरागी बालकृष्णदास मेरे परिश्रम पर
पानी फेरने आ रहे हैं। बड़े भाग्य से आज संसार सागर से
पार उतारने वाले परम करुणासागर योग योगेश्वर श्री प्रभुजी
के दर्शन एवं कुछ सेवा करने का सुअवसर मिला था। किन्तु
यह वैरागी मेरी उस जरा सी सेवा का मूल्य यहीं पर दे देने
को आ रहा है। यह तो इसने बड़ा बुरा किया। इन्हीं विचारों
में मग्न मैंडू के पास बालकृष्णदासजी आ पहुँचे और बोले-अरे
भाई मल्लाह, अभी थोड़ी देर पहिले जो महाराज जी तुम्हारी
नाव से त्रिवेणी-स्नान करके गए हैं, वह तुम्हें दस रुपया
देना भूल गए हैं। वही रुपये लेकर उन्होंने हमें भेजा है, अतः
तुम यह रुपये ले लो। मल्लाह यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोध
में भरकर बोला—ओ वैरागी, तुम्हारे सिर पर इतनी लम्बी
जटाएं हैं, सारे शरीर पर विभूति लगाई हुई है। कंठ में
लम्बी लम्बी तुलसी की मालाएं पहिने हो, फिर भी तुम्हारी
यह दशा है। यह तुम्हारा मन बड़ा दुष्ट है जो श्री सद्गुरुदेव
की लीलाओं में अन्याय की भावना करते हो। तुम्हारे इस पाप
के कारण तुम्हें अभी कुष्ठ क्यों न हो जाय? मैंडू के मुख से
इन शब्दों के निकलते ही वैरागी को तत्काल कुष्ठ रोग हो
गया। ऐसा कठोर दण्ड पाकर तत्काल ही वह श्री प्रभुजी के
चरण-कमलों में लौट आए और सारा वृतान्त सुना कर मल्लाह
के वचन से हुए कुष्ठ रोग के चिन्ह दिखाए। श्री प्रभुजी ने यह

चरणारविन्दों में आकर अनन्य श्रद्धा-भाव से तन्मय होकर चिन्तन करता है, उसका वह कृपानिधान सब प्रकार से भला करते हैं।

गुरु बहिन के दर्शन

भाई बालकृष्णदास जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से यह घटना सुनाई थी। वह एक बार भ्रमण करते करते बनारस के पास के किसी गाँव से निकल रहे थे। गाँव का नाम इस समय हमें स्मरण नहीं आ रहा है। वहाँ पर उन्होंने उस गाँव के समीप रहने वाली एक योगिनी के विषय में चर्चा सुनी। भाई श्री बालकृष्णदास जी को उसके दर्शन की इच्छा हुई, अतः पता पूछ कर उस देवी के स्थान पर पहुँचे। उस समय वह योगिनी अपने स्थान पर उपस्थित नहीं थी। अतः ध्यानावस्था में बैठकर उन्होंने यह जानने का प्रयास किया कि वह योगिनी किस कोटि की है? अभी तक यह ध्यानस्थ ही थे कि वह योगिनी कहीं से आ पहुँची। उन्हें देखकर अपनी शिष्याओं से कहा-देखो, यह हमारे गुरुभाई है। बड़े भाग्य की बात है कि यह यहाँ आ पहुँचे हैं। तुम लोग मन लगाकर इनकी सेवा करो। बहुत देर बाद जब बालकृष्णदास जी ध्यान से उठे, तब उस योगिनी की शिष्याओं ने इनकी बहुत सेवा की। जब योगिनी ने उन्हें अपना गुरुभाई बताया, तब इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—बहिन जी, कृपा कर के बताइए कि मैं आपका गुरुभाई कैसे हूं? उस देवी ने उत्तर दिया-भाई, तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं है। श्री प्रभुजी नेपाल (हिमालय) को जाते समय यहाँ होकर निकले थे। मैं श्री महादेव जी का पूजन करके जब शिवालय से बाहर निकली तो सहसा मुझे श्री प्रभुजी के दर्शन प्राप्त हुए। मुझे लगा साक्षात् भगवान् सदाशिव के ही दर्शन

योगाभ्यासी मानिकचन्द दलाल

अनन्त ज्योति श्री सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के असंख्य पावन चरित्रों का वर्णन करना मेरे जैसे साधारण प्राणी के लिए उतना ही दुर्गम है जितना कि छोटी सी डोंगी के अवलम्ब से दुस्तर सागर को पार करना। अथच उन परम कृपा निकेतन श्री प्रभुजी के चरण कमलों को हृदय में धारण करके उन्हीं की कृपाशक्ति एवं प्रेरणा से निजानुभूत यह छोटी सी घटना सर्वसाधारण के हितार्थ लिखने का आयोजन कर रहा हूँ। यद्यपि इस घोर कलिकाल में सहज श्रद्धा-विश्वास करने वाले प्राणी अत्यल्प हैं, फिर भी श्रद्धालु जिज्ञासु समुदाय के लिए यह चरित्र बड़ा प्रेरक एवं श्रद्धा दृढ़ करने वाला है।

अपनी बाल्यावस्था ; लगभग १४-१५ वर्ष की आयु में ; जब मैं अमृतसर में विद्याध्ययन किया करता था, मेरे गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी, श्रद्धेय श्री मुलखराज जी के साथ एक बार अमृतसर में आए हुए थे। गोपालानन्द जी के दर्शन इससे पूर्व मैं ऋषिकेश में अपने दीक्षा-काल में कर चुका था। अतः इन महानुभावों के आगमन की सूचना पाकर मैं उनके दर्शनार्थ गया। उस समय ये दोनों महात्मा अमृतसर रेलवे स्टेशन के समीप ही गागरमल की धर्मशाला में ठहरे हुए थे। बड़े गुरुभाई होने के नाते मैं उन दोनों को प्रणाम करके बैठ गया। ब्रह्मचारी जी उस समय ध्यानस्थ थे। थोड़ी देर बाद मेरे सामने ही इस प्रकार कहते हुए ध्यान से उठे—हे प्रभो, हे करुणासागर, हे दीनबन्धो आप आप ही हैं। उस प्रेम भाव के

इस रोग को स्वयं कृपानाथ जी भोगेगें, और वह रोगी व्यक्ति बिल्कुल रोगमुक्त होकर पूर्व स्वस्थ हो जायगा।

यह वृतान्त सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, यद्यपि मैं दीक्षित हो चुका था। योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी की अनुपम कृपाओं का अनुभव मेरे मन को अवश्य था और मेरा मन शक्तिपात दीक्षा के महत्व को भी भली-भाँति समझ चुका था। किन्तु इस प्रकार के अद्भुत कार्य भी होने सम्भव हैं, इस विषय का मन में ज्ञान नहीं था। अतः सहसा मन विश्वास न कर सका और मैंने ब्रह्मचारी जी से निवेदन किया–भाई जी, यदि यह बात सत्य है तो मैं आश्रम में अपने आप जाकर देखना चाहता हूँ। ब्रह्मचारी जी ने कहा—प्रसन्नता से जाओ और उन कृपानाथ जी की इस अनुपम कृपा को देखो।

ब्रह्मचारी जी के वचनों को सुनकर मेरे मन में श्री प्रभु जी के चरण कमलों में ऋषिकेश जाने की उमंग भर गई, परन्तु संस्कार वशात् मैं दो दिन नहीं जा सका। तीसरे दिन शाम की गाड़ी से अमृतसर से चलकर अगले दिन प्रातः ऋषिकेश पहुँचा। आश्रम में प्रवेश करके देखा - सामने आराम कुर्सी पर नैपाली काला धुस्सा (एक विशेष प्रकार का काला कम्बल) ओढ़े हुए श्री प्रभुजी बैठ थे। उनका मुख-मण्डल प्रसन्न होते हुए भी क्लान्ति के स्पष्ट चिन्हों से युक्त था। उनके चरण कमलों के समीप ही एक व्यक्ति बैठा हुआ था, जो बिल्कुल क्षीणकाय एवं तेजहीन मालूम पड़ता था। बस अस्थि-पंजरावशेष ही दिखाई देता था।

मैंने श्री प्रभुजी के चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम करके विनम्र शब्दों में पूछने का साहस किया—हे दीनबन्धो! आज आप उदास से कैसे हो रहे हैं? श्री प्रभुजी ने अत्यन्त गम्भीर-वाणी में उत्तर दिया—क्यों, कैसे हो रहे है? मै तो कृपानाथ

जी की वाणी सुन कर चुप हो गया, किन्तु श्री प्रभुजी के पास बैठे उस क्षीणकाय व्यक्ति का कण्ठ भर आया और वह एकदम रोने लगा। मैंने आश्चर्य में आकर उससे पूछा—भैया, तुम कौन हो? और किस कारण रो रहे हो? इसी बीच में श्री प्रभु जी शान्त-भाव से अत्यन्त मधुर वाणी में उसे सान्त्वना दे रहे थे—भाई; रोता क्यों है? इस प्रकार के कार्य तो यहाँ होते ही रहते हैं। मैंने उस व्यक्ति से आग्रह करके पूछा—भाई, सत्य बतलाओ। तुम्हारे इस प्रकार सहसा रो पड़ने का क्या कारण है? उस व्यक्ति का नाम मानिक चन्द्र था, और वह अमृतसर में ही सोने चाँदी की दलाली करता था। मानिक चन्द्र दलाल ने बड़े विनम्र शब्दों में मुझसे कहा—भाई जी, श्री प्रभुजी का शरीर जो आपको दुर्बल सा दिखाई दे रहा है, इसका कारण मैं ही पापात्मा हूँ। मैं इन दीनबन्धु जी की दया का क्या बदला दे सकूँगा? और क्या ही इन परम कृपालु की सेवा कर सकता हूँ? यह करुणानिधि अकारण कृपालु हैं। दीन बन्धु हैं, अनाथों के नाथ हैं, शरणागतों के रक्षक हैं। यह कहकर मानिक चन्द ने जो आप बीती कथा मुझे सुनाई थी, वह निम्न प्रकार से है।

लगी । अकस्मात् रात्रि में मेरी स्त्री ज्ञानदेवी को स्वप्न में भगवान् श्री कृष्ण जी के दर्शनों की अनुभूति हुई । उसे अनुभव हुआ कि भगवान् कह रहे हैं—अपने पति को ऋषिकेश ले जाओ । वहाँ पर एक पूर्ण योगिराज हैं, उनके साथ इसका संस्कार भी है । उनकी कृपा से इसका जीवन बच जायेगा ।

भगवान की पवित्र प्रेरणा से मेरी स्त्री के मन में मुझे ऋषि-केश ले जाने का दृढ़ संकल्प बन गया । मेरे मन में भी विचार आया—ऋषिकेश हीं चले चलें । और कुछ न भी हुआ तो कम से कम श्री गंगा जी का पवित्र-तट तो अन्तिम समय मिल ही जायगा । मेरी स्त्री बड़ी कठिनाई से मुझे ऋषिकेश तक ले आई, मेरी अवस्था मरणासन्न थी । बड़ी कठिनता से मेरी पत्नी ने मुझे ताँगे में डाला और आश्रम के द्वार पर ही किसी प्रकार मुझे उतरवा कर डाल दिया । उस समय श्री प्रभुजी भ्रमणार्थ गए हुए थे । उनके अनुपम चमत्कारों के विषय में सुनकर वह स्वाँति-नक्षत्र की बूँद के लिये चातक के समान श्री प्रभुजी की प्रतीक्षा करने लगी । भ्रमण से लौटने पर श्री प्रभुजी ने दरवाजे पर मुझे पड़ा देखकर पूछा—यह कौन है ? क्यों आया है ? कहाँ से आया है ? मेरी पत्नी ने मेरा सारा वृतान्त आदि से अन्त तक श्री चरणों में निवेदन किया । मेरे असाध्य रोग की बात सुनकर बाहरी मर्यादा का पालन करते हुए श्री प्रभुजी ने भी उत्तर दे दिया—ऐसे रोगी का हम क्या कर सकते हैं ? यह न कोई साधन कर सकता है और न यौगिक-क्रियाएँ करने की शक्ति ही शेष है । ऐसी दशा में औषधि-सेवन ही ठीक रहेगा । और कहीं ले जाकर इसका इलाज कराओ । अनाथनाथ जी के ऐसे रूक्ष एवं दया शून्य वचन सुनकर मेरी पत्नी का हृदय अत्यन्त दुःखी हुआ और उसके नेत्रों में जल भर आया । उसने

अत्यन्त कातर-वाणी में दीन बन्धुजी से प्रार्थना की—हे प्रभो, अब संसार में आपके चरण कमलों के अतिरिक्त हमारा कोई सहारा नहीं है। अब जो कुछ भी होगा, आपके चरण कमलों में ही होगा। अब हम दूसरी जगह कहीं नहीं जायेंगे। हमारी पहुँच तो यहीं तक थी, इससे आगे और कहीं जाने की हमारी शक्ति नहीं है। उसके दीन वचनों को सुनकर दीन बन्धुजी के मन में कृपा की लहर आ गई। प्रसन्नता से बोले—अच्छा, अच्छा, देखा जायगा। फिर मेरी पत्नी से बोले—अपने पति से पूछ कि कौन सी वस्तु खाने की रुचि है? मेरे मन में उस समय खटाई पड़ी, तेल में तली, बैंगन की पकौड़ी खाने की इच्छा हुई। मेरी स्त्री ने मेरी यह इच्छा श्री प्रभुजी के चरण कमलों में निवेदन करदी। यद्यपि तेल की तली यह पकौड़ी उस समय मेरे लिए महान कुपथ्य थी, फिर भी श्री प्रभुजी ने पूर्ण प्रसन्नता से आज्ञा दी—यह जो कुछ भी खाना चाहता है, अवश्य प्रेम से इन्हें खिलाओ। श्री प्रभुजी का आदेश पाकर चकित सी मेरी पत्नी तेल की तली वैसी पकौड़ी ले आई और मुझे खिलादीं। उन्हें खाते ही मेरा शरीर चेतना शून्य हो गया। मेरी यह दशा देखकर मेरी पत्नी व्याकुल होकर रोने लगी। किन्तु उधर मेरे साथ इन कृपानिधि जी की कुछ और ही लीला हो रही थी। मुझे उसी बेहोशी में एक स्वप्न सा दीखा—महान् तेज-मंडल के साथ श्री प्रभुजी मेरे समक्ष खड़े होकर कह रहे थे—मानिकचन्द, तू अब इस कष्ट को नहीं भोग सकता। यदि भोगेगा तो तीन दिन में ही त्रिलोकी से बाहर हो जायगा। अतः ला, अब तेरा यह शेष कष्ट हम लेकर भुगता देते हैं। मुख खोल। जब मैंने मुख खोला, तो एक अद्भुत आश्चर्य हुआ। मेरे मुख से एक भयंकर काला काला सा गोला निकल

कर श्री प्रभुजी के मुख के प्रविष्ट हो गया। मेरी स्त्री क्या समझती कि वह अनाथों के नाथ परम कृपासागर उस समय मेरे ऊपर कैसी कृपा कर रहे थे ? पर दुःख कातर प्रभु ने मेरा रोग अपने शरीर पर ले लिया था—यह वह अज्ञानी कैसे जान सकती थी ? अतः वह मेरे अनिष्ट की आशंका के कारण व्याकुलता में निरन्तर रोती रही।

उधर श्री प्रभुजी ने एक कमरे में एक निवाड़ का पलंग बिछवा लिया था। अकस्मात् पूर्ण रूप से नारोग एवं स्वस्थ उनके शरीर में मेरे रोग के पूरे-पूरे लक्षण प्रकट हो गए। मेरे समान ही बुखार, खाँसी एवं दस्त श्री प्रभुजी को ज्यों के त्यों लग गए। मेरी पत्नी का रोना सुन कर श्री दीनबन्धु जी ने उसके पास एक लड़का भेजा कि उससे जाकर कहना कि रोने घबराने की कोई बात नहीं है। उसका पति एक घन्टे में राजी होकर बोलेगा। लेकिन अज्ञान के कारण वह इसको केवल मात्र साधारणआश्वासन ही समझी, और पूर्ववत व्याकुल होती रही। थोड़ी देर बाद मुझे चेतना हुई और मैंने स्वयं कहा—अरी, तू रोती क्यों है! देख, मेरे सारे रोगों को कृपानाथ श्री प्रभुजी अपने शरीर पर लेकर स्वयं भोग रहे हैं। तू ऊपर चबूतरे पर जाकर देख तो, मेरा सारा कष्ट दीनरक्षक ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। वह स्वयं मेरा रोग भुगतान कर रहे हैं और मैं बिल्कुल राजी हो गया हूँ। मेरी स्त्री ने जब उन कृपा-निधि की ऐसी दशा देखी तो बड़े आश्चर्य में पड़ गई और प्रभु जी की इस अनुपम कृपा का स्मरण कर गद्‌गद् हो गई।

मेरे कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपने तन पर निरन्तर तीन दिन और तीन रात्रि भोग कर आज ही समाप्त किया है; और अब यह कृपानाथ जी घनघोर बादलों से मुक्त हुए निर्मल

उपाय है, वह यह कि हमारे पास आने के बाद से ध्यान-समाधि का निरन्तर अभ्यास करके दस बारह वर्षों में तुमने जो पुण्य-संचय किया है, उसका संकल्प करदो। उसके फल से दस-पाँच वर्ष और तुम्हारा यह शरीर तो बना रहेगा परन्तु फिर तुम्हारी यह ध्यान-स्थिति समाप्त हो जायगी। घर जाकर अपनी पत्नी और बाल-बच्चों के साथ विचार करके कल हमें आकर अपना निश्चय बता देना।

मानिकचन्द घर गया। उधर उसकी धर्मपत्नी ज्ञानदेवी ने यह सब बातें अपनी ध्यान-स्थिति में पहिले ही देख ली थीं! उसने आते ही अपने पति को समझाना प्रारम्भ कर दिया "यह बहुत अच्छा सुयोग बना है। तुम्हारी संप्रज्ञात योग की बड़ी उच्चावस्था बन चुकी है और कल्याण-धन आनन्द कन्द श्री प्रभुजी सशरीर सामने विराजमान हैं। घर में किसी का पैसा भी लेना-देना शेष नहीं है। बाल-बच्चे सब प्रकार से सुखी हैं। भविष्य का समय कैसा होगा—कहा नहीं जा सकता। ध्यान-योग का पुण्य संकल्प कर देने के बाद पुनः ऐसी स्थिति नहीं बन सकेगी ऐसा स्वयं श्री प्रभुजी के मुखारविन्द से निकला है। ध्यान-स्थिति नष्ट हो जाने पर फिर आप शरीर धारण करके भी क्या प्राप्त कर सकेंगे? आपकी इतनी उच्च ध्यान-स्थिति, सम्मुख स्वयं कृपा सागर श्री प्रभुजी का विराजमान होना, घर-गृहस्थी के सब प्रकार के कार्यों का पूर्ण हो चुकना—इससे बढ़कर और कौन सा उत्तम समय होगा? यदि आनन्द-कन्द श्री प्रभुजी कृपा करके मुझे भी ऐसा सुयोग दें, तो मैं कभी भूल कर भी पीछे नहीं हटूँगी। मेरे विचार में संसार के मोह पाश में फँस कर इस सुअवसर को छोड़ना उचित नहीं है।" परम साध्वी अपनी धर्मपत्नी के यह हितकारी वचन मानिक-

पालन किया। मानिकचन्द श्री प्रभुजी के चरण कमलों का ध्यान करते हुए भू-शैय्या पर बैठ गए और ध्यान-मग्न हो गए। उनके मुख-मण्डल पर अपूर्व शान्ति एवं तेज विराजमान था और वह पूर्ण रूप से आनन्दित प्रतीत होते थे। इसी बीच में उनके किसी कुटुम्बी ने आकर उन से कहा—मानिक चन्द जी, सुना है आज आपकी परलोक-यात्रा हो रही है। किन्तु आज पंचक लग गए है, अतः आजआप के शरोर का छूटना शेष कुटुम्ब के लिए बहुत अनिष्टकारी होगा। मानिकचन्द हँसे और बोले—अच्छा, पंचक लग गए हैं। फिर अपने पुत्र हीरानन्द को बुलाकर आज्ञा दी—बेटा, उन योग योगेश्वर श्री प्रभुजी के चरणों में जाकर निवेदन करो कि पंचक लग जाने के कारण कुटुम्बी जन शंकित हैं। ऐसी दशा में आपकी क्या आज्ञा है? हीरानन्द ने श्री प्रभुजी के चरणों में पहुँच कर अपने पिता का सन्देश निवेदन किया। श्री प्रभुजी सुन कर हसे और अपने गले से उतार कर एक पुष्प माला प्रसाद के रूप में हीरानन्द को देकर बोले—जाओ, मानिकचन्द को यह पुष्पमाला पहिना र कहना कि प्रसन्नता से पंचक का समय निकाल ले।

हीरानन्द ने आकर अपने पिता को माला पहिना दी और श्री प्रभुजी की आज्ञा निवेदन कर दी। श्री प्रभुजी की ऐसी आज्ञा पाकर मानिकचन्द पाँच दिन के लिए पुनः सचेत होकर पूर्ववत् पवित्र वातावरण में अपना ध्यानाभ्यास करते रहे। पाँच दिन तक उनके और रुक जाने के चमत्कार से मानिक चन्द के कुटुम्बियों को बड़ा आश्चर्य हुआ और मोह के कारण वे लोग श्री प्रभुजी से प्रार्थना करने लगे—मानिकचन्द को आप अभी कुछ महीनों तक और भी संसार में बना रहने दें। किन्तु यह बात मर्यादा विरुद्ध होने के कारण श्री प्रभुजी ने स्वीकार

नहीं की। मानिकचन्द ने अपने प्रयाण के दिन एकादशी की पुण्य-बेला में उन त्रिभुवन वन्दित अनुपम चरण कमलों में अनुपम योग-विधि से मन को लीन करके अपने नश्वर तन को त्याग दिया। वहां उपस्थित श्री प्रभुजी के कृपा पात्र भक्त-समाज ने देखा कि मानिक चन्द के शरीर से एक तेज-धारा निकल कर श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में लीन हो गई।

लाला मानिक चन्द दलाल की धर्मपत्नी ज्ञान देवी बड़े ही पवित्र एवं उच्च विचार वाली पतिपरायणा साध्वी स्त्री हैं। पति के देहावसान के बाद उन्होंने अपने जीवन को और भी तपोमय बना लिया है। श्री प्रभुजी के चरण कमलों का हृदय में चिन्तन करते हुए, धैर्य धारण करके अपने पतिदेव द्वारा सौंपे गए बाल-गोपालों के संरक्षण के भार को बड़ी तत्परता से निभाने में लगी हुई हैं। उनके परिवार में श्री प्रभुजी की कृपा से सब प्रकार से समृद्धि, सुख और शान्ति है। मानिक-चन्द जी का परिवार पुत्र पौत्रों से युक्त वृद्धि पा रहा है। ज्ञान-देवी अभी विद्यमान हैं। अपने पतिदेव के समान हर समय श्री प्रभुजी की कृपा इन पर बनी रहती है। ध्यान-स्थिति बड़ी उच्च एवं दिव्य है। नित्य नियमित ध्यानाभ्यास करती हैं एवं उन कृपामय श्री प्रभुजी की अनुपम कृपा के अमृत-प्रसाद को प्राप्त करती हैं।

योगी अमरनाथ जी

श्री अमरनाथ जी आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के शरणागत होने वाले आदर्श जिज्ञासु भाइयों में से एक थे। इनका जन्म पवित्र ब्राह्मण कुल में पंजाब प्रान्तार्न्तगत गाँव में हुआ था। यह जन्म से ही बहुत पवित्र एवं आदर्शशील-स्वभाव के थे। मन में भगवद्दर्शन की पवित्र अभिलाषा बाल्यकाल से ही बनी रहती थी। परन्तु उस मार्ग के प्रदर्शक किसी परिपूर्ण गुरुदेव के दर्शन न पाने के कारण मन में बराबर अशान्ति रहती थी। प्रतिक्षण उनके मन में यह अभिलाषा तीव्रतर होती जाती थी—पूर्ण साक्षात्कार कराने वाले कोई गुरुदेव मिल जाँय, तो उनके चरण कमलों पर अपने को न्यौछावर करके धन्य कर लूँ।

अमरनाथजी का विद्याध्यय बहुत साधारण था। इनके भाई अमृतसर में लक्ष्मणसर पर होटल की दुकान करते थे। भाई अमरनाथ जी भी किसी साधारण व्यवसाय के लिए अमृतसर में ही निवास किया करते थे। सत्संग की प्रवृत्ति तो बराबर बनी ही रहती है। इसी बीच में इन्होंने आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की महिमा किसी व्यक्ति के मुख से सुनी और इन्होंने नित्य सत्सग में आना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप शनैः शनैः श्री प्रभुजी के चरण कमलों में इनकी निष्ठा परिपक्व होने लगी। समय आने पर इन्होंने पवित्र योग-मार्ग में योग-दीक्षा प्राप्त की। दीक्षित होने पर इनकी ध्यान-स्थिति अनवरत बढ़ने लगी और इनका अभ्यास क्रमानुसार बढ़ता गया। ध्यान-स्थिति के परिपक्व होने पर इन्होंने ध्यान-योग से ईश्वर के ऐश्वर्य का बहुत अवकोलन किया। योग-दर्शन के विभूति-पाद में भगवान् पतजलि महाराज ने एक सूत्र लिखा है—"भुवन ज्ञानं सूर्यसंयमात्"

अर्थात् योगी को चाहिए कि अपने संयम के आधार पर वह चौदह भुवनों को देख डाले और ईश्वर के दिव्य-ऐश्वर्य का खूब अवलोकन करे। सूर्य में संयम करने से यह संभव होता है।

इस शास्त्रीय-नियमानुसार हमारे सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज का भी यह नियम था कि वह स्थिति-प्राप्त साधक को दिव्य-लोकों का दर्शन पहिले से ही करा दिया करते थे, जिससे उनके वैराग्य में कोई विक्षेप उत्पन्न न हो एवं उसकी साधना निर्विघ्न उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाए। उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार श्री प्रभुजी ने भाई अमरनाथ जी को अतल, वितल, रसातल, तलातल पाताल आदि नीचे के एवं भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य आदि ऊपर के लोकों का पूर्णरूपेण साक्षात्कार कराया था। भाई श्री अमरनाथ जी ईश्वर के ऐश्वर्य का खूब अवलोकन कर चुके थे, अतः उनके मन में तीव्रता से पूर्व वैराग्य-भाव का उदय हुआ। जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपने जीवन को पूर्णरूपेण तपोमय बना डाला। उनकी दिनचर्या में उनके अपने दो ही कार्य प्रमुख थे—एक तो आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के दर्शन प्राप्त करना व दूसरा कार्य था—अधिकाधिक मन लगा कर योगाभ्यास करना।

मनोलय एवं आसन का उत्थान

योग-दर्शन का सिद्धान्त है—

यत्र मनो लीयते तत्र प्राणा लीयते।
यत्र प्राणो लीयते तत्र मनो लीयते॥

अर्थात् जहाँ पर मन का लय होता है वहाँ पर प्राण भी स्वयं लय हो जाया करता है। एवं जहाँ प्राण लय होता है वहाँ स्वतः ही मन भी लय हो जाया करता है।

इस सिद्धान्तानुसार भाई श्री अमरनाथ जी का भी अभ्यास चला। उनका मन काल के अधिकार से आगे ब्रह्माण्ड में लय

रहा करता था। जिस समय वह अपना अभ्यास करना प्रारम्भ करते थे, उनके पाँचों प्राण वायु—प्राण, अपान, समान, उदान व्यान—योग युक्त हो जाया करते थे। शक्ति चालिनी मुद्रा करते समय उनको भस्त्रिका प्राणायाम तीव्रता से चला करता था। शनैः शनैः उनका यह प्राणायाम कुम्भक के रूप में बढ़ता चला गया और उनका आसन भूमि से ऊपर उठना प्रारम्भ हो गया। मुझे वह दिन याद है जब कि योग-साधन आश्रम ऋषिकेश में भाई अमरनाथ जी का आसन भूमि से ऊपर उठा और उनके उत्थित आसन के नीचे से श्री प्रभुजी ने अपना हाथ घुमा कर दिखलाया था। इस दृश्य को देखने वाले जो बीसियों व्यक्ति उस समय आश्रम में उपस्थित थे, कदाचित् उनमें से पाँच-दस अब भी इस संसार में होंगे। इस प्रकार पृथ्वी से ऊपर अधर में स्थित उनका आसन देखकर सब को ही बड़ा भारी आश्चर्य होता था।

भाई अमरनाथ जी का निवास प्रायः अमृतसर में ही रहता था। अपने मन से ही उन्होंने इस अभ्यास को उत्तरोत्तर बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। उनकी तीव्र अभिलाषा होने लगी कि कुछ समय बाद वे जंगलों में निकल जाँयगे और तीव्रतम वैराग्य धारण करके योगाभ्यास किया करेंगे। किन्तु होनहार कुछ और ही थी। कदाचित् श्री प्रभुजी को ऐसा होना स्वीकार नहीं था, क्योंकि भाई अमरनाथ जी का कुछ प्रारब्ध-भोग शेष था। उनके तीव्र वैराग्य-मय भावों को देखकर उनके कुटुम्बी-जनों ने उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने को वाध्य कर दिया। तीव्र अनिच्छा होने पर भी अमरनाथ जी को अपने परिवार वालों का आग्रह मान कर इस आश्रम में प्रवेश करना पड़ा। लाहौर में जिस समय भाई अमरनाथ जी ने पत्नी का पाणिग्रहण किया, उसी समय बड़े सरल एवं स्पष्ट शब्दों में अपने श्वसुर से

कहा—अच्छा, यदि होनहार ऐसी ही थी, वह तो हो ही गई। अब हम केवल एक साल के मेहमान हैं। एक साल के बाद आप अपनी इस लड़की को श्री प्रभुजी के चरण कमलों में दीक्षित करा दीजिएगा और योगाभ्यास कराया कीजिएगा।

अमरनाथ जी के श्वसुर उनसे या श्री प्रभुजी से पूर्व-परिचित तो थे नहीं। अतः उनके मुख से निकली बात का मर्म न समझ सके। वास्तविकता न समझ कर अनभिज्ञ से प्रेमपूर्वक पूछने लगे-बेटा, तुम क्या कह रहे हो ? बीच में ही उनके भाई लक्ष्मण दास जी बोल उठे—कुछ नहीं पण्डित जी, यह केवल यही कह रहे हैं कि जैसे हम योगाभ्यास करते हैं, उसी प्रकार इसको भी कराया करेंगे। यह सुनकर उनके श्वसुर हंस पड़े और कहने लगे—हाँ, हाँ बेटा, क्यो नहीं ? अब तो यह तुम्हारी ही हो गई, चाहे कुछ भी कराना। पाणिग्रहण-सस्कार का कार्य समाप्त हुआ, परन्तु अमरनाथ जी के जीवन में परिवर्तन का प्रारम्भ न हुआ। अब वह हर समय काफी विचार-मग्न से रहने लगे। स्वयं अकेले बैठे बैठे कभी हँस पड़ते थे और उनके मुख से यह वचन निकलते थे—क्या था और क्या हो गया ? हम तो साधु थे, परन्तु बैकुण्ठवासी बना दिए गए। क्या सोचते थे और क्या हो गया ? अमरनाथ जी अपने भाई लक्ष्मण दास जी से भी बार बार यही कहा करते—भाई, तुमने यह अच्छा नहीं किया। एक साधु को तुमने बैकुण्ठवासी बना दिया है।

शनैः शनैः वर्षावधि भी समाप्त होने को आ गई। भाई अमरनाथ जी के ध्यानाभ्यास में गृहस्थ हो जाने पर भी किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आने पाई थी। पूर्ववत् उनकी साधना का क्रम चलता रहा था। उनका मुख-मंडल पूर्णरूपेण देदीप्यमान रहा करता था। बीच बीच में बारम्बार अपने मुख से उन्हीं शब्दों का उच्चारण करते रहते थे—क्या था, क्या हो गया? अन्त में पूरा वर्ष समाप्त होकर वह दिन भी आ गया, जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी। उस दिन श्री अमरनाथ जी ने प्रातः काल ही स्नान किया। अन्य दिनों की अपेक्षा आज वह विशेष उल्लसित दीखते थे। किसी प्रकार के रोग, शोक या चिन्ता का चिन्ह उनके शरीर पर नहीं था। उस दिन प्रातः काल से ही उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—अच्छा, आज यात्रा का दिन आ ही गया। आज मुसाफिर चला जायगा। उनके मित्र, भाई आदि बड़े आश्चर्य से पूछने लगे—कौन मुसाफिर है? वह आज कहाँ जा रहा है? तब उन्होंने स्पष्ट कह ही दिया—भाई, और दूसरा कौन. हम ही तो वह मुसाफिर हैं। दो-चार घंटे और प्रतीक्षा करो। स्वयं पता चल जायगा कि कहाँ जा रहे हैं? उस दिन अमरनाथ जी को भस्त्रिका प्राणायाम वार वार जारी होता था। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से अपने बड़े भाई लक्ष्मण दास जी को बुलवा कर कहा—भाई, आज एक वर्ष की अवधि पूरी हो गई है। मेरी यात्रा का दिन आज आ गया है। श्री अमरनाथ जी ने उनको लौकिक व्यवहार शुद्ध रखने की काफी शिक्षा दी और बारम्बार उनको समझाया—इस कलिकाल के घोर-अन्धकार पूर्ण समय में पूर्ण सद्गुरु का प्राप्त होना बहुत ही कठिन है। बड़े सौभाग्य की बात है कि आजकल आनन्दकन्द योगयोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज. जो परिपूर्ण सद्गुरुतत्व के अवतार हैं, इस पृथ्वी पर विराजमान है। उन्हीं

करुणार्णव सर्वसमर्थ श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में तुम सब लोगों को अपना अपना मन लगाकर इस जीवन को कृतकृत्य कर लेना चाहिए। मनुष्य-योनि और परिपूर्ण सिद्धों के महासिद्ध योगयोगेश्वर जी के चरण कमलों की प्राप्ति ; ऐसा मणि-कांचन संयोग फिर हाथ आए या न आए। ऐसा स्वर्ण-अवसर बार बार नहीं मिला करता। यह उपदेश करने के पश्चात् अमरनाथ जी सब लोगों से कहने लगे—अच्छा, अब समय बिल्कुल निकट आ गया है। दो घंटे का मेरा एक सस्कार है उसका भुगतान भी कर लूँ।

उनके भाई लक्ष्मणदास जी उनकी बातें सुनते थे, पर अर्थ नहीं समझ पाते थे। जो थोड़ा अर्थ समझे भी थे, उस पर सहसा विश्वास न कर सके। वह नहीं समझ सके कि अमरनाथ जी दो घंटे बाद ही महायात्रा करने वाले हैं। देखते-देखते अमरनाथ जी को तीव्र-ज्वर हो गया। आश्चर्य की बात यह थी कि इस तीव्र-ज्वर की वेदना में भी उनका भस्त्रिका-प्राणायाम पूर्ववत् निरन्तर चलता रहा और ध्यान-मग्न ही रहे। दो घंटे की तीव्र-ज्वर वेदना के बाद वह सिद्धासन लगाकर ध्यान में लीन हो गए। ध्यान में बैठने से पूर्व उनके मुख से निकला—अच्छा भाई, मुसाफिर जा रहा है। तत्पश्चात् वह पूर्णरूपेण तद्गत हो गए और भस्त्रिका प्राणायाम निरन्तर चलता रहा। लोगों के देखते देखते उनकी दृष्टि भ्रूमध्य हो गई और वह एक शान्त योगी की तरह निश्चल हो गए ; यह उनकी वह समाधि थी, जिसकी प्रतीक्षा वह बड़ी ही व्यग्रता से प्रिय अतिथि के समान कर रहे थे। अन्ततः भाई अमरनाथ जी इस पार्थिव शरीर को त्याग कर अपनी उस अनन्त-यात्रा पर चल दिए जिसकी चर्चा वह प्रातः काल से कर रहे थे। पास बैठा कोई भी व्यक्ति यह न समझ सका कि परमार्थ-मार्ग के सच्चे पथिक ने आज

अपनी यात्रा को पूर्ण कर अपने लक्ष्य को पा लिया है।
शरीर गिर जाने पर भी उनके भाई लक्ष्मणदास जी ने
समझा—यह भी कदाचित् प्राणायाम की ही कोई ग
जिससे बैठे-बैठे अकस्मात् इनका शरीर गिर गया है। परन्तु
समय बाद सभी लोगों को उनके देहावसान की घटना
विश्वास करना ही पड़ा।

भाई अमरनाथ जी ने देह-त्याग अपने ग्राम में ही किया थ
फलस्वरूप विद्युत् की भाँति इस समाचार ने सारे गाँव
फैलकर सभी को आश्चर्य चकित कर दिया। सहसा सुन
किसी को विश्वास नहीं होता था कि सचमुच ऐसा हो ग
होगा। झुंड के झुंड घटना की सत्यता जानने उस स्थान पर पहुँच
लगे। भाई अमरनाथ जी स्वभाव से ही सबको प्रिय थे। मृ
भाषी थे। इसके अतिरिक्त स्वयं कष्ट उठाकर भी सदैव परोपका
के लिए तत्पर रहते थे। उनके हृदय में लोक-हित की ब
भावनाए रहा करती थी। अतः स्वाभाविक ही सभी को उनक
इस आकस्मिक मृत्यु का बहुत दुःख था। उस दिवगत महान
आत्मा के लिए सभी का हृदय शोकाकुल था एवं उनके महान
गुणों का स्मरण सबको हो रहा था। इसके साथ ही साथ एक
और विचार-धारा भी लोगों के मन में उठ रही थी। वे लोग
मन में सोचते थे—यह इतने बड़े योगिराज के शिष्य थे। इन्होंने
देह-त्याग तो अपने सकल्प से ही किया है, किन्तु कोई विशेष
चमत्कार दिखाई नहीं दिया, और न ही इनका कपाल-भेदन
हुआ है।

क्रमशः अन्तिम-संस्कार के लिए उनकी शव-यात्रा की
तैयारी की गई और उनके मृत-शरीर को दाह-संस्कार के हेतु
श्मशान-भूमि में ले जाया गया। चिता-निर्माण हो जाने पर
उनका शव चिता में रख दिया गया। ज्यों ही अग्नि-संस्कार

प्रारम्भ हुआ, सभी एकत्रित ग्रामवासियों ने बड़ा भारी आश्चर्य देखा। उनकी चिता पर सहसा अनेकों प्रकार के वाद्य-यन्त्र बजने लगे। घण्टे घड़ियाल, शंख, मृदंग आदि सभी बाजों की ध्वनियाँ चिता पर गूँज उठीं। परन्तु बजाने वाला कौन है? इसका चेष्टा करने पर भी ज्ञान नहीं होता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई वैदिक-मंत्रों का गायन कर रहा हो। दिव्य आरती उतारी जा रही हो। चिता पर बजने वाले वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि धीरे धीरे ऊपर उठती गई और शनैः शनैः अन्तरिक्ष में विलीन हो गई।

जो योगाभ्यासी वहाँ उपस्थित थे, जिनको अन्तर्दृष्टि प्राप्त थी; उन सभी ने खुली आँखों देखा कि भाई अमरनाथ जी एक देदीप्यमान, श्वेत वर्ण के दिव्य विमान में विराजमान हैं एवं उनका स्वरूप चतुर्भुजी विष्णु भगवान् जैसा है। उनके विमान के आस-पास बहुत से दिव्य वाद्य-यन्त्र बज रहे हैं। विमान पर दिव्य-पुष्पों की वृष्टि हो रही है। श्री अमरनाथ जी ने चिताभूमि पर उपस्थित समुदाय को एक बार देखा और कहा—"मैं अपने परम कृपानिधि सद्गुरुदेव जी की परम कृपा से वैकुण्ठवासी हो रहा हूँ।" केवल-मात्र ध्यानाभ्यासी ही इस अलौकिक दृश्य को देख सके एवं अमरनाथ जी के उपर्युक्त शब्द सुन सके। देखते-देखते अमरनाथ जी का विमान ऊपर उठते उठते अन्तरिक्ष में विलीन हो गया। यह सब दृश्य देखकर आश्चर्य चकित हुए ग्रामवासी अपने अपने घरों को लौटने लगे एवं गद्गद्कण्ठ होकर "योग योगश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी की जय" इस प्रकार की जय-जयकार की ध्वनि बारम्बार मुख से उच्चारण करने लगे। इस घटना को जानने वाले ग्राम निवासी अब भी उस ग्राम में उपस्थित हैं।

योगी श्री नारायणदास जी

भाई नारायणदास जी का जन्म अमृतसर के एक पवित्र ब्राह्मण-कुल में हुआ था। ब्राह्मण-कुल में जन्म होने के कारण इनके विचार पहिले तो शुद्ध-सनातन-धर्मी ही थे। किन्तु उस समय आर्य समाज का प्रचार जोरों पर था। ज्यों ज्यों यह आर्य समाज के प्रचारकों के सम्पर्क में आए, त्यों-त्यों यह भी उन्हीं विचारों में प्रवाहित होते चले गए। शनैः शनैः इनकी सन्ध्या-उपासना पितृ-तर्पण आदि सभी कर्मकाण्ड बदल गए। आर्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अपने ग्रन्थों में योग-सिद्धान्तों को बड़ी महत्ता प्रदान की है। उन्होंने अन्य सभी उपासनाओं की अपेक्षा योग को ही प्रमुख माना है। वे स्वयं भी योगाभ्यास किया करते थे। अतः योग की ओर भाई नारायणदास जी का भी झुकाव हो गया।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का अमृतसर में आना-जाना रहा ही करता था। उनका योग-प्रचार एवं यौगिक शक्ति-पात की महिमा का विस्तार अमृतसर में जोरों पर था। अमृतसर के योग-साधन आश्रम में सैंकड़ों की तादाद में साध्य एवं असाध्य रोगी-गण योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के नवनिर्मित योग-साधनों से पूर्णतया स्वास्थ्य-लाभ कर चुके थे एवं कर रहे थे। नारायणदास जी की पुत्री शकुन्तला देवी क्षय-रोग से पीड़िता थीं और किसी भी प्रकार की चिकित्सा से उसको लाभ नहीं हो रहा था। श्री प्रभुजी की रोगों को ठीक कर देने की महिमा नारायण दास जी ने भी सुनी। नारायण-

दास जी चारों ओर से निराश हो ही चुके थे, डूबते को तिनके का सहारा मिला। तत्काल श्री प्रभुजी के दरबार में पहुंचे और उन त्रय-ताप-नाशक चरणारविन्दों में अपनी पुत्री की चिकित्सा कर देने की विनम्र प्रार्थना की। निरन्तर जीवों का कल्याण करने में तत्पर कृपा नाथ जी अगाध करुणासागर ठहरे, तत्काल ही उनकी पुत्री की यौगिक-चिकित्सा अपनी परम कृपापात्र शिष्याओं के निरीक्षण में करानी प्रारम्भ कर दी। जिस पर उन आनन्द कन्द प्रभुजी की कृपा–दृष्टि हो जाय, वह स्वस्थ्य कैसे न होता ? योग-साधन प्रारम्भ करने के बाद से ही शनैः शनैः इनकी पुत्री शकुन्तला देवी स्वस्थ होती गई। इस बात का भाई नारायण दास जी के मन पर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा। क्रमशः इनका हृदय श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों की ओर तीव्र-गति से आकर्षित होता चला गया। श्री कृपानाथ जी की कृपा से श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में इनकी निष्ठा दृढ़ होती गई और अनुराग भी दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा। परिणामतः इनके आर्य समाजी विचारों में भी पूर्णरूपेण परिवर्तन होता गया। समय आने पर इन्होंने श्री प्रभुजी से योग-दीक्षा प्राप्त की। श्री प्रभुजी ने कृपा करके इनको षट्-चक्रों के मार्ग से चलाया और इनको मूला धार-कमल में ध्यान करने का उपदेश दिया। मूलाधार-कमल में ऋद्धि-सिद्धि सहित श्री गणपति जी का ध्यान किया जाता है। श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार ज्यों-ज्यों इन्होंने अपना अभ्यास बढ़ाया, त्यों त्यों इनकी स्थिति बनती गई एवं यह मूलाधार-कमल के साक्षात् दर्शन प्राप्त करने लगे।

भाई श्री नारायण दास जी को अपने अभ्यास में कई प्रकार के दिव्यानुभव हुए व कई दिव्य औषधियों का ज्ञान भी इन्होंने

अपनी समाधि-स्थिति में ही प्राप्त किया था। अपने ध्यानानुभव के आधार पर यह उन जड़ी-बूटियों को कहीं जंगल से उखाड़ लाया करते थे एवं सर्वसाधारण के भले के लिए उनका उपयोग करते रहा करते थे। श्री प्रभुजी की कई अद्भुत लीलाओं के दर्शन इन्होंने किए थे। ध्यानाभ्यास से उठकर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में प्रणाम करके जिस समय यह अपने घर के लिए चलते थे, मार्ग-भर बराबर श्री प्रभुजी को अपने साथ ही चलते देखा करते थे। जब यह घर में प्रवेश करते तो सामने ही किसी दिव्य-सिंहासन पर आनन्द कन्द श्री प्रभुजी विराजमान दीखते थे। आनन्द कन्द श्री प्रभुजी के अति-रिक्त और भी कई सिद्ध पुरुषों के दर्शन इनको ध्यान में हुए जिन से कई प्रकार के साधन-लाभ इनको प्राप्त हुए थे। वास्तव में श्री प्रभुजी के परम कृपा-पात्रों में से यह भी एक थे।

अकस्मात् उन्होंने देखा कि आनन्दकन्द श्री प्रभुजी दिव्य जटा-धारी स्वरूप से आकाश मार्ग से उड़ते हुए आ रहे हैं। इनके सामने आकर थोड़ी देर को ठहर गए और आकाश में ही स्थित होकर कहने लगे—बेटा नारायण दास, हम तुम्हें मन्त्र बताते हैं। उसका निरन्तर जप करने से तुम्हें खेचरी सिद्ध हो जायगी। अब तुम हमारे निवास-स्थान पर चले जाओ। हम वह शरीर छोड़ आए हैं और अब नेपाल हिमालय को जा रहे हैं। ऐसा कहकर श्री प्रभुजी ने आकाश में ही स्थित रहकर उन्हें किसी दिव्य-मन्त्र का उपदेश किया, जिससे उनको स्वतः ही खेचरी सिद्ध हो गई।

जिस समय श्री प्रभुजी नारायणदास जी को यह उपदेश कर रहे थे, उस समय श्री प्रभुजी के दिव्य-चरण-स्पर्श करने की तीव्र इच्छा उनको हुई। स्वयं श्री प्रभुजी के मुख से उनके लीलावसान का सन्देश पाते ही भाई नारायणदास जी व्याकुल होकर भाग पड़े। हम वह शरीर छोड़ आए हैं—श्री प्रभुजी के मुख से निःसृत यह वाक्य उनके कर्ण-कुहरों में निरन्तर गूँज रहा था। हृदय में इतनी बेचैनी थी कि इनको मार्ग पूरा करना कठिन हो रहा था। श्री प्रभुजी के निवास-स्थान पर पहुंचकर देखा—वस्तुतः श्री प्रभुजी शरीर-त्याग कर चुके थे। श्री प्रभुजी की इस अलौकिक लीला से नारायणदास जी का मन अतिशय चकित था। श्री प्रभुजी से शारीरिक-वियोग का दुःख एवं खेचरी-सिद्धि का हर्ष, दोनों भावों से एक साथ ही मन अभिभूत हो गया। गद्‌गद् कंठ होकर एवं नेत्रों में अश्रु भर कर उन सर्व-शक्तिमान की सर्व समर्थता का बार बार स्मरण करने लगे।

मिलता था—भाई, जाओ अपना काम करो, मैं अपना काम करता हूँ। अब मुझे बतलाने का हुक्म नहीं है। भाई नाराणदास जी की यह स्थिति लगभग पाँच-छः वर्ष तक देहावसान-पर्यन्त इसी प्रकार अनवरत रही थी।

अपने शरीर-त्याग से केवल दो वर्ष पूर्व ही उन्होंने सवांई-आश्रम आना प्रारम्भ किया था। बहिन द्रौपदी जी और भाई जी अमृतसर में एक ही गली में रहते थे। अतः यह सब लोग मिल कर ही श्री सिद्ध गुफा के दर्शनार्थ आया करते थे। भाई जी श्री सिद्ध-गुफा पर आने को सदैव उत्सुक रहा करते थे। प्रायः बहिन द्रौपदी जी आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के जन्मोत्सव श्री राम नवमी पर ही सवांई आने का कार्यक्रम बनाया करती हैं। गत दो वर्षों से भाई नारायणदास जी भी साथ आए थे। अतः इस वार भी बहिन द्रौपदी जी ने प्रतिवर्ष की भाँति उनसे कहा—पण्डित जी श्री सिद्ध-गुफा के दर्शनार्थ कब चल रहे हैं? इस बार नारायणदास जी यह सुनकर कुछ हँसे और उत्तर दिया—द्रौपदी, अबकी बार श्री प्रभुजी की आज्ञा नहीं है। एक अन्य बड़ी यात्रा होने वाली है, हमको तो वहीं जाना होगा, जहाँ के लिए उनका हुक्म है। तुम लोग ही इस बार श्री सिद्ध गुफा के दर्शन करना। बहिन द्रौपदी जी ने आग्रहपूर्वक पूछा—आपको यह यात्रा कब करनी है? कहाँ जाना है? श्री नारायणदास जी ने कहा—चिन्ता मत कर, द्रौपदी, जिस दिन जाऊँगा तुझे अवश्य सूचित कर दूँगा।

देहावसान से काफी दिन पूर्व ही उनकी इस प्रकार की बातें प्रारम्भ हो गई थीं। प्रायः अपने सभी इष्ट-मित्रों को उन्होंने यह बता दिया था कि यह उनकी अन्तिम यात्रा है। शनैः शनैः दिन बीतने पर उनकी महायात्रा का वह दिन भी आ पहुँचा। सायं काल नारायणदास जी ने बहिन द्रौपदी जी को सन्देश

भेजा-कल सुबह पाँच बजे मैं तुम्हें बुलाऊँगा। तुम अवश्य आ जाना। यदि देर से आओगी तो हम चले जांयगे और फिर तुम पछताओगी। उस दिन भाई नारायणदास जी रात्रिभर जागरण करते रहे और तीन बजे प्रातः ही नैत्यिक क्रिया-कलापों से निवृत्त हो गए। पूर्ण प्रेम से श्री प्रभुजी की आरती-पूजन किया और श्री प्रभुजी के मन्दिर के सामने आसन लगा कर बैठ गए। पाँच बज गए थे, अतः बहिन द्रौपदी देवी को फिर सन्देश भेजा—द्रौपदी, जल्दी चली आ। समय नहीं है। हम तो अपने निश्चित समय पर चले ही जांयगे। यदि देरी से आई तो पछताओगी।

उनकी पुत्री शकुन्तला देवी अभी तक स्वस्थ रूप से इस संसार में हैं। उनका निवासस्थान देहरादून है। श्री प्रभुजी के चरण-कमलों की स्वाभाविक अनुरागिनी हैं। भाई नारायणदास जी ने थोड़े समय पूर्व ही शरीर-त्याग किया है।

उत्तराखण्ड की यात्रा से विचरते विचरते रतनलाल जी फिर ऋषिकेश आ पहुँचे। अब इनके मन में यह तीव्र लगन लग गई थी कि उनको किसी परिपूर्ण सद्गुरुदेव जी के दर्शन प्राप्त हों। इसी प्रकार के योगाचार्यों की खोज में इनका यत्र-तत्र भ्रमण चलता रहा। बड़े बड़े मण्डलेश्वरों एवं मठाधीशों के दर्शन भी इनके मन को शान्ति-लाभ न करा सके। उपदेष्टा तो सभी थे, किन्तु किसी ऐसे योगैश्वर्य सम्पन्न सद्गुरुदेव के दर्शन नहीं मिले; जो—"दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगैश्वर्यम्"—को प्रतिज्ञापूर्वक कहता हुआ अनुभूति-मार्ग में प्रविष्ट करा सकता। इतना घूमने पर भी जब इन्हें मनोनुकूल योगिराज के दर्शन प्राप्त नहीं हो सके, तो इन्हें स्वाभाविक ही निराशा होने लगी। अब उनका यह विचार बनने लगा था—ऋषिकेश में उनको कोई पथप्रदर्शक नहीं मिलेगा। अतः अब घर ही क्यों न लौट चलें ? व्यर्थ भगवा-वस्त्र पहिने साधु बन कर भिक्षाटन करने से क्या लाभ ? इससे तो घर पर व्यापार आदि सांसारिक कार्य करते हुए ही जीवन व्यतीत कर लेंगे।

निवास करते हैं। ऐसा विचार करके भाई रतनलाल जी ने आश्रम में धीरे धीरे प्रवेश किया। सामने ही आराम कुर्सी पर विराजमान श्री प्रभुजी के दर्शन कर इनको लगा—जिसकी खोज थी, वह मिल गए हैं। अन्य आश्रमों से भिन्न इस प्रकार के पवित्र वातावरण वाले आश्रम में प्रवेश करने का रतनलाल जी का यह प्रथम अवसर था। सायंकाल लगभग पाँच बजे का समय था, यह आश्रम का सत्संग का समय रहा करता था। इस कारण श्री प्रभु जी के आस-पास बैठे सत्संगी भाई-बहिन ध्यानादि की कुछ चर्चाएं कर रहे थे। दूसरी ओर एक भाई श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में बैठकर, दूर नगरों में रहने वाले सत्संगियों के आए पत्रों को पढ़ कर सुना रहे थे। उन पत्रों में बड़े बड़े ध्यानानुभव लिखे थे। यह सब देख सुनकर रतनलाल जी का हृदय श्री प्रभुजी के पावन चरण-कमलों की ओर और भी अधिक आकर्षित हुआ। उन्होंने अत्यन्त विनम्र-भाव से श्री प्रभुजी से प्रार्थना की—प्रभुजी, आप करुणासागर हैं। कृपा करके मुझे भी अपनी शरण में ले लीजिए।

भाई रतनलाल जी की होनहार अच्छी थी। इनकी इस विनम्र प्रार्थना पर श्री प्रभुजी मुस्करा पड़े और मुखारविन्द से स्वीकृति सूचक "अच्छा" शब्द निकल गया। दूसरे दिन साधारण पत्र-पुष्प स्वीकार कर अनन्त शक्ति सम्पन्न श्री प्रभुजी ने भाई रतन-लाल जी को शक्तिपात-दीक्षा दी। जिसके फलस्वरूप उनमें बड़ी तीव्रगति से शक्ति संचरित हुई। श्री प्रभुजी ने उन्हें कुण्डलिनी-योग का उपदेश देकर मूलाधार कमल में श्री गणपति जी का ध्यान करने का आदेश दिया। अब भाई रतनलाल जी श्री प्रभुजी के आदेश के अनुसार अपना ध्यानाभ्यास करने लग गए और उत्तरोत्तर प्रगति करने लगे। जैसे-जैसे ध्यानाभ्यास परि-

पक्व होता गया, वैसे वैसे ही मूलाधार-कमल के प्रत्यक्ष दर्शन उनको बने रहने लगे। कुछ ही समय में भाई रतनलाल जी का आश्चर्य जनक रूप से कायाकल्प ही हो गया। वह हर समय ध्यानस्थ रहने लगे। पान खाने और बीड़ी पीने का इनका विशेष व्यसन भी ध्यान की उच्चतम स्थिति में स्वतः ही छूट गया। उन्हें कण कण में मूलाधार कमल के दर्शन निरन्तर बने रहने लगे। सारांश यह कि संसार भूल गया, केवल ध्यान में दीखने वाले की स्मृति रहने लगी। भाई रतन-लाल जी की ऐसी उच्च-स्थिति इतनी शीघ्र बन गई कि सारे ही आश्रमवासी आश्चर्य करने लगे। उनके मुखमंडल पर हर समय एक विशेष तेज विराजमान रहने लगा। ध्यान की उच्चतम स्थिति में उनको हिमालय के अनेकों सिद्धों के दर्शन एवं कई प्रकार के वरदान प्राप्त हुए। यह बड़े ही आश्चर्य का विषय था कि दो मास पूर्व का एक साधारण गृहस्थ व्यक्ति, इतने अल्प समय में ही अत्यन्त उच्चकोटि का सन्त बन गया था। आश्रमवासी प्रायः देखा करते थे—ध्यानस्थ रतनलाल जी के शरीर पर से निस्संकोच बिच्छू व सर्प गुजर जाते हैं, परन्तु उनको किसी प्रकार की भी चेतना नहीं हो रही है।

के मन में अभिलाषा हुई कि रतनलाल जी अपनी ध्नान-दृष्टि से उस चक्कू के स्थान की तलाश करें। उन सब के मानस-अभिप्राय को समझ कर श्री प्रभुजी थोड़ा हँसे और भाई रतन-लाल जी से कहने लगे—अरे रतन, जब इन सबकी यही इच्छा है, तो तू उस चाकू की तलाश कर ही दे। श्री प्रभुजी की आज्ञा पाते ही रतनलाल जी उठ पड़े। नेत्र बन्द किए हुए ही उस स्थान पर पहुंचे जहाँ पर वह चाकू पड़ा हुआ था। आँखे बन्द ही किए उन्होंने वह चाकू उठाकर सबको दिखा दिया। इस घटना से अचरज में पड़े उन सभी लोगों ने यह जान लिया कि भाई रतनलाल में कितनी बड़ी शक्ति है ?

अस्तु, इस प्रकार की अन्यान्य घटनाएं भी घटती रही हैं। अपने अन्दर इस प्रकार के दिव्य-विकास को देखकर भाई रतन-लाल जी का अभ्यास और वैराग्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। अपने ध्यानाभ्यास में उन्होंने कई प्रकार के दिव्य-मन्त्र, गुप्त-क्रियाएं और दिव्य औषधियों को सिद्धों के द्वारा प्राप्त किया था। उनकी निर्विचार समाधि की निर्मलता में उत्तरोत्तर ऋत का प्रकाश होता चला गया। उनके ध्यानानुभव उत्तरोत्तर सत्य होने लगे। साधक को प्रारम्भ में जो अनुभव होते हैं उनमें यत्किंचित् अपने मन का भी समावेश रहा करता है। अतः उस काल के अनुभव पूर्णतः सत्य नहीं हुआ करते। उत्तरोत्तर अभ्यास के पश्चात् ही अनुभवों में पूर्ण सत्यता आ पाती है।

के समान मुझे एक आवाज सुनाई दी—देखो, यह सब महापुरुष खेचर-पुरुष हैं अर्थात् खेचरी-मुद्रा की सिद्धि के प्रभाव से सिद्ध हो गए हैं। श्री प्रभुजी के कनखल चले जाने के पश्चात् मेरा खेचरी-अभ्यास कुछ कम हो गया था। अतः इन सब सिद्धों के दर्शन करते हुए ही मुझे आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की वाणी सुनाई दी। मानो वह कह रहे हैं—तुमने खेचरी का अभ्यास छोड़ दिया, अन्यथा तुम भी इसी श्रेणी के व्यक्ति बन गए होते। श्री प्रभुजी के ऐसे वचन सुनकर मुझे मन ही मन स्वयं पर बड़ा रोष आया और विचार करने लगा—मैंने यह कितनी भारी भूल की है। यदि श्री प्रभुजी के आदेश का अक्षरशः पालन किया होता, तो अवश्य ही अब तक खेचरी सिद्ध हो जानी चाहिए थी। यह तो बड़ी भारी भूल हो गई। मन की इस प्रकार की क्लेशित-स्थिति में ही मैंने जिह्वा का छेदन करना प्रारम्भ किया। बांस की ताड़ी से वह छेदन बहुत धीरे धीरे बनता है। अतः अकस्मात् मेरे मन में विचार आया—बांस की ताड़ी से तो छेदन विशेष बन नहीं रहा है। बड़ी धीरे धीरे छेदन हो पाएगा। हजामत बनाने के ब्लेड से छेदन क्यों न कर लिया जाय, उससे छेदन एकदम हो जायगा। ऐसा विचार आने पर मैंने शीघ्र ही उसे कार्यान्वित करने का विचार कर लिया। और एक ब्लेड लेकर बड़े साहस के साथ अपनी जिह्वा के नीचे का तन्तु काफी वेग से काट दिया। वेदना तो हुई परन्तु शीघ्र ही खेचरी-सिद्ध कर लेने की धुन में मैं फिर दुबारा ब्लेड चलाने का विचार कर ही रहा था कि अकस्मात् अनुभव हुआ कि श्री प्रभुजी बड़ी रोष-मुद्रा में ताड़नात्मक दृष्टि से मुझे देख रहे हैं। और एकदम ब्लेड छीन कर चले गए हैं।

सामने से भागते हुए भाई रतनलाल जी आते दीखे। मैं और भी अधिक आश्चर्य में पड़ गया। भाई रतनलाल जी अपनी समाधि से जल्दी ही उठकर भागे आए थे और आते ही एकदम मुझसे कहने लगे—अरे भाईजी, आपने यह क्या कर लिया है? परम कृपानिधि श्री प्रभुजी ने अभी अभी मुझे आदेश दिया है—जाओ, चन्द्रमोहन को जाकर देखो। वह यह क्या कर रहा है? अन्यथा लोग कहा करेंगे कि योगियों के बच्चे गूंगे हुआ करते हैं। जिस समय भाई रतनलाल जी मेरे पास पहुँचे थे, उस समय मेरे मुख से पर्याप्त रक्त बह रहा था और मैं बोल सकने में सर्वथा असमर्थ था। वह भी सहसा निश्चय न कर सके कि ऐसी स्थिति में किया क्या जाए? प्रत्युत बढ़ी हुई व्याकुलता में उन्हें यही सूझा कि पुनः सर्वसमर्थ श्री प्रभुजी से ही मार्ग-दर्शन प्राप्त किया जाए। फलस्वरूप शीघ्र ही इन्हीं विचारों में मग्न भाई रतनलाल जी ध्यानस्थ हो गए। ध्यान में ही आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने उन्हें एक स्थान दिखलाया, जहाँ पर एक जड़ी लगी हुई थी। उस जड़ी की ओर संकेत करते हुए श्री प्रभुजी ने उन्हें आज्ञा दी—तुम इस स्थान पर आकर यह जड़ी उखाड़ ले जाओ। इस जड़ी को घोट कर इसके जल के गरारे कराओ। रक्त बहना शीघ्र ही रुक जाएगा। भाई रतनलाल जी ने श्री प्रभुजी की इस आज्ञा का पूर्णतः पालन किया। वैसा करने से मेरी जिह्वा का घाव बहुत शीघ्र ठीक हो गया। इस घटना के बाद जिस समय मैं श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ कनखल गया तब उन्होंने आज्ञा दी—तू अब जिह्वा का छेदन करके कभी भी खेचरी नहीं करना।

इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करते हुए भाई रतनलाल जी की स्थिति उच्च से उच्चतर होती गई। हर समय उन्हें पूर्ण वैराग्य के भाव बने रहने लगे। श्री प्रभुजी के चरण कमलों

में पूर्ण निष्ठा रखते हुए भी कुछ दिनों बाद उन्होंने संन्यास-आश्रम ग्रहण कर लिया। इसका कारण था कि प्रायः उनके बन्धु-बान्धव आकर उनसे बार बार घर लौट चलने का आग्रह किया करते थे। और एक बार जबर्दस्ती करके उन्हें घर पकड़ कर भी ले गए थे। इस झंझट से सर्वदा को मुक्त होने के लिए उन्होंने संन्यास-आश्रम में दीक्षित हो जाना ही उचित समझा था। संन्यास-आश्रम का उनका पवित्र नाम स्वामी कृष्णानन्द जी है। इतस्ततः भ्रमण करने के पश्चात् अब पुण्यतोया भागीरथी के पावन-तट पर उन्होंने एक आश्रम बना कर निवास करना प्रारम्भ कर दिया है।